कविता-कौमुदी

साहित्य-भवन—ग्रंथमाला—१

कविता-कौमुदी

(पहला भाग—हिन्दी)

लेखक

रामनरेश त्रिपाठी

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥

प्रकाशक

साहित्य-भवन, प्रयाग ।

परिवर्तित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण १५०० | होली, सं० १९७५ | मूल्य २)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

को

स म र्पि त

विषय-सूची

कवि-नामावली

भूमिका

यह प्रकट करते हुये हमको बड़ा हर्ष होता है कि हिन्दी-संसार ने इस पुस्तक का अच्छा आदर किया। इसका पहला संस्करण दीपावली सं० १९७४ को निकला था। वह एक वर्ष के भीतर ही हाथों हाथ निकल गया। इस दूसरे संस्करण में बहुत कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन किया गया है। पहले संस्करण में केवल ५२ कवियों का ही वर्णन था; किन्तु दूसरे संस्करण में उनकी संख्या बढ़ाकर ८९ तक कर दी गई है। अब हरिश्चन्द्र के पहले के प्रायः सब सुप्रसिद्ध कवि इसमें आ गये हैं। इस परिवर्द्धनका कारण यह है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी का नवीन युग प्रारम्भ होता है। अतएव यह उचित समझा गया, कि हरिश्चन्द्र से पहले के सब कवि पहले भाग में ही आ जायँ, जिससे दूसरा भाग हरिश्चन्द्र के समय से प्रारंभ हो। इस वृद्धि के सिवाय प्रारम्भ में हिन्दी-भाषा का संक्षिप्त इतिहास और अंत में "कौमुदी-कुञ्ज" नाम से कुछ फुटकर कविताओं का एक संग्रह और भी जोड़ दिया गया है। जहाँ इतनी वृद्धि की गई, वहाँ शब्दार्थ-कोश निकाल भी दिया गया। शब्दार्थ-कोश निकाल देने का यह कारण है कि यदि पुस्तक में आये हुये सब कठिन शब्दों का अर्थ और पदों का भावार्थ दिया जाता, तो मूल पुस्तक से शब्दार्थ-कोश की पृष्ठ संख्या कम न होगी और उसके अनुसार दाम भी बढ़ाना पड़ता। प्रथम संस्करण में जितना अर्थ दिया गया है उससे कुछ विशेष लाभ नहीं जान पड़ा। कितने ही कठिन शब्दों के अर्थ लिखने से रह गये। अधूरा काम हम ठीक नहीं समझा। इसी से शब्दार्थ-कोश निकाल दिया।

पहले संस्करण से इस संस्करण में दो एक विशेषताएँ और हैं। इस बार महँगी के समय में भी कागज़ बढ़िया लगाया गया है; छपाई भी पहले से सुन्दर हुई है, जिल्द में कोई कमी नहीं की गई; फिर भी दाम वही दो रुपया ही रक्खा गया।

जहाँ तक मिल सके, कवियों के ग्रंथों को हमने स्वयं पढ़ कर यह पुस्तक लिखी है। फिर भी मिश्र-बंधु-विनोद, संतबानी पुस्तक माला और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की वार्षिक लेख-मालाओं से हमने बड़ी सहायता ली है। अतएव उनके लेखकों के हम बहुत कृतज्ञ हैं।

जो लोग हिन्दी-साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये तो यह पुस्तक उपयोगी है ही, किन्तु जो लोग केवल कविता के रसिक हैं, वे भी इससे बड़ा आनन्द उठा सकते हैं। शृंगार रस की कुछ कवितायें ऐसी हैं जिनके विषय में लोग कह सकते हैं कि उनका इस संग्रह में न आना ही अच्छा था। इनके विषय में मेरा यह निवेदन है कि कविता का चमत्कार दिखाने के लिये ही हमने वैसा किया है, कुछ इस भाव से नहीं कि हमें वैसी कविताएँ अधिक प्रिय हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इस पुस्तक को मध्यमा के कोर्स में रक्खा है, इसलिये मैं सम्मेलन को सहर्ष धन्यवाद देता हूँ।

कविता-कौमुदी के दूसरे भाग का विज्ञापन इस पुस्तक के अंत में देखिये।

प्रयाग,
होली, सं० १९७५

निवेदक—
लेखक और प्रकाशक।

प्र स्ता व ना

प्रस्तावना

कविता सृष्टि का सौन्दर्य है, कविता ही सृष्टि का सुख है, और कविता ही सृष्टि का जीवन-प्राण है। परमाणु में कविता है, विराट् रूप में कविता है, विन्दु में कविता है, सागर में कविता है, रेणु में कविता है, पर्वत में कविता है, वायु और अग्नि में कविता है, जल और थल में कविता है, आकाश में कविता है, प्रकाश में कविता है, अन्धकार में भी कविता है; सूर्य और चन्द्र और तारागण में कविता है, किरण और कौमुदी में कविता है, मनुष्य में कविता है, पशु में कविता है, पक्षी में कविता है, वृक्ष में कविता है, जिधर देखो कविता ही का साम्राज्य है। प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्माण्ड एक अद्भुत महाकाव्य है। जिस मनुष्य ने इस सारगर्भित रसमयी कविता के आनन्द का स्वाद चखा, वही भाग्यवान् है। जिसने इस सरस्वती मन्दिर में कुछ शिक्षा ग्रहण की और मनन किया वही पण्डित है, जिसने इस पवित्र प्रवाह में अपने को बहा दिया वही विरक्त है, जिसने इस अमृत प्रवाह में डूब कर, दो चार कलश भर कर, प्यासे थके हुये रोगी वा मृतप्राय यात्रियों को कुछ बूँदें पिलाकर, उन्हें शक्ति दी और पुनर्जीवित किया, वही कवि है।

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्त्तव्य है। जितना गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस सौन्दर्य सागर में डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य में सफल होता है।

संसार के पदार्थों और घटनाओं को सभी देखते हैं परन्तु जिन आँखों से उन्हें कवि देखता है वे निराली ही होती हैं। गँवार के लिये पहाड़ों के भीतर से आती हुई नदी एक नदी मात्र है ; कवि के लिये उस श्वेतवस्त्रा शोभायुक्त लाजवती का नाचता हुआ शरीर शृंगार की रंगभूमि है। आँख वही, पर चितवन में भेद है। बिहारी ने यह तो सच कहा है—

अनियारे दीरघ नयन किती न तरुनि समान।
वह चितवन कछु और है जिहि बस होत सुजान॥

किन्तु बिहारी ने इस रसीले दोहे में केवल बाहरी आँखों ही के रस का वर्णन किया—और वह भी अधूरा। वास्तव में वश करने वाली आँखों में इतना भेद नहीं होता, जितना वश होने वाली आँखों में। हीरे की परख जौहरी की आखें करती हैं, कुब्जा के सौन्दर्य्य की पहिचान रस प्रवीण कृष्ण ही को होती है ; पदार्थ रूपी चित्रों में चितेरे के हाथ की महिमा कवि की ही आँखें पहिचानती हैं, प्राकृतिक दैवी सङ्गीत उसी के कान सुनते हैं। विज्ञानवेत्ता पदार्थों के बाहरी अंगों की छानबीन करता है, और उनके अवयवों का सम्बन्ध ढूँढ़ता है, नीतिज्ञ उनसे मनुष्य समाज के लिये परिणाम निकालता है ; किन्तु उनके आंतरिक सौन्दर्य की ओर कवि ही का लक्ष्य रहता है। वैज्ञानिक और नीतिज्ञ भी जैसे जैसे अपने लक्ष्य की खोज में गहरे डूबते हैं, वैसे वैसे कवि के समीप पहुँचते जाते हैं। सभी विद्याओं और शास्त्रों का अन्त और उनकी सफलता कविता में लीन होने ही में है। कवि के सम्बन्ध में कहा है :—

जानाति यन्न चन्द्रार्कौ जानन्ति यन्न योगिनः।
जानीते यन्न भर्गोऽपि तज्जानाति कविः स्वयम्॥

यह कवि और कविता का आदर्श है, इसी आदर्श की ओर सच्चा कवि जाता है। जितना ही वह उसके समीप पहुँचता है उतना ही वह प्रभावशाली और उसकी कविता स्थायी होती है। भाषा तो केवल एक पहनावा मात्र है। उसकी कविता वास्तव में संसार के लाभ के लिये होती है; क्योंकि कवि की सृष्टि में सम्पूर्ण प्रजातंत्र है, समष्टिवाद का शुद्ध व्यवहार है। यहाँ स्वतंत्रता है, स्वच्छन्दता है, अपरिमित सम्पत्ति है। कोई रोकने वाला नहीं, जितना चाहो उसमें से लेते जाओ वह घटती नहीं, तुममें केवल इच्छा और शक्ति की आवश्यकता है।

हिन्दी बोलने वालों का यह सौभाग्य है कि कविता के ऊँचे आदर्श के समीप तक पहुँचने वाले कई कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा द्वारा अपनी अमूल्य वाणी से संसार का उपकार किया है। मनुष्य जाति सदा उनका ऋणी रहेगी। कबीर और सूर और तुलसी—अहा! इनके नामों का स्मरण करते ही किस दीप्यमान सौन्दर्य और पवित्र आनन्द की सृष्टि के द्वार खुल जाते हैं। इनके भावों को जिसने समझा वह सच्चा पण्डित है, इनके मर्म को जिसने पाया, वह स्वयं महात्मा है। संसार साहित्य की चर्चा करता है; काँच को हीरा जानकर उसके पीछे दौड़ता है, खेल के गुड्डे को बालक समझ कर उसका ब्याह करता है, और अपनी करतूत पर अभिमानी बनता है। अनेक भाषाएँ अपने अपने काँच के टुकड़ों को सामने रख हीरे का दम भरती हैं, किन्तु जैसा कबीर जी ने कहा है—

> सिंहन के लँहड़े नहीं, हंसन की नहिँ पाँत।
> लालन की नहि बोरियाँ, साधु न चलैं जमात॥

कवियों के भी लँहड़े नहीं होते ; वह काल, वह देश भाग्य वान् है जहाँ एक भी कवि उत्पन्न हो जाय। कबीर और सूर और तुलसी यह हिन्दी भाषा ही के नहीं, संसार साहित्य के लाल हैं, परखने वाले की आवश्यकता है। कबीर के दोहों और शब्दों की परख कौन करता है? सूर के पदों और तुलसी की चौपाइयों को कौन तोलता है? मात्रा और अक्षरों के गिनने वाले समालोचक ! छिः ! परखने के लिए कुछ हृदय की सामग्री चाहिये, पुस्तकों के आडम्बर की आवश्यकता नहीं। इन कवियों के हँसने और रोने का अर्थ कौन समझता है? इनके वाक्यों के मर्म तक कौन पहुँचता है? स्वयं कोई मस्त प्रेमी, कोई कविता का मतवाला, जो शुद्ध हृदय से अभिमान छोड़ इस सृष्टि के भीतर नम्रता पूर्वक शिष्य बनकर आता है।

"ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय।"

कुछ काँच पहिचानने वाले समालोचक हिन्दी भाषा में साहित्य की कमी देखते हैं। गाँवका रहने वाला, जिसने अपनी गाँव की दूकान में रंग बिरंग के काँच के टुकड़े देखे हैं, नगर में आकर जब एक बड़े जौहरी की दूकान में जाता है तो अपने गाँव की दूकान के समान रँगीले काँचों को न देखकर बहुमूल्य मणियों का तिरस्कार करता है, और कहता है—हमारे गाँव की दूकान के समान यहाँ मणियाँ तो हैं ही नहीं। ठीक यही दशा इन समालोचकों की है। "यह गाहक करबीन के तुम लीनी कर बीन"। यदि मणि की परख न हो तो मणि का दोष नहीं, परखने वाले का दोष है। किन्तु काँच का भी संसार में काम है, वे भी चमकीले होते हैं, देखने में अच्छे लगते हैं। काँच के टुकड़े भी धन्य हैं, उनमें भी सौन्दर्य है, वे

आनन्द बढ़ाते हैं-किन्तु हीरों और लालों की बात कुछ और ही है।

इस "कविता-कौमुदी" की छटा, संग्रह होने के कारण बादलों से छनकर आती है तो भी अंधकार दूर करने के लिए पर्याप्त है। इसमें अमूल्य मणियों की लड़ियाँ हैं, साथ साथ रंगीले काँच के टुकड़ों की बन्दनवारें भी हैं, बहुत से काँच के टुकड़े बहुमूल्य हैं इनका भी शृंगार शोभायमान है; और अपने अपने स्थान पर सभी आदरणीय हैं।

प्रयाग,
मार्गशीर्ष शुक्ल ३, संवत् १९७४ } पुरुषोत्तमदास टण्डन

हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

भाषा

हृदय एक पुष्प है, भाषा उसका विकास है और भाव गन्ध है।

हृदय एक वाद्य यन्त्र है, रसना रीड है, इच्छा उँगली है और भाषा झंकार है।

भाषा से देश जाना जाता है। हम देश के जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश के संक्षिप्त रूप हैं। हम स्वयं देश हैं। भाषा हमारी कीर्ति है।

भाषा हमारी कीर्ति है, कीर्ति ही हमारा जीवन है, जीवन ही हमारी मनुष्यता है, और मनुष्यता ही से हम जीवित हैं।

विचार भाषा का पुत्र है, कार्य पौत्र है, और सम्मति कन्या है, जो प्रदान की जाती है, और दूसरे घर में जाकर वृद्धि पाती है।

प्रत्येक पूरी बात को वाक्य कहते हैं। प्रत्येक वाक्य शब्दों का समूह है। प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि है। भाषा वाक्यों का समूह है।

चार पैर, पूँछ, सींग आदि अंगों से युक्त एक पशु विशेष का नाम हमने गाय रख लिया है। गाय शब्द और गाय पशु से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं; परन्तु गाय शब्द के उच्चारण से गाय पशु का बोध तत्काल हो जाता है।

यदि हमने सब पशुओं और सब क्रियाओं का नाम न रख लिया होता तो अपने मनोगत भावों के प्रकट करने में

हमें बड़ी ही कठिनता पड़ती। हाथ मुंह आदि के संकेतों से हम अपने मनोभाव पूर्ण रूप से प्रकट ही न कर सकते। संसार व्यवहार में कभी उन्नति न होती।

साधारण रूप से भाषा के दो भेद किये जा सकते हैं। एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त। विचारों को पूर्ण रूप से प्रकट करने वाली मनुष्य की भाषा व्यक्त कहलाती है, और पशु-पक्षी की बोली अव्यक्त। पशु-पक्षी अपनी बोली से दुःख, सुख, भय आदि मनोविकारों को प्रकट करने के सिवाय कोई नई बात नहीं बतला सकते। जब हम सोचते हैं तब भीतर ही भीतर मन से हम एक प्रकार की बातचीत करते रहते हैं। यदि हम चाहें तो उसी बातचीत को एकत्र करके लिख ले सकते हैं। बहुत समय बीत जाने पर भी हम उस लेख को देखकर यह स्मरण कर सकते हैं कि किसी दिन हमने अपने मन से इस विषय पर बात चीतकी थी। भाषा बिना यह सुगमता कैसे हो सकती है ?

व्यक्त भाषा के दो भाग हैं—कथित और लिखित। जब कोई मनुष्य हमारे सामने होता है, तब उसके लिये अपने विचार प्रकट करने में हम कथित भाषा काम में लाते हैं। और जब हमें अपने विचार किसी दूर वाले मनुष्य के पास भेजने पड़ते हैं, या भविष्य के लिए चिरस्थायी रखने पड़ते हैं, तब हम लिखित भाषा का उपयोग करते हैं।

हमारे पूर्वजों ने लिखित भाषा के लिये शब्द की एक एक मूल ध्वनि का एक एक चिन्ह नियत कर लिया है, जिन्हे अक्षर या वर्ण कहते हैं। पहले भाषा में केवल कान ही काम देता था, वर्णों की रचना से आँख भी भाषा के लिये उपयोगी हो गई।

पहले लोग कथित भाषा से ही काम लेते थे। बड़े छोटे सब प्रकार के विचार केवल कथन द्वारा प्रकट किये जाते थे। जो विचार सुनने वाले को प्रिय लगते थे, उन्हें वह स्मरण रखता था; और अप्रिय विचारों को, चाहे वे भविष्य में उसके लिये लाभदायक ही हों, वह उपेक्षा के भाव से देखता था। इसका परिणाम यह होता था कि आगे चल कर उसे यदि पूर्वकाल के अप्रिय विचारों की ही आवश्यकता पड़ती थी तो फिर उसे सोचना पड़ता था। परंतु अक्षर-लिपि की उत्पत्ति से यह असुविधा दूर हो गई। अब विचार चिरस्थायी किये जा सकते हैं। आज जो कुछ हम सोचते हैं उसे लिखित भाषा के रूप में रख सकते हैं और हजारों वर्ष बीत जाने पर भी वे देखे जा सकते हैं। अक्षर-लिपि की ही सहायता से तो हम आज बाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसीदास के विचारों को इस प्रकार जान सकते हैं, मानो वे स्वयं हमारे सामने आकर कह रहे हों।

भाषा सदा स्थिर नहीं रहती। उसमें परिवर्तन होता रहता है। हजारों वर्ष पहले जो भाषा बोली वा लिखी जाती थी, आज उसका वह रूप नहीं है। भाषा का नया और पुराना रूप मिलान कर देखने से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि परिवर्तन किस प्रकार से हुआ है। भाषा तत्व के पंडितों का कथन है कि जब भाषा में परिवर्तन रुक जाता है तब उसकी उन्नति भी रुक जाती है। सभ्यता के साथ भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सभ्यता की वृद्धि के साथ भाषा की भी वृद्धि होती है। उसमें नये विचार और उन विचारों के द्योतक नये शब्द मिलते रहते हैं, और भाषा का भंडार बढ़ता रहता है। भाषा में परिवर्तन

कैसे होता है ? विचार करने से इसके ये कारण जान पड़ते हैं—स्थान, जल-वायु और सभ्यता का प्रभाव और उच्चारण का भेद। बहुत से शब्द जो एक देश के लोग बोल सकते हैं, दूसरे देश के लोग नहीं बोल सकते। शीत प्रधान देशों में ऐसे शब्दों का बहुत प्रयोग होता है, जिनसे मुख को अधिक खोलना न पड़े ; जैसे अंग्रेजी भाषा के अधिकांश शब्द। उष्ण प्रधान देशों में ऐसे शब्द अधिक बोले जाते हैं जिनसे मुख का अधिक भाग खोलना पड़ता है; जैसे भारतीय भाषाओं के शब्द। एक ही देश में भी भिन्न भिन्न जलवायु के कारण एकही शब्द के उच्चारण में कभी कभी बड़ा अंतर पाया जाता है। मरुस्थलों के निवासी कंठ से बोले जाने वाले शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं।

विद्वानों का अनुभव है कि सृष्टि के आरम्भ काल में सब मनुष्य एकही स्थान—मध्य एशिया में रहते थे और उस समय उनकी भाषा एक थी। जब जीविका की खोज में या अन्य किसी कारण से वे भिन्न भिन्न देशों में जा बसे, तब उन देशों के जलवायु की भिन्नता के प्रभाव से उनकी आदिम एक भाषा के उच्चारण में अंतर पड़ता गया। नवीन देश में आकर नवीन वस्तुओं के लिये और स्थिति के अनुसार नवीन प्रारम्भ किये हुये कार्यों के लिये उन्हें नवीन शब्दों की कल्पना करनी पड़ी, जिनसे उनकी आदिम भाषा को नवीन शब्दों से अलंकृत नवीन रूप धारण करना पड़ा। परन्तु जब सब मनुष्य साथ ही रहते थे और उनकी भाषा भी एक थी, उस समय बोल चाल में जो शब्द प्रचलित थे, उनमें से अधिकांश शब्द नवीन देश की नवीन भाषा में थोड़े परिवर्तन के साथ ज्यों के त्यों रह गये। यहाँ हम भिन्न

भिन्न भाषाओं के कुछ समानार्थ शब्दों का संग्रह कर के अपने कथन को खुलासा किये देते हैं :—

संस्कृत	मीडी	यूनानी	लैटिन	अंगरेज़ी	फ़ारसी	हिन्दी
पितृ	पतर	पाटेर	पेटर	फ़ादर	पिदर	पिता
मातृ	मतर	माटेर	मेटर	मदर	मादर	माता
भ्रातृ	ब्रतर	फ्राटेर	फ्रेटर	ब्रदर	ब्रादर	भ्राता
नाम	नाम	ओनोमा	नामेन	नेम	नाम	नाम
अस्मि	अह्मि	ऐमी	सम	ऐम	अम	हूं

इत्यादि; इन शब्दों की समानता ही इस बात का प्रमाण है कि इन सब के पूर्वज कभी एक ही भाषा बोलते थे, आदिम स्थान से, जहाँ पर सब साथ ही साथ रहते थे, जो लोग पश्चिम को गये, उनसे ग्रीक, लैटिन, अंग्रेज़ी आदि भाषा बोलने वाली जातियों की उत्पत्ति हुई और जो लोग पूर्व को आये उनके दो भाग हो गये, एक भाग फारस को गया और दूसरा काबुल होता हुआ भारतवर्ष पहुँचा। पहले दल ने ईरान में मीडी भाषा के द्वारा फारसी भाषा की सृष्टि की, और दूसरे दल ने संस्कृत का प्रचार किया। जिससे प्राकृत का जन्म हुआ और फिर प्राकृत के द्वारा संस्कृत से हिन्दी आदि भाषाएं निकलीं।

अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि उच्चारण भेद से भाषाओं में भिन्नता कैसे हो जाती है। प्रत्येक भाषा को विद्वान् और ग्रामीण मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकार से बोलते हैं। विद्वान् लोग शब्दों का शुद्ध उच्चारण करते हैं, ग्रामीण लोग उसे अपनी इच्छानुसार सुगम बना लेते हैं। इससे किसी प्रधान भाषा की, बिगड़ते बिगड़ते कई नई बोलियाँ बन जाती हैं। यहाँ हम कुछ ऐसे शब्द उपस्थित

करते हैं, जिनका अर्थ एक है परन्तु विद्वानों और ग्रामीणों के उच्चारण में अंतर है। जैसे—

शुद्ध शब्द	उच्चारण-भेद	शुद्ध शब्द	उच्चारण-भेद
भूमि	भुईं	आकाश	अकास आकास
पानीय	पानी	सूर्य	सूरज
शरीर	सरीर	श्वास	साँस

विद्वानों और ग्रामीणों का यह उच्चारण-भेद नया नहीं है, रामायण के समय के भी शिष्ट समाज में बोली जाने वाली भाषा भिन्न थी, और सर्वसाधारण बोलचाल की भाषा भिन्न। बाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड, सर्ग ३०, श्लोक १७, १९ में अशोकवृक्ष पर हनुमान जी चिंता करते हैं :—

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।

अर्थात् मैं तो लघु शरीरी और वानर हूँ। पर यहाँ मनुष्यों की वाणी संस्कृत बोलूँगा। यदि द्विजाति के समान संस्कृत बोलूँगा तो सीता मुझे रावण समझ कर डर जायगी। इसलिये मुझे अर्थयुक्त साधारण मनुष्यों की बोलचाल की भाषा बोलनी चाहिये।

इससे प्रकट होता है कि रामायण के समय में साधारण मनुष्यों की भाषा देववाणी संस्कृत से भिन्न थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य संस्कृत बोलते थे और शूद्र संस्कृत शब्दों के अशुद्ध उच्चारण वाली कोई अन्य भाषा। अशोक के शिला लेखों

और पातंजलि के ग्रन्थों से भी पता चलता है कि आज से कोई बाईस सौ बरस पहले उत्तर भारत में एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जो कई बोलियों से मिलकर बनी थी। कालिदास ने भी शकुन्तला नाटक में दो प्रकार की भाषा का व्यवहार दिखलाया है। स्त्री बालक और शूद्र से संस्कृत भाषा का ठीक ठीक उच्चारण नहीं बन सकने के कारण एक नवीन भाषा का जन्म हुआ, जिसका नाम "प्राकृत" हुआ। संस्कृत भाषा व्याकरण के नियमों से ऐसी जकड़ी हुई है कि उसके विकार-ग्रस्त होने की कोई संभावना नहीं है। सर्व साधारण लोग अपने अशुद्ध उच्चारण के कारण कहीं संस्कृत भाषा का रूप बिगाड़ न दे, इसलिये विद्वानों ने प्राकृत भाषा का एक नया रूप स्वीकार किया और उसका व्याकरण बनाकर उसे एक स्वतंत्र भाषा बना दी। प्राकृत का सब से पुराना व्याकरण वररुचि का बनाया हुआ मिलता है। संस्कृत को नियमित करने में पाणिनि का व्याकरण सब से अधिक प्रसिद्ध है।

संस्कृत के शब्दों का प्राकृत और हिन्दी में कैसा रूप बन गया है, इसे दिखाने के लिए नीचे हम कुछ शब्द प्रस्तुत करते हैं :--

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
कर्म्म	कम्म	काम
हस्त	हत्थ	हाथ
भगिनी	बहिणी	बहिन
धृष्ट	धिट्ठो	ढीठ
वार्ता	वत्त	बात
पुस्तकम्	पोत्थओ	पोथी
दुग्ध	दुद्ध	दूध

कर्ण	कन्न	कान
घृतम्	घिअम्	घी
मेघः	मेहो	मेह
गम्भीरम्	गहिरम्	गहिरा

कुछ संस्कृत शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी में ज्यों के त्यों व्यवहृत होते हैं। जैसे—

बल, हल, बन, मन, धन, जन, दूर, सूर, नदी, शीत, वर्षा, समुद्र, बसन्त, साधु, सन्त, दिन, राजा, कवि, काम, क्रोध; इत्यादि।

ऊपर के प्रमाणों से यह बात समझ में आ सकती है कि प्रत्येक प्रचलित भाषा में नवीन भावों के द्योतक नवीन शब्द और उसी भाषा के अपभ्रंश शब्द नित्य ही बढ़ते रहते हैं। जब ऐसे शब्दों की अधिकता होती है तब वे सब अपभ्रंश शब्द और कुछ उस प्रचलित भाषा के विशुद्ध शब्द मिलकर एक नई बोली का रूप धारण करते हैं, और फिर अपनी उन्नति का नवीन क्षेत्र तैयार कर लेते हैं।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति

हिन्दी का पुराना नाम हिन्दवी या हिन्दुई है जिसका अर्थ है—हिन्दुओं की भाषा। इसलिये हिन्दी के विषय में कुछ कहने के पहिले हिन्दू शब्द पर विचार कर लेना उचित जान पड़ता है।

भारतवर्ष की आर्यजाति का नाम "हिन्दू" क्यों और कब से पड़ा, यह विचारणीय बात है। संस्कृत-साहित्य में हिन्दू शब्द का कहीं उल्लेख नहीं। न तो वेद में, न उपनिषद में, न स्मृति में और न पुराणों ही में इस शब्द का कहीं पता है। फिर यह कहाँ से आया और इसमें कौन सी ऐसी विशे-

षता देखकर इतनी बड़ी एक सुसभ्य जाति ने उसे ग्रहण कर लिया ? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं ।

मेरुतन्त्र में एक स्थान पर "हिन्दू" शब्द आया है । इस सम्बंध के कुछ श्लोक हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

पश्चिमाम्नाय मन्त्रास्तु प्रोक्ताः पारस्य भाषया ।
अष्टोत्तर शताशीतिर्येषां संसाधनात्कलौ ॥
पञ्चखाना सप्तमीराः नवसाहा महाबलाः ।
हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनाः ॥
हीनञ्च दूषयेत्येव हिन्दूरित्युच्यते प्रिये ।
पूर्वाम्नाये नवशतं षडशीति प्रकीर्तिता ॥
फिरङ्ग भाषया मन्त्रा येषां संसाधनात्कलौ ।
अधिपा मंडलानाञ्च संग्रामेष्वपराजिताः ॥
इङ्गरेजा नव षट्पञ्च लण्डजाश्चापि भाविनः ।

शिव रहस्य में भी एक स्थान पर ऐसा कहा गया है :—

हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे ।

हमें मेरुतन्त्र और शिव रहस्य के ये श्लोक पीछे से मिलाये हुये जान पड़ते हैं । क्योंकि पूर्वकाल में यदि हिन्दूधर्म कोई धर्म होता तो उसका उल्लेख स्मृति और पुराणों में कहीं न कहीं अवश्य होता । अतएव हम इन श्लोकों को किसी सुचतुर संस्कृतज्ञ की करामात समझ कर अप्रामाणिक समझते हैं ।

हिन्दू शब्द हमें फ़ारसी भाषा में मिलता है । फ़ारसी का एक पद्य सुनिये—

अगर आं तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद दिले मारा ।
बख़ाले हिन्दुवश बख़शम समरकंदो बुख़ारारा ॥

यह आज से कोई साढ़े पाँच सौ बरस पहले का हाफ़िज़

मिलता है, और इसी से इंडिया शब्द की उत्पत्ति हुई जान पड़ती है। उच्चारण-भेद से सिंधु का किसी ने हिन्द बना लिया, किसी ने इंडस।

मेरी राय में अब इस बात में संदेह नहीं रह जाता कि हमारे देश का नाम हिन्द और हमारा नाम हिन्दू इस देश में मुसलमानों के आने से बहुत पहले ही पड़ चुका था। मुसलमानों ने हमारा यह नाम नहीं रक्खा। अब प्रश्न यह है कि इस शब्द का उल्लेख हमारे संस्कृत ग्रन्थों में क्यों नहीं मिलता। मेरी समझ में इसका कारण यही जान पड़ता है कि हिन्दू शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है; और हमने यह नाम स्वयं नहीं रक्खा है बल्कि विदेशी हमें इस नाम से पुकारते थे। जैसे अमेरिका यूरोप अदि देशों के लोग हमें इंडियन नाम से पुकारते हैं, परन्तु हम लोग अपनी पुस्तकों में अपने को हिन्दू ही लिखते हैं, इंडियन नहीं लिखते। अब प्रश्न यह है कि विदेशियों का रक्खा हुआ "हिन्दू" नाम हमने स्वीकार क्यों कर लिया? इसका उत्तर यही है कि पूर्व काल में भारत और ईरान से घनिष्ठ सम्बन्ध था, दोनों देशों की भाषा में बहुत कुछ समानता थी, दोनों देशों के रीति रस्म में बहुत कुछ एकता थी, पुराण ग्रन्थों में दोनों देशों में वैवाहिक सम्बन्ध तक की चर्चा पाई जाती है। अतएव नित्य के संसर्ग से हमारे लिये उनके रक्खे हुये हिन्दू नाम को पहले हमने कौतूहल वश स्वीकार किया, फिर धीरे धीरे इस नाम ने हमारे उर्वर मस्तिष्क में अपनी जड़ जमाली। परन्तु हमने संस्कृत ग्रन्थों में अपना प्राचीन नाम ही क़ायम रक्खा, केवल बोलचाल में हम अपने को हिन्दू कहने लगे।

कितनी ही विदेशी जातियाँ इस देश में आईं और मिल-जुल कर एक हो गईं, इसी तरह यह हिन्दू नाम भी विदेश से आया और यहाँ हमारा हो गया। अतएव हिन्दू नाम को घृणा की दृष्टि से देखने का हमे कोई कारण प्रतीत नहीं होता। यह हिन्दू नाम हमारे और ईरान वासियों के प्राचीन सम्बन्ध की यादगार है।

हम ऊपर लिख आये है कि मुसलमानों ने हमारा नाम हिन्दू नहीं रक्खा, पृथ्वीराज रासो से भी यह प्रमाणित हो सकता है। चंद बरदायी ने रासो से अनेक स्थलों पर हिन्दू और हिन्दुस्थान शब्द लिखे हैं। चंद बरदायी से पहले मुसलमानों को इस देश में आये ही कितने दिन हुए थे कि उनका रक्खा हुआ नाम एक विशाल जाति में इतना प्रचार पा जाता कि एक वार और स्वजात्याभिमानी कवि अपनी कविता में उस नाम को स्थान देता। स्वदेश और स्वजाति के जिस नाम से समाज अच्छी तरह परिचित रहता है, कवि लोग उनके लिये प्रायः वही नाम अपनी कविता में लिखते हैं। आजकल भी हिन्दी भाषा के कवि अपनी कविता में आवश्यकता पड़ने पर अपने देश का नाम भारत या हिन्दुस्थान ही लिखते हैं। इन्डिया नहीं। अब यह बात ध्यान में आ सकती है कि चंद बरदायी से हज़ारों वर्ष पहले, जब कि पृथ्वी मंडल पर मुसलमानों का कहीं अस्तित्व भी नहीं था, हमारी आर्य जाति हिन्दू हिन्दुस्थान नाम को अपना चुकी थी, इसी से चंद कवि को इन शब्दों के बहुल प्रयोग में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।

अब हम हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के विषय में विचार करते हैं:—

विक्रम संवत् के लगभग आठ नौ सौ वर्ष तक प्राकृत भाषा का प्रचार रहा। बौद्ध और जैन धर्म के संस्थापकों ने अपने सिद्धान्त ग्रंथ उस समय की बोलचाल प्राकृत भाषा में रचे थे। काव्य और नाटक में भी प्राकृत का प्रयोग होने लगा था।

इसके बाद प्राकृत में कुछ परिवर्तन प्रारंभ हुआ। धीरे धीरे वह यहाँ तक बढ़ा कि उसमें से अपभ्रंश नाम से एक नवीन भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। अपभ्रंश शब्द का अर्थ है "बिगड़ी हुई भाषा"। प्राकृत के अंतिम वैयाकरण हेमचन्द्र सूरिने, जो बारहवीं शताब्दी में हुये थे, अपने "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" नामक व्याकरण ग्रन्थ के आठवें अध्याय में अपभ्रंश भाषा का उल्लेख किया है, और उसका व्याकरण भी लिखा है। उन्होंने उस समय के ग्रन्थों से चुनकर उदाहरणार्थ सैकड़ों पद्य भी लिख दिये हैं, जिनसे उस समय की प्रचलित भाषा की खासी झलक दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ अपभ्रंश भाषा का एक पद्य हम यहाँ देते हैं—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु॥

अर्थात् हे बहन अच्छा हुआ जो मेरा पति मारा गया, यदि भागा हुआ घर आता तो मैं सखियों में लज्जित होती।

अपभ्रंश भाषा उस समय केवल मामूली भेद के साथ भारत के बहुत से प्रदेशों में बोली जाती थी। हेमचन्द्र के मरने के बाद, थोड़े ही वर्षों में, भारत में राज्य विप्लव हुआ। आपस की फूट से एक विशाल साम्राज्य टुकड़े २ हो गया। स्नेह सम्बन्ध टूट गया, छोटे छोटे सैकड़ों राज्य कायम हुए। एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य के निवासियों को शत्रु

समझने लगे, विदेशी विजेताओं के पैर जमे, और भारत की फूट से वे लाभ उठाने लगे।

इस राज्य-क्रांति का प्रभाव भाषा पर भी पड़ा। परस्पर ईर्ष्या द्वेष के कारण व्यावहारिक सम्बन्ध संकुचित हुआ, उसी के साथ भाषा की एक रूपता में भी अन्तर आने लगा। प्रदेशों का सम्बन्ध विच्छेद होते ही उनमें व्यापक भाषा अपभ्रंश भी प्रत्येक प्रान्त में भिन्न भिन्न रूप में विकसित होने लगी। उसी समय से अपभ्रंश भाषा से गुजराती, पंजाबी, राजपूतानी मालवी और हिन्दी शाखाएँ निकलने लगीं और १५ वीं शताब्दी में पहुँचकर ये अपने भिन्न भिन्न वातावरण में फूलने फलने लगीं। हमारी हिन्दी भाषा दो अपभ्रंश भाषाओं के मिश्रण से बनी है, एक पश्चिमी हिन्दी, दूसरी पूर्वी हिन्दी। पश्चिमी हिन्दी का स्थान राजपूताना और उसके पूर्वीय प्रांत हैं, और पूर्वी हिन्दी का अवध बघेलखंड और छत्तीस गढ़।

हिन्दी भाषा का विकास विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के मध्यभाग से प्रारम्भ हुआ है। उसी समय से मुसलमानों का अधिकार भी इस देश में बढ़ने लगा। इससे हिन्दी भाषा में अरबी फ़ारसी के भी शब्द मिल गये। चंद बरदायी ने रासो की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है:-

> उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं।
> षट भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया॥

इसमें कुरान से उसका तात्पर्य मुसलमानी शब्दों से है। उक्त श्लोक से यह प्रकट होता है कि पृथ्वीराज रासो जिस भाषा में लिखा गया है उसमें षटभाषा और अरबी फारसी के शब्दों का मेल है। उसकी षट्भाषा में एक भाषा पुरान

हिन्दी भी है। उसका एक नमूना देखिये—

कहाँ लगि लघुता बरनवौं कविन दास कवि चंद।
उन कहि ते जो उब्बरी सोऽब कहौं करि छंद॥

हमारी सम्मति में चंद ही हिन्दी का सब से पुराना कवि है। यद्यपि उसके पहले के कवियों की कविता में भी हिन्दी के रूप की कुछ झलक दिखाई पड़ती है, परन्तु चंद की कविता में हिन्दी का एक स्वतंत्र रूप स्पष्ट हो गया है।

हिन्दी का पुराना नाम

हिन्दी का सबसे पुराना नाम "भाषा" है। म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी स्वरचित गणक तरंगिणी के ३३ वें पृष्ठ पर भास्वती की भाषा टीका का एक उदाहरण उद्धृत करते हैं। उसमें भाषा शब्द आया है। उसका एक वाक्य यह है—

"सो देख के वनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह" यह टीका सं० १४८५ की बनी है। तुलसीदास ने रामायण में "भाषा" शब्द लिखा है—

भाषा निवद्धमति मंजुलमातनोति।
भाषा भनित मोरि मति थोरी।

पर उन्होंने अपने फारसी पंचनामें में हिन्दवी शब्द का उपयोग किया है। सं० १६८० में बनी गोरा बादल की कथा में जटमल ने "हिन्दवी" भाषा का प्रयोग किया है। आज कल भी बहुधा पुस्तकों के नामों और टीकाओं में हिन्दी के स्थान पर "भाषा" शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे भाषा भास्कर, भाषा टीका आदि। पादरी आदम साहब लिखित उपदेश-कथा में, जो सं० १८६४ में दूसरी बार छपी, इस भाषा का

नाम " हिन्दुवी " लिखा है। " पदार्थ विद्यासार " नामक पुस्तक में, जो सं० १९०३ में छपी है, " हिन्दी भाषा " नाम आया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावत में लिखा है :—

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का सबै सराहैं ताहि॥

मालूम होता है कि पहले हिन्दू लोग इस भाषा को " भाषा " और मुसलमान लोग " हिन्दुई " या " हिन्दुवी " कहते थे।

सं० १८६१ के बने हुये " प्रेमसागर " में लल्लू लाल जी ने इस भाषा का नाम " खड़ी बोली " लिखा है। उन्होंने ही *एक जगह अपनी भाषा का नाम " रेख़ते की बोली "* लिखा है। जान पड़ता है, भाषा का नाम " रेख़ता " उस समय रक्खा गया, जब इसमें अरबी, फारसी के शब्द भी मिलने लगे। मुसलमानों में सर्व प्रथम कवि अमीर ख़ुसरो, जिनकी मृत्यु सं० १३८२ में हुई, ऐसी भाषा में कविता कर गये हैं जो आज कल की खड़ी बोली से बहुत मिलती जुलती है ; उसमें अरबी फारसी के शब्दों का मेल नहीं। एक नमूना देखिये—

तरवर से एक तिरिया उतरी उसने खूब रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया।

इससे मालूम होता है कि खुसरो के समय में ही वर्त्तमान खड़ी बोली का रूप बन चुका था।

अब हम हिन्दी साहित्य की क्रमोन्नति पर विचार करना चाहते हैं। साहित्य के दो भाग हैं—गद्य और पद्य। यहाँ हम क्रमशः दोनों भागों के क्रम-विकास की चर्चा करते हैं।

गद्य

हिन्दी गद्य के उदाहरण महाराज पृथ्वीराज के समय के मिलते हैं। यहाँ उस समय के दो एक पत्रों की प्रतिलिपि दी जाती है :—

श्रीहरी एकलिगो जयति

श्री श्री चित्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुवर बाई का वारण गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजीबाँच जो अपन श्री दली सुँ भाई लंगरी राय जी आआ है जो श्रीदली सुँ श्री हजूर को बी खास रुका आयो है जो मारो भी पदारवा की सीख-वो हे नेदलो काका जी पेद है जो कागद वाचत चला आवजो थानेमा आगे जाइगे पड़ेगा थाके वास्ते डाक बेठी है श्री हजूर बी हुक्म बेगीयो हे जो थे ताकीद सुँ आवजो थारे मंदर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सु आआ पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आयसो सं० ११४५ चैत सुदी १३। सही

यह विक्रम सं० १२३५ का पत्र है, उस समय जो संवत् प्रचलित था वह विक्रम संवत् से ६० वर्ष कम है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह हैं :—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेश जी को चित्तौर से बाई साहब श्री पृथाकुवँरि बाई का संवाद बाँचना। आगे भाई श्री लंगरीराय जी श्री दिल्ली से आये हैं और श्री दिल्ली से हुजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काकाजी अस्वस्थ हैं। सो कागज बाँचते चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है। श्री हजूर (समरसिंह) ने भी आज्ञा दी है। सो

ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मंदिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है, सो हम लोगों के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सबेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मितो चैत सुदी १३, संवत् ११४५।

दूसरा पत्र—मेवाड़ की एक सनद, सं० १२२६

स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समर सी जी बचनातु दा अमा आचारज ठाकर रुसीकेष कस्य थाने दली सु डायजे लाया अणी राज में ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थार्का है ओ जनाना में थारा बंसरा टाल ओ दूजा जावेगा नहीं और थारी बैठक दली में ही जी प्रमाणो परधान बरोबर कारण होवेगा।

भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) के महाराजाधिराज रावल समरसिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेश को—तुमको दिल्ली से दायजे में लाया। राज्य में तुम्हारी दवा ली जायगी, दवा पर तुम्हारा अधिकार है, और अंतःपुर में तुम्हारे वंशजों के सिवाय दूसरा नहीं जायगा, और दरबार में तुमको प्रधान के बराबर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली में था।

गद्य के क्रम-विकास के कुछ उदाहरण

सं० १४०७—महात्मा गोरखनाथ जी

स्वामी तुम्हे तो सतगुरु अम्है तो सिष सबद एक पूछिबा, दया करि कहिबा, मनन करिबा रोस। पराधीन उपरांति बंधन नाहीं, सु आधीन उपरांति मुकुति नाहीं।

सं० १६००—गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी

प्रथम की सखी कहत है, जो गोपीजन के चरण विष

सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूब के इनके मंदहास्य ने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुंज विषै श्रृंगार रस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।

सं० १६२६—गंगा भाट (चंद छंद बरनन की महिमा से)

इतना सुन के पातशाह जी श्री अकबर शाहाजी आदसेर सोना नरहरदास चारन को दिया।

सं० १६४८—गोस्वामी गोकुलनाथ जी

(चौरासी ओर दो सौ बावन वैष्णवों की बार्ता से)
श्री गुसाईं जी के सेवक एक पटेल की वार्ता। सो वह पटेल वैष्णवराज नगर में रहेतो हतो। वा पटेल वैष्णव के दो बेटा हते और एक स्त्री हती।

सं० १६६०—नाभादास जी

तव श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये।

सं० १६६६—गोस्वामी तुलसीदास

सं० १६६६ समये कुमार सुदी तेरसी बार शुभदीने लिषीतं पत्र अनंदराम तथा कन्हई के अंस विभाग पुर्वसु जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मैशे प्रमान माना।

सं० १६७०—बनारसी दासजी

सम्यग् दृष्टी कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग दृष्टी।

सं० १६८०—जटमल (गोरा बादल की कथा से)

हे वात कीसा चित्तौड़गड़ के गोरा बादल हुआ है जीनकी वार्ता की किताब हींदवी में बनाकर तैयार करी है।......ये

कथा सोल से अस्सी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई।

सं० १७६७—सूरति मिश्र (कवि प्रिया की टीका से)

सीस फूल सुहाग अरु बेंदा भाग ए दोऊ आये पावड़े सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये हैं।

सं० १७८६—दास

धन पाये ते मूर्खहू बुद्धिवंत ह्वै जातु है। और युवावस्था पाये ते नारी चतुर ह्वै जाति है। उपदेश शब्द लक्षणा सो मालूम होता है औ वाच्यहू में प्रगट है।

स० १८६०—लल्लू जी लाल

निदान श्री कृष्णचन्द्र के पास बैठा सुन सुन घबड़ा कर अर्जुन बोला कि हे देवता तू किसके आगे यह बात कहै है और क्यों इतना खेद करै है।

सं० १८६०—सदल मिश्र (नासकेतोपाख्यान से)

कुंडमें क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमें कमल कमल के फूलों पर भौंरे गूँज रहे थे, तिसपर हंस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते, आसपास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलें कुहुक रहे थे जैसा बसंत ऋतु का घर हीहोय।

उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति तक हिन्दी गद्य का क्रम प्रायः ऐसा ही रहा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ ही में हिन्दी गद्य का रूपही बदल गया, और उसने एक नवीन युग में पदार्पण किया। हिन्दी गद्य के इस नये युग की चर्चा हम कविता-कौमुदी के दूसरे भाग में करेंगे।

पद्य

हिन्दी गद्य से पद्य में विशेष उन्नति हुई है। पद्य के द्वारा थोड़े समय और थोड़े शब्दों में अधिक प्रभावोत्पादक बातें कही जा सकती हैं। उसके कंठस्थ रखने में भी सुविधा होती है, अक्षरों मात्राओं और पदों का नियम बद्ध संगठन होने से उसके पढ़ने में भी आनन्द आता है। तथा पद्य का संबन्ध गान विद्या से है और गान विद्या मनुष्य मात्र को प्रिय है, यहाँ तक कि वह पशु पक्षी तक का हृदय भी मोहित करने की शक्ति रखती है. इन कारणोँ से पद्य की ओर लोगों की स्वाभाविक रुचि बढ़ती गई। गद्य में उपरोक्त गुण नहीँ; इसी से पूर्वकाल में उसका प्रचार भी कम हुआ। परन्तु उपरोक्त गुण न रहने पर भी आजकल पद्य की अपेक्षा गद्य का प्रचार अधिक क्यों है, इसका कारण यह है कि गद्य में ही संसार का प्रतिदिन का व्यवहार चलता है। बोलकर जो कुछ काम हमलोग करते कराते हैं, सब में गद्य का उपयोग करते हैं। इसलिये थोड़े ही परिश्रम से अपने मानसिक भावों को गद्य द्वारा प्रकट करने की शक्ति मनुष्य में आ सकती है। पद्य में यह सुगमता नहीं। उसके लिये अधिक परिश्रम करना पड़ता है, नियम सीखने पढ़ते हैं, मस्तिष्क के विचारों को पद्य के पेचीले रास्ते से घुमा फिरा कर निकालना पड़ता है, इसी से उसमें अधिक समय लगता है। अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी मनुष्य पद्य में इतनी पटुता नहीं प्राप्त कर सकता कि उसके द्वारा वह गद्य की तरह धारा प्रवाह रूप से बातचीत कर सके। पद्य के लिये प्रतिभा चाहिये। सब मनुष्य प्रतिभा सम्पन्न नहीं। अतएव जिनमें प्रतिभा है, पद्य-रचना के अधिकारी वे ही हैं।

गद्य-रचना आसान है, क्योंकि वही प्रतिदिन की बोलचाल है। उसमें उन्नति करना सर्व साधारण के लिये सुगम है।

गद्य की अपेक्षा पद्य में जो विशेषताएँ हैं, संस्कृत-साहित्य में भी उनपर विशेष ध्यान दिया गया है। हाथ मुँह धोने, दातुन करने, बाल सँवारने आदि साधारण कामों की बातें भी मनु आदि ने पद्य में कही हैं। वही क्रम हिन्दी के आदि काल में भी ग्रहण किया गया। उस समय के प्रतिभा सम्पन्न लोगों को जो कुछ कहना हुआ, उन्होंने सब पद्य में कहा। आजकल मनुष्यों के जीवन चरित्र प्रायः गद्य में लिखे जाते हैं, पूर्व काल में पद्य में लिखे जाते थे। इसमें संदेह नहीं कि गद्य की अपेक्षा पद्य में लिखा हुआ जीवन-चरित्र अधिक प्रभावशाली हो सकता है, परन्तु पद्य-रचना का कार्य उतना सुगम नहीं, जितना गद्य का।

हिन्दी-पद्य के विषय में दो एक बातें और कहने की हैं। वे यह हैं कि संस्कृत कविता में जैसा वर्णवृत्तों का प्राधान्य है, वैसा हिन्दी में नहीं। पुराने कवियों में तो शायद ही किसी ने वर्णवृत्तों में कविता की हो। यदि किसी ने की भी हैं, तो वर्णवृत्त के नियम का उसने अच्छी तरह से पालन नहीं किया है। मात्रिक छंदों में अपने भावों को सरलता पूर्वक वर्णन करने में उसे जैसी सफलता मिली है वैसी वर्णवृत्तों में नहीं। पुराने कवियों के विषय में एक यह बात भी ध्यान देने के योग्य है कि उनमें ऐसे कवियों की संख्या अधिक जिन्होंने अन्य छंदों की अपेक्षा घनाक्षरी और सवैया छंदों में ही अधिक रचना की है। यों तो तुलसी ने दोहे चौपाई में ही सारी राम कथा कह डाली है, बिहारी ने दोहों ही दोहों में रस भरा हैं, चंद और केशव ने विविध छंदों में अपने मनो-

भाव प्रकट किये हैं; किन्तु घनाक्षरी और सवैया लिखने वाले कवियों की ही संख्या अधिक है। आजकल इन छंदों की उतनी क़द्र नहीं रही। अब कितने ही नये छंदों का प्रचार बढ़ रहा है। आजकल वर्णवृत्तों में भी कविता सफलता के साथ होने लगी है।

हिन्दी-पद्य-रचना के विषय में एक बात यह विशेष उल्लेख के योग्य है कि इसमें प्रारंभ काल से ही तुकबंदी का प्रचार है। संस्कृत में जैसे अतुकान्त कविता का बाहुल्य है, हिन्दी में वैसा ही, बल्कि उससे भी विशेष, तुकबंदी का प्राधान्य है। मात्रिक छंदों में तुकबंदी के बिना भाषा का माधुर्य कम हो जाता है। हां, वर्णवृत्तों में अतुकान्त रूप नहीं खटकता। पहले के कवि वर्णवृत्तों में प्रायः नहीं के बराबर ही कविता रचते थे, अतः बेतुकी की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया।

आदि काल से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पहले तक का हिन्दी-पद्य का क्रम विकास कविता-कौमुदी (प्रथम भाग) में दिखलाया ही गया है, इस कारण से इस विषय में हम और उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं समझते।

हिन्दी और वैष्णव

वैष्णव सम्प्रदाय में चार भेद हैं—विष्णु सम्प्रदाय, रामानुज सम्प्रदाय, मध्वसम्प्रदाय और वल्लभ सम्प्रदाय। इन चारों सम्प्रदायों के मुख्य आचार्य विष्णु, रामानुज, मध्व और वल्लभ थे। विष्णु स्वामी द्रविड़ देश के रहने वाले थे। इनका जन्म दिल्ली में किसी राजा के मंत्री के घर हुआ था। इन्होंने शाङ्कर मत का खंडन किया है। रामानुज स्वामी भी द्रविड़ देश निवासी थे। इनके पिता का नाम " केशव " और माता

का "मति" था। मध्वाचार्य गुजराती थे। इनका जन्म गुजरात में सं० ११६६ में हुआ। वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ में आन्ध्रदेश (दक्षिण) में हुआ। इन्होंने भागवत दशम स्कंध का पद्य में अनुवाद किया है।

राम और कृष्ण वैष्णवों के प्रधान उपास्य देव हैं। ये विष्णु के अवतार माने जाते हैं। चंद बरदायी ने रासो के पहले ही छंद में गुरु को नमस्कार कर साकार लक्ष्मीश विष्णु को स्मरण किया है। आगे चल कर उसने दस अवतारों की कथा अलग अलग लिखी है। इससे मालूम होता है कि उसके चित पर वैष्णव धर्म का विशेष प्रभाव था। और हिन्दी का आदि कवि भी वही माना जाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि वैष्णवों ही ने हिन्दी का उसके जन्मकाल से लालन पालन किया है। हिन्दी के साथ वैष्णवों का अधिक सम्बंध होने का एक कारण और भी है। वह यह है कि हिन्दी उस प्रदेश की भाषा है, जहाँ वैष्णवों के आराध्य देव राम और कृष्ण ने अवतार धारण किया था। जिस स्थान पर उन्होंने लीला की, उस स्थान, वहाँ के निवासियों और उनकी भाषा से वैष्णवों का प्रेम होना स्वाभाविक ही है। राम और कृष्ण का कीर्तन करने में वैष्णव कवियों का एक ताँता सा बंध गया। हिन्दी में आज तक शायद हो ऐसा कोई कवि हुआ हो जिसने किसी न किसी रूप में रामकृष्ण का गुण गान न किया हो।

पंद्रहवीं शताब्दी में स्वामी रामानंद हुये। उन्होने मानों हिन्दी भाषा में वैष्णव धर्म की नीव दृढ़ कर दी। उनके पश्चात् ही भक्त शिरोमणि सूरदास ने सं० १५४० में जन्म लिया। सूरदास ने अपनी कविता के द्वारा हिन्दी का गौरव

मुसलमान सम्राट अकबर के दरबार तक फैला दिया। इसी शताब्दी में दक्षिण देश से आकर स्वामी वल्लभाचार्य ने कृष्ण-भक्ति को और भी चमत्कृत कर दिया। सूरदास और वल्लभाचार्य की संयुक्त शक्ति ने वैष्णव सम्प्रदाय में कृष्ण भक्ति की एक बाढ़ सी ला दी। इसी अवसर में स्वामी हरिदास, हितहरिवंश और नन्ददास की मधुर ध्वनि गूँजने लगी। वैष्णव-दल में एक से एक प्रतिभाशाली कवियों ने जन्म लेकर हिन्दी भाषा द्वारा जनता का मन ऐसा खींच लिया कि देश में चारों ओर हिन्दी कविता सहस्र धारा होकर उमड़ चली। अभी लोग इस आनन्द लहरी में स्नान करके तृप्त हो ही रहे थे कि हिन्दी कवियों के शिरोमणि तुलसीदास आ पहुँचे। इनकी कलम ने हिन्दी में वैष्णव धर्म को अजर अमर बना दिया। आज इनके समान प्रतिभाशाली कवि हिन्दी में कोई नहीं। आज अपढ़ सपढ़ सब में तुलसीदास वैष्णव धर्म की चर्चा करते हुये पाये जाते हैं। तुलसीदास के समान आज भारतवर्ष भर में किसी हिन्दी-कवि का आदर नहीं।

वैष्णव कवियों की कविता का रस चखकर मलिक मुहम्मद जायसी और रहीम ऐसे कितने ही मुसलमान कवि अपनी कविता द्वारा वैष्णव धर्म का प्रचार करने लगे। और रसखान तो जाति पाँति सब जोड़ कर स्वयं वैष्णव हो गये।

सूर और तुलसी के पीछे हिन्दी के जितने कवि हुये, सब राम और कृष्ण के कीर्तन में उत्तरोत्तर वृद्धि करते चले आये। ग्रामीण कवियों ने अपनी रोज की बोल चाल में भी कविता रची। उसके द्वारा गाँव के अपढ़ लोगों में वैष्णव धर्म का खूब प्रचार हुआ। एक उदाहरण देखिये :—

हरे हरे केसवा हरु रे कलेसवा
तोरा के रटत महेसवा रे।
तोरे नाम जपत बा पुजत बा
सबसे प्रथम गनेसवा रे॥
जल बरसैला धान सरसैला
सुख उपजैला मधवा रे।
प्रागदास प्रहलदवा के कारन
रघवा ह्वै गैलें बघवा रे॥

गाँव के लोग अपनी रोजमर्रा की बोलचाल को कविता को बड़े ध्यान से सुनते और खूब समझते हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दी भाषा द्वारा वैष्णव धर्म का सम्मान बढ़ा और वैष्णव धर्म के साथ हिन्दी का प्रचार हुआ।

हिन्दी और जैन

जैन-साहित्य में हिन्दी का रूप सोलहवीं शताब्दी से स्पष्ट होने लगा है। उसके पहले वह प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसी गुँथी थी कि हम उसे हिन्दी नहीं कह सकते। सं० १५८० में ठकुरसी नामक एक कवि ने "कृष्ण चरित्र" नामक एक छोटी सी कविता-पुस्तक लिखी, उसमें से एक छप्पय हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

कृपणु कहै रे मीत मज्झु घरि नारि सतावै।
जात चालि धणु खरचि कहै जो मोह न भावै॥
तिहि कारण दुब्बलौ रयण दिन भूख न लागै।
मीत मरणु आइयौ गुज्झु आखौ तू आगै॥
ता कृपण कहै रे कृपण सुणि, मीत न कर मन माँहि दुखु।
पीहरि पठाइ दै पापिणी ज्यों को दिण तूँ होइ सुखु॥

इस छंद में हिन्दी भाषा की एक स्पष्ट मूर्ति निकल आने में बहुत थाड़ी कसर दिखाई पड़ती है।

सत्रहवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास हुये। इनका जन्म सं० १६४३ में, जौनपुर नगर में हुआ। इन्हों ने अपनी कविता में हिन्दी का रूप स्पष्ट कर दिया। इनके रचे चार ग्रंथ, बनारसी विलास, नाटक समय सार, अर्द्ध कथानक, और नाममाला (कोष) प्रसिद्ध हैं। अर्ध कथानक इनका सबसे अच्छा ग्रंथ है। इसमें इन्होंने अपना ५५ वर्ष का आत्म-चरित लिखा है। इस ग्रंथ से इनकी कविताकी थोड़ी सी बानगी आगे दिखलाते हैं:—

सं० १६७३ में आगरे में प्लेग का प्रकोप हुआ। उसका वर्णन इन्होंने ऐसा किया है:—

इस ही समय ईति बिस्तरी, परी आगरे पहिली मरी।
जहाँ तहाँ सब भागे लोग, परगट भया गाँठ का रोग।
निकसै गाँठि मरै छिन माँहिं, काहू की बसाय कछु नाहिं।
चूहे मरैं वैद्य मरि जाहिं, भयसो लोग अन्ननहिं खाहिं।

*　　　*　　　*

जब अकबर बादशाह के मरने का समाचार जौनपुर पहुँचा, उस समय वहाँ के निवासियों की क्या दशा हुई, उसका वर्णन सुनिये:—

इसही बीच नगर में सोर भयो उदंगल चारिहु ओर।
घर घर दर दर दिये कपाट हटवानी नहिं बैठें हाट।
भले वस्त्र अरु भूषन भले ते सब गाड़े धरती तले।
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र लोगन पहिरे मोटे वस्त्र।
ठाढ़ौ कम्बल अथवा खेस नारिन पहिरे मोटे बेस।

ऊँच नीच कोऊ न पहिचान धनी दरिद्री भये समान।
चोरी धारि दिसै कहुँ नाहिं यौंहीं अपभय लोग डराहिं।

एक बार बनारसी दास परदेश में अपने साथियों के सहित कहीं ठहरे, इतने में पानी बरसने लगा। तब सब भाग कर सराय में गये, वहाँ जगह नहीं थी। बाज़ार में कहीं खड़े होनें को स्थान नहीं था। सब के किवाड़ बंद थे। उस समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :—

फिरत फिरत फावा भये बैठो कहै न कोइ।
तलै कींच सों पग भरे ऊपर बरसत तोइ॥
अंधकार रजनी विषैं हिमरितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कहयो पुरुष उठ्यो लै बाँस॥

बनारसीदास प्रतिभावान् कवि थे। इनके पश्चात् भूधरदास आदि और भी कई अच्छे कवि हुये, जिन्होंने हिन्दी भाषा में बड़ी ललित कविताएँ रची हैं। जैन विद्वानों ने पूर्व काल से ही हिन्दी की उन्नति और उसके प्रचार में हाथ बटाया है। आज भी हिन्दी के लिये उनका उद्योग कम नहीं।

हिन्दी और सिक्ख

सिक्खों के आदि गुरु नानक देव ने हिन्दी का बहुत प्रचार किया। उन्होंने यात्राएँ भी बड़ी दूर दूर की की थीं। सिख विद्वानों का कथन है कि वे जहाँ जहाँ जाते थे वहाँ हिन्दी ही में धर्मोपदेश करते थे। उनके कहे हुये वचन सब हिन्दी ही में हैं। सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव जी हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक थे। अपने से पहले हुये गुरुओं की वाणी का संग्रह करके "गुरु ग्रंथ साहब" की रचना

उन्होंने ही की है। यह सिक्खों का धर्म ग्रंथ है, और अब तक करतार पुर में मौजूद है। गुरु तेग बहादुरने औरंगजेब को हिन्दी ही में संसार की असारता का उपदेश दिया था।

सिक्ख सम्प्रदाय में हिन्दी का सब से अधिक सम्मान गुरु गोविन्द सिंह के समय में हुआ। गुरु गोविन्द सिंह का वर्णन कविता-कौमुदी में आ गया है। ये स्वयं हिन्दी के अच्छे कवि थे। हिन्दी में शिक्षा देने के लिये इन्होंने कई पाठशालायें खोली थीं। इनके सिवा भाई सन्तोष सिह ने भी हिन्दी का बहुत कुछ हित साधन किया है। ये सिक्खों में हिन्दी के महाकवि कहे जाते हैं। इनके रचे "सूर्य प्रकाश" नामक ग्रंथ को सिक्ख लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं।

काशी में शिक्षा प्राप्त करने के लिये गुरु गोविन्दसिंह के भेजे हुये संत गुलाब सिंह ने भी हिन्दी की बड़ी सेवा की है। इनके लिखे हुये चार ग्रंथ आजकल उपलब्ध होते हैं। सब हिन्दी में हैं, और वेदान्त प्रेमी सिक्खों में उनका बड़ा आदर है।

वर्तमान काल में भी सिक्ख सम्प्रदाय में ज्ञानी ज्ञान सिंह द्वारा हिन्दी का अच्छा प्रचार हो रहा है। इन्होंने हिन्दी कविता में "ग्रंथ प्रकाश" नामक ग्रंथ की रचना की है।

हिन्दी और गुजराती

गुजराती का हिन्दी के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। अच्छी हिन्दी जानने वाला थोड़े ही परिश्रम से गुजराती सीख सकता है।

गुजरात में गुजराती भाषा के साहित्य का जन्म नरसी मेहता और मीराबाई के समय से हुआ। मीराबाई की जीवनी और कुछ कविता कविता-कौमुदी में दी हुई है। उससे यह साफ़ प्रकट होता है कि मीराबाई की कविता की भाषा कैसी है। कहीं कहीं मारवाड़ी और गुजराती बोलचाल के शब्द आगये हैं नहीं तो वह विशुद्ध हिन्दी ही है। यहाँ हम नरसी मेहता का एक पद लिखते हैं। उससे पाठक आसानी से समझ लेंगे कि गुजराती और हिन्दी में कितना अंतर है।

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोए मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोक माँ सौने वन्दे निन्दा न करे केनी रे।
वाच, काछ, मन निश्चय राखे धन धन जननी तेनी रे॥
सम दृष्टी ने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले पर धन नव झाले हाथ रे॥
मोह माया व्यापे नहिं जेने दृढ़ वैराग्य जेना मन माँ रे।
राम नाम सूँ ताली लागी सकल तीरथ तेना तन माँ रे॥
वणलोभी ने कपट रहित छे काम कोध निवार्या रे।
भणे नरसैयों तेनूँ दर्शन करताँ कुल एकोतेर तार्या रे।

बहुत थोड़े शब्द इसमें ऐसे हैं, जो हिन्दी वाले न समझ सकते हों। परन्तु भाव तो सब समझ लेंगे।

नरसी मेहता के पहले गुजरात में गुजराती भाषा बोली तो जाती थी किंतु उसका कोई साहित्य नहीं था। ब्रजभाषा की कविता को ही विद्वान और कवि लोग पढ़ते और लिखते थे। गुजराती में ब्रजभाषा का आधिक्य है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि वल्लभ सम्प्रदाय का आदर गुजरात में बहुत है। वल्लभ सम्प्रदाय का भक्ति-साहित्य ब्रजभाषा में बहुत

है। इससे गुजरात में धार्मिक भाव के साथ ब्रजभाषा का भी प्रभाव बढ़ गया।

गुजराती कवियों ने हिन्दी के बहुत से छंदों को अपनाया है और उनमें रचनाएँ की हैं।

हिन्दी में जैसे तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद और गिरिधर की कुंडलियाँ प्रसिद्ध हैं, वैसे ही गुजराती में नरसी मेहता की प्रभाती, मीराबाई के भजन, सामल के छप्पय, दयाराम की गरभियाँ, और नर्मदाशंकर के रोला छंद की महिमा है। सुप्रसिद्ध कवि दयाराम की कविता तो हिन्दी से बहुत ही मिलती जुलती है। लीजिए, एक उदाहरण देखिये :—

हरदम कृष्ण कहे श्रीकृष्ण कहे तू ज़बाँ मेरी।
यही मतलब खातर करता हूँ खुशामद मैं तेरी॥
दही और दूध शक्कर रोज खिलाता हूँ तुझे।
तौ भी हर रोज़ हरनाम न सुनाती मुझे॥
खोई जिन्दगानी सारी सोइ गुनाह माफ़ तेरा।
दया मत भूले प्रभुनाम आखिर वक्त मेरा॥

बँगला और मराठी की अपेक्षा गुजराती का हिन्दी से अधिक सम्बन्ध है। इस समय भी गुजराती साहित्य में हिन्दी की बहुत छाया वर्त्तमान है।

हिन्दी और मुसलमान

मुसलमान जब से इस देश में आये, तभी से हिन्दी के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। राज्य का सब कामकाज हिन्दी ही में होता था। मुहम्मद क़ासिम, महमूद ग़ज़नवी और शहाबुद्दीन गोरी ने हिन्दुस्तान में अपना दफ़्तर हिन्दी ही में

रक्खा था। उनकी तवारीखों से इन बातों का साफ़ साफ़ पता चलता है। हसन गाँगूँ ब्राह्मणी ने गाँगूँ ब्राह्मण को अपने हिसाब का दफ़्र सौंपा था। अकबर के समय में तो हिन्दी का महत्व बहुत बढ़ गया था। वह स्वयं हिन्दी में कविता रचता था। अपने बेटे जहाँगीर को भी उसने हिन्दी सिखाई, और अपने पोते खुशरो को तो छः वर्ष की अवस्था में ही हिन्दी सीखने के लिये भूदत्त भट्टाचार्य के सुपुर्द कर दिया था। शाहजहाँ अपनी मातृभाषा के समान हिन्दी भाषा में अधिकार रखता था। शाहजहाँ के दरबार में हिन्दी कवियों का अच्छा सम्मान था। उसका बड़ा लड़का दारा तो हिन्दी और संस्कृत में अपने बाप दादाओं से भी बढ़कर निकला। उसने उपनिषदों का फ़ारसी भाषा में उलथा किया। औरङ्गजेब यद्यपि हिन्दुओं से बड़ा द्वेष रखता था, हिन्दी से विमुख वह भी नहीं था। एक बार शाहजादा मोहम्मद आज़म ने कुछ आम औरङ्गजेब के पास भेजे और प्रार्थना की कि इनके नाम रख दो। औरङ्गजेब ने बेटे को लिखा कि तुम स्वयं विद्वान होकर बूढ़े बाप को क्यों कष्ट देते हो, खैर तुम्हारी प्रसन्नता के लिये आमों का नाम मैंने सुधारस और रसना विलास रक्खा है।

शाही दरबारों में हिन्दी गवैयों का भी बड़ा आदर था। तानसेन को अकबर ने पहले ही मुजरे में एक करोड़ का इनाम दिया था। बैरमखाँ खानखाना ने बाबा रामदास को एक लाख रुपये एक ही दिन दे डाले थे। शाहजहाँ ने महापात्र जगन्नाथ राय त्रिशूली के बराबर रुपये तौल दिये थे। उसी ने कलावंत लाल खाँ को गुणनिधि की उपाधि दी थी। हिन्दी का इतना आदर था कि मुसलमान गवैये भी हिन्दी

ही राग रागिनियाँ गाते थे। हिन्दू गवैयों का तो कहना ही क्या है, मुसलमान गवैये अब तक भी हिन्दी राग रागिनियाँ गाते हैं।

मुसलमानी राजत्वकाल का इतिहास और हिन्दी का इतिहास यदि मिलाकर देखा जाय तो यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि मुसलमानों की उन्नति के साथ हिन्दी की उन्नति हुई है और उनके अधःपतन के साथ एक बार हिन्दी का भी रंग फीका पड़ गया था। जब मुसलमानी शासन का सूर्य उन्नति पर था, हिन्दी के बड़े बड़े प्रतिभा शाली कवि उसी समय में हुये थे। मुसलमानों की उन्नति के समय हिन्दी इस तरह फूली फली, कि उसके सुमधुर सुगंध और स्वाद से आजकल हम लोग बहुत आनन्द पा रहे हैं। हिन्दी के इस नाते से मुसलमानों की ओर हमारा प्रेम बढ़ जाता है। हिन्दी की इस उन्नति से मुसलमानों को गर्व होना चाहिये।

यहाँ तक तो बादशाहों की कथा हुई, अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि मुसलमान कवियों ने हिन्दी की उन्नति में कितना हाथ बटाया है।

चौदहवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध मुसलमान कवि अमीर खुशरो हुये। उनका फारसी और हिन्दी की मिलावट का एक ग़ज़ल सुनिये ;—

ज़े हाले मिसकीं मकुन तग़ाफुल
दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ न दाम ऐ जाँ
न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥

शबाने हिजराँ दराज़ चूं
ज़ुलफ़ो रोज़े वसलत चु उम्र कोताह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ
तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ॥

इसमें जितना अंश हिन्दी में कहा गया है, वह कितना सरल है, सुनते ही समझ में आ जाता है। खुशरो के नाम से बहुत सी पहेलियाँ प्रचलित हैं, वे भी ऐसी सरल हैं कि बच्चों तक की समझ में आ जाती हैं।

खुशरो के सिवाय और भी बहुत से मुसलमान कवियों ने हिन्दी में कविता की है। उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं। साथ ही यह भी लिख दिया जाता है कि उनके रचे हुये कौन कौन से ग्रन्थ उपलब्ध हैं :—

कवि	ग्रन्थ
१—अकबर	फुटकर कविताएँ
२—कादिर बख्श	” ”
३—अब्दुर्रहीम खानखाना	“ कविता-कौमुदी ” में वर्णन देखिये।
४—उसमान	क० कौ० में देखिये,
५—मलिक मुहम्मद जायसी	” ”
६—सैयद इब्राहीम (रसखान)	” ”
७—मुबारक	” ”
८—अहमद	वेदान्त कविता
९—वहाब	बारह मासा
१०—अब्दुर्रहमान	यमक शतक
११—जलील	फुटकर ”
१२—याकूब खाँ	रसिकप्रिया की टीका

कवि	ग्रन्थ
१३—जुल्फिकार	सतसई की टीका
१४—अनवर खाँ	अनवर चंद्रिका
१५—प्रेमी यमन	अनेकार्थ नाम माला
१६—आजम	नखशिख
१७—सैयद गुलाब नबी	रसप्रबोध, अङ्ग दर्पण
१८—तालिब अली	नखशिख
१६—नबी	फुटकर
२०—आलम	क० कौ० देखिये

किसी किसी मुसलमान कवि ने तो हिन्दी में ऐसी अच्छी कविता की है, कि उसके एक एक पद पर कितने ही हिन्दू कवियों की कविता न्योछावर कर दी जा सकती है। अंत में बड़े साहस और संतोष के साथ हम यह कह सकते हैं कि पिछले सहृदय मुसलमान बादशाहों और कवियों ने हिन्दी की जो सेवा की है वह कभी न कभी अवश्य हिन्दू मुसलमानों के भाषा विषयक विरोध को दूर करने में समर्थ होगी।

रामनरेश त्रिपाठी

नोट—हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास अभी समाप्त नहीं हुआ है। कविता-कौमुदी के दूसरे भाग में हिन्दी कविता, हिन्दी और उर्दू तथा हिन्दी की वर्तमान दशा पर लिखा जायगा।

लेखक

कविता-कौमुदी

चंदबरदाई

चंद बरदाई का नाम राजपूताने में बहुत प्रसिद्ध है। वह भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज चौहान का राजकवि, मित्र और सामन्त था। वह भट्ट जाति के जगात (वर्तमान राव) नामक गोत्र का था। उसके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे, और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानों के यहाँ थी।

चंद का जन्म लाहौर में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि चंद और पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था और एक ही तिथि को दोनों ने शरीर भी छोड़ा। पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ में और मृत्यु १२४८ में हुई। अतएव चंद के भी जन्म मरण का समय यही समझना चाहिये।

चंद के पिता का नाम राववेण और विद्या गुरु का नाम गुरुप्रसाद था। वह षटभाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, शास्त्र, पुराण, नाटक, और गान आदि विद्याओं में बड़ा निपुण था, वह जालन्धारी (जालपा) देवी का उपासक था।

चंद ने दो विवाह किये थे। उसकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा

था। उसके ग्यारह सन्तति हुईं, दस लड़के और एक लड़की ; लड़की का नाम राजबाई था। चंद के दसों पुत्रों में जल्ह बड़ा योग्य था। पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई का विवाह, "रासो" के अनुसार, चित्तौर के रावल समरसिंह के साथ हुआ था। पृथाबाई के साथ जल्ह भी रावल जी को दहेज में दिया गया था। जब शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में रावल समरसिंह जी मारे गये तब उनके साथ पृथाबाई सती हुई थी। सती होने के पहिले पृथाबाई ने अपने पुत्र को एक पत्र लिखा था। जिसमें सूचना दी थी कि श्रीहुजूर समर में मारे गये, और उनके संग रिषीकेस जी भी बैकुंठ को पधारे हैं। रिषीकेस जी उन चार लोगों में से हैं जो दिल्ली से मेरे संग दहेज में आये थे, इस लिये इनके वंशजों की खातिरी राखना। ने पाछे मारा च्यारी गरां का मनषां की षात्री राखजो। ई मारा जीव का चाकर है जो थासु कदी हरामषोर नीवेगा"। यह पत्र माघ सुदी १२ संवत् १२४८ विक्रम का लिखा हुआ है। इससे प्रकट है कि जल्ह पृथाबाई के साथ चित्तौर गया था।

चंद ने पृथ्वीराज का चरित्र जन्म से लेकर अन्तिम युद्ध तक "पृथ्वीराज रासो" नामक महाकाव्य में वर्णन किया है। अन्तिम लड़ाई के समय चंद पृथ्वीराज के साथ उपस्थित नहीं था, वह देवी के एक मन्दिर में बैठ कर "रासो" को पूरा कर रहा था। इसलिये अन्तिम लड़ाई का वृत्तान्त वह नहीं लिख सका। पीछे से उसके पुत्र जल्ह ने उस युद्ध का वृत्तान्त लिखा। रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन ने पकड़ लिया था। वह उन्हें गजनी ले गया और उनकी दोनों आँखें फोड़वा कर उसने उन्हें कैदखाने में डाल दिया। "रासो"

लिखकर चंद अपने घर आया और उसे जल्ह को देकर वह गजनी गया। वहाँ गोरी को प्रसन्न करके वह पृथ्वीराज से मिला। उसने कौशल से पृथ्वीराज के हाथ से शहाबुद्दीन को मरवा डाला। फिर राजा और कवि दोनों ने कटार से अपना अपना प्राणांत वहीं किया। पृथ्वीराज के साथ चंद का जीवन चरित्र ऐसा मिला हुआ है कि उससे वह किसी तरह अलग नहीं किया जा सकता। चंद पृथ्वीराज का लँगोटिया मित्र था। वह सदा पृथ्वीराज के साथ रहता था, इसलिये जो जो घटनायें उसने लिखी हैं, उनमें, सत्य का अंश बहुत अधिक है। उसने आँखों देखी बातें लिखी हैं।

चंद महाकवि था। उसका बनाया हुआ "पृथ्वीराज रासो" हिन्दी में एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें स्थान २ पर कविता के नवो रसों का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया गया है। चंदने पृथ्वीराज का सम्पूर्ण चरित्र अपनी स्त्री गौरी से कहा है। जिस प्रकार तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद, बिहारी के दोहे, गिरधर की कुण्डलिया और पद्माकर के घनाक्षरी छन्द प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार चन्द ने छप्पय लिखने में बड़ा नाम पाया है।

"रासो" की कविता में संयुक्ताक्षरों की खूब भरमार है। पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि जीभ को खूब ऊबड़ खाबड़ रास्ता तै करना पड़ रहा है, पर उस रास्ते में जो काव्य रस के मनोहर पुष्प खिले हुये हैं उनकी सुगन्ध से मन मुग्ध हो जाता है। "रासो" में बीर और श्रृङ्गार रस की कविता बहुत है, उनमें बड़ा चमत्कार और बड़ी मनोमोहकता है।

चंद की कविता की भाषा अच्छी तरह वे ही लोग समझ सकते हैं जिन्हें संस्कृत और राजपूताने की बोली का अच्छा

ज्ञान हो। साधारण हिन्दी जानने वालों की समझ में वह अच्छी तरह नहीं आ सकती।

"रासो" बहुत बड़ा ग्रन्थ है। समय समय पर चंद जो कवितायें रचता था, उसे वह कण्ठस्थ रखता था, या कागज़ पर लिख लेता होगा। उन्हें पुस्तकाकार उसने ६० दिन में किया। रासो में कुल ६९ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। पृथ्वीराज ने अपने जीवन में बहुत सी लड़ाइयाँ लड़ी थीं और उन्होंने विवाह भी कई किये थे, रासो में सब का विस्तार पूर्वक वर्णन है। चंद का जन्म लाहौर में हुआ था और वहाँ मुसलमानों का अधिक संसर्ग था इसलिये चंद की कविता में फ़ारसी के भी बहुत से शब्द आ गये हैं।

आगे हम चंद की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं :—

पद्मावती समय

दूहा

पूरब दिस गढ़ गढ़न पति समुद शिखर अति द्रुग्ग।
तहँ सु विजय सुरराज पति जादू कुलह अभग्ग ॥ १ ॥
हसम ।हयग्गय देस अति पति सायर म्रज्जाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल धुनि निसान बहु साद ॥ २ ॥

कवित्त

धुनि निसान बहु साद नाद सुरपंच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटित साज तिन ॥
गज असंख गज पतिय मुहर सेना तिय संखह।
इक नायक कर धरी पिनाक धर भर रज रक्खह ॥

दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम सो पदम सेन कूँवर सुघर ॥३॥

दूहा

पदम सेन कूँवर सुघर ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट मनहुँ कला ससि भान ॥ ४ ॥

कवित्त

मनहुँ कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससिता समीप अमृत रस पिन्निय ॥
बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोति नख शिख अहि घुट्टिय ॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गति त्रिह बनाय संचै सचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहु काम कामिनि रचिय ॥ ५ ॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रचिय रचिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी सुर नर मुनियर पास ॥६॥
सामुद्रिक लच्छन सकल चौंसठि कला सुजान।
जानि चतुरदस अंग षट रति बसंत परमान ॥ ७ ॥
सखियन संग खेलत फिरत महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिष्षिय नयन तब मन भयौ हुलास ॥ ८ ॥

कवित्त

मन अति भयौ हुलास बिगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर बिम्ब फल जानि कीर छवि ॥
यह चाहत चख चकृत उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ लियौ तब गहित अप्प कर ॥

हरषत अनन्द मन महि हुलस लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटित सो तिहिं महँ रष्षत भई॥ ९॥

दूहा

तिही महल रष्षत भई गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुट्ट्यो कीर सों राम पढ़ावत फुल्ल॥ १०॥
कीर कुँवरि तन निरखि दिखि नख सिख लौं यह रूप।
करता करी बनाय कै यह पदमिनी सरूप॥ ११॥

कवित्त

कुटिल केस सुदेश पौह परचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संध हंस गति चलत मंद मद॥
सेत बस्त्र सोहै सरीर नख स्वाति बुंद जस।
भमर भँवहि भुल्लहि सुभाव मकरंद वास रस॥
नैन निरखि सुख पाय सुक यह सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिल्लहि राज प्रथिराज जिय॥ १२॥

दूहा

सुक समीप मन कुँवरि को लग्यो बचन कै हेत।
अति विचित्र पंडित सुआ कथत जु कथा अमेत॥१३॥

गाथा

पुच्छत वयन सु बाले उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।
कवन नाम तुम देस कवन थंद करय परवेस॥ १४॥
उच्चरिय कीर सुनि बयनं हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं।
तहाँ इन्द्र अवतार चहुआनं तहँ प्रथिराजह सूर सुभारं॥ १५॥

पद्धरी

पद्मावतीहिं कुँवरी सँघत्त,
दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त ॥ १६ ॥
हिंदवान थान उत्तम सुदेश,
तहँ उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥ १७ ॥
संभरि नरेस चहुआन थान,
प्रथिराज तहाँ राजंत भान ॥ १८ ॥
वैसह बरीस षोड़स नरिंद,
आजान बाहु भुअ लोक यंद ॥ १६ ॥
संभरि नरेस सोमेस पूत,
देवंत रूप अवतार धूत ॥ २० ॥
सामंत सूर सब्बै अपार,
भूजान भीम जिम सार भार ॥ २१ ॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन,
तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ॥ २२ ॥
सिंगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जँजीर,
चुक्कै न सबद बेधंत तीर ॥ २३ ॥
बल बैन करन जिमि दान पान,
सतसहस सील हरिचँद समान ॥ २४ ॥
साहस सुकंम विक्रम जुवीर,
दानव सुमत्त अवतार धीर ॥ २५ ॥
दिस च्यार जानि सब कला भूप,
कंद्रप्प जानि अवतार रूप ॥ २६ ॥

दूहा

कामदेव अवतार हुअ सुअ सोमेसर नंद ।
सहस किरन झलहल कमल रिति समीप वर विंद ॥ २७ ॥
सुनत श्रवन प्रथिराज जस उमग बाल विधि अङ्ग ।
तन मन चित चहुवाँन पर बस्यो सुरत्तह रङ्ग ॥ २८ ॥
बेस बिती ससिता सकल आगम कियो बसंत ।
मात पिता चिंता भई, सोधि जुगति कौ कंत ॥ २९ ॥

कवित्त

सोधि जुगति कौ कंत कियौ तब चित्त चहौं दिस ।
लयौ विप्र गुर बोल कही समझाय बात तस ॥
नर नरिंद नरपती बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह ।
सीलवन्त कुल सुद्ध देहु कन्या सुनरेसह ॥
तब चलन देहु दुज्जह लगन सगुन बंद दिय अप्प तन ।
आनंद उछाह समुदह सिषर बजत नद्द नीसान घन ॥ ३० ॥

दूहा

सवा लष्ष उत्तर सयल कमऊँ गढ़ दूरंग ।
राजत राज कुमोद मनि हय गय द्रिब्ब अभंग ॥ ३१ ॥
नारि केलि फल परठि दुज चौक पूरि मनि मुत्ति ।
दई जु कन्या बचन बर अति अनन्द करि जुत्ति ॥ ३२ ॥

भुजंग प्रयात

बिहसित बरं लगन लिन्नौ नरिंदं,
बजी द्वार द्वारं सु आनन्द दुंदं ॥ ३३ ॥
गढंनं गढ़ं पत्ति सब बोलि नुत्ते,
सबं आइयं भूप कटु बंस जुत्ते ॥ ३४ ॥

चले दस सहस्सं असव्वार जानं,
पूरियं पैदलं तेतीस थानं ॥ ३५ ॥
मदं गल्लितं मत्त सै पंच दंती,
मनो साम पाहार बुग पंति पंती ॥ ३६ ॥
चलै अग्गि तेजी जु तत्ते तुखारं,
चौवरं चौरासी जु साकत्ति भारं ॥ ३७ ॥
नगं कंठ नूपं अनोपं सुलालं,
रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं ॥ ३८ ॥
सुरं पंच साबद्द वाजित्र वाजं,
सहस्स सहन्नाय मृग मोहि राजं ॥ ३९ ॥
समुद सिर सिखर उच्छाह छाहं,
रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं ॥ ४० ॥
पदमावती विलखि वर बाल बेली,
कही कीर सों बात तब होइ केली ॥ ४१ ॥
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं,
बरं चाहुआनं जु आनौ नरेसं ॥ ४२ ॥

दूहा

आनों तुम्ह चहुआन बर अरु कहि इहै सँदेस।
साँस सरीरहि जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेस ॥ ४३ ॥

कवित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिखि कग्गर दिन्नौ।
लगु नव रग रचि सरब दिन द्वादस ससि लिन्नौ ॥
सें अरु ग्यारह तीस साष संवत परमानह।
जोवित्री कुल सुद्ध बरनि वर रष्षहु प्रानह ॥

दिष्ष ंत दिष्ट उच्चरिय बर इक्क पलक बिलम्ब न करिय।
अलगार रयन दिन पंच महि ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ॥ ४४ ॥

दूहा

ज्यों रुकमनि कन्हर वरी ज्यों वरि संभर कांत।
शिव मँडप पच्छिम दिसा पूजि।समय स प्रांत ॥ ४५ ॥
लै पत्री सुक यों चल्यौ उड्यो गगनि गहि वाव।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर अट्ठ जाम में जाव ॥ ४६ ॥
दिय कग्गर नृप राज कर षुलि बंचिय प्रथिराज।
सुक देखत मन में हँसे कियो चलन कौ साज ॥४७॥

कवित्त

उहै घरी उहि पलनि उहै दिन बेर उहै सजि।
सकल सूर सामंत लिये सब बोलि बंब बजि ॥
अरु कवि चंद अनूप रूप सरसै बर कह बहु।
और सेन सब पच्छ सहस सेना तिय सष्षहु ॥
चामंडराय दिल्ली धरह गढ़ पति करि गढ़ भार दिय।
अलगार राज प्रथिराज तब पूरब दिस तब गमन किय ॥४८॥

दूहा

जादिन सिषर बरात गय तादिन गय प्रथिराज।
ताही दिन पतिसाह कौं भइ गज्जनै अवाज ॥ ४९ ॥

कवित्त

सुनि गज्जनै अवाज चढ्यो साहाब दीन बर।
खुरासान सुलतान कास काविलिय मीर धुर ॥
जङ्ग जुरन जालिम जुझार भुज सार भार भुअ।

धर धर्मकि भजि सेस गगन रवि लुप्पि रैन हुअ ॥
उलटि प्रवाह मनौ सिंधु सर रुक्कि राह अड्डौ रहिय।
तिहि घरिय राज प्रथिराज सौं चंद बचन इहि विधि कहिय॥५०॥
निकट नगर जब जानि जाय वर विंद उभय भय।
समुद सिखर घन नद्द इंद दुहुँ ओर घोर गय॥
अगिवानिय अगिवान कुँअर बनि बनि हय सज्जति।
दिष्षन को त्रिय सबनि गौख चढ़ि छाजन रज्जति॥
विलखि अवास कूंवरि वदन मनो राह छाया सुरत।
झंषति गवष्षि पल पल पलकि दिखत पंथ दिल्ली सुपति ॥५१॥

पद्धरी

दिष्षंत पंथ दिल्ली दिसान,
सुख भयो सूक जब मिल्यो आन ॥ ५२ ॥
संदेश सुनत आनन्द नैन,
उमगीय बाल मनमथ्थ सैन ॥ ५३ ॥
तन चिकट चीर डार्यो उतार,
मज्जन मयंक नव सत सिँगार ॥ ५४ ॥
भूषन मँगाय नख सिख अनूप,
सजि सेन मनो मनमथ्थ भूप ॥ ५५ ॥
सोव्रन्न थार मोतिन भराय,
झलहल करंत दीपक जराय ॥ ५६ ॥
संगह सखीय लिय सहस बाल,
रुकमिनिय जेम मज्जत मराल ॥ ५७ ॥
पूजीय गवरि संकरि मनाय,
दच्छिनै अंग करि लगिय पाय ॥ ५८ ॥
फिर देखि देखि प्रथिराज राज,
हस मुद्ध मुद्ध चरपट्ट लाज ॥ ५९ ॥

कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय,
लै चल्यो नृपति दिल्ली सुराय ॥ ६० ॥
भइ खबरि नगर बाहिर सुनाय,
पद्मावतीय हरि लीय जाय ॥ ६१ ॥
बाजी सुबंब हय गय पलान,
दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसान ॥ ६२ ॥
तुम्ह लेहु लेहु मुख जंपि जोध,
हम्राह सूर सब पहरि क्रोध ॥ ६३ ॥
अग्गे जु राज प्रथिराज भूप,
पच्छे सुभयो सब सैन रूप ॥ ६४ ॥
पहुँचे सु जाय तत्ते तुरंग,
भुअ भिरन भूप जुरि जोध जङ्ग ॥ ६५ ॥
उलटी जु राज प्रथिराज बाग,
थकि सूर गगन धर धसत नाग ॥ ६६ ॥
सामंत सूर सब काल रूप,
गहि लोह छोह वाहै सु भूप ॥ ६७ ॥
कम्मान बान छुट्टहिं अपार,
लागंत लोह इम सारि धार ॥ ६८ ॥
घमसान घान सब बीर खेत,
घन श्रोन बहत अरु रकत रेत ॥ ६९ ॥
मारे बरात के जोध जोह,
परि रुंड मुंड अरि खेत सोह ॥ ७० ॥

दूहा

परे रहत रिन खेत अरि करि दिल्लिय मुख रुक्ख ।
जीति चल्यो प्रथिराज रिन सकल सूर भय सुक्ख ॥ ७१ ॥

पदमावति इम लै चल्यो हरखि राज प्रथिराज।
एतेंपरिपतिसाह की भई जु आनि अवाज ॥ ७२ ॥

कवित्त

भई जु आनि अवाज आय साहाब दीन सुर।
आज गहौं प्रथिराज बोल बुल्लंत गजत धुर॥
क्रोध जोध जोधा अनंत करिय पंती अनि गज्जिय।
बाँन नालि हथनालि तुपक तीरह सब सज्जिय॥
पवै पहार मनो सार के भिरि भुजान गजनेस बल।
आये हकारि हंकार करि खुरासान सुलतान दल॥ ७३ ॥

भुजंग प्रयात

खुरासान मुलतान खंधार मीरं,
बलक सोवलं तेग अच्चूक तीरं ॥ ७४ ॥
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी,
ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी॥ ७५ ॥
मँजारी चखी मुक्ख जम्बक्क लारी,
हजारी हजारी हुकैं जोध भारी ॥ ७६ ॥
तिनं पष्षरं पीठ हय जीन सालं,
फिरंगी कती पास सुकलात लालं॥ ७७ ॥
तहाँ वाघ वाघं मरूरी रिछोरी,
घनं सार संमूह अरु चौरँ भोरी ॥ ७८ ॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी,
तुरक्की महाबान कम्मान बाजी ॥ ७९ ॥
ऐसे असिव असवार अग्गेल गोलं,
भिरे जून जेते सुतत्ते अमोलं ॥ ८० ॥
तिनं मद्धि सुलतान साहाब आपं,

इसे रूप सों फौज बरनाय जापं ॥ ८१ ॥
तिनं घेरियं राज प्रथिराज राजं,
चिहौ ओर घनघोर नीसान बाजं ॥ ८२ ॥

कवित्त

बज्जिय घोर निसान रान चहुआन चिहौ दिस ।
सकल सूर सामंत समरि बल जंत्र मंत्र तस ॥
उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट ।
कढ़त तेग मनो बेग लगत मनो बीज झट्ट घट ॥
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भई श्रोन धर ।
हर हरषि वीर जग्गे हुलस हुरव रंगि नव रत्त वर ॥ ८३ ॥

दूहा

हुरव रंग नव रंत वर भयौ जुद्ध अति चित्त ।
निस वासुर समुझि न परत न को हार नह जित्त ॥ ८४ ॥

कवित्त

न को हार नह जित्त रहेइ न रहहि सूर वर ।
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर ॥
कहौं कमध कहौं मथ्थ कहौं कर चरन अंत दरि ।
कहौं कंध वहि तेग कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर ॥
कहौं दंत मत हय खुर खुपरि कुंभ भ्रसुंडह रुंड सब ।
हिंदवान रान भय भान मुख गहिय तेग चहुआन जब ॥ ८५ ॥

भुजंग प्रयात

गही तेग चहुवान हिँदवान रानं,
गजं जूथ परि कोप केहरि समानं ॥ ८६ ॥
करे रुंड मुंडं करी कुंभ फारे,
बरं सूर सामंत हुकि गर्ज भारे ॥ ८७ ॥

करी चोह चिक्कार करि कलप भग्गे,
मदं तजियं लाज ऊमंग मग्गे ॥ ८८ ॥
दौरे गजं अंध चहुआन केरो,
करीयं गिरद्दं चिहो चक्क फेरो ॥ ८६ ॥
गिरद्दं उड़ी भान अंधार रैनं,
गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं ॥ ६० ॥
सिरं नाय कम्मान प्रथिराज राजं,
पकरिये साहि जिम कुलिंग बाजं ॥ ६१ ॥
लैचल्यो सिताबी करी फारि फौजं,
परे मीर सै पंच तहँ खेत चोजं ॥ ६२ ॥
रजंपुत्त पच्चास जुज्झे अमोरं,
बजे जीत के नद्द नीसान घोरं ॥ ६३ ॥

दूहा

जीति भई प्रथिराजकी पकरि साह लै संग।
दिल्ली दिसि मारगि लगौ उतरि घाट गिर गंग ॥ ६४ ॥
वर गोरी पद्मावती गहि गोरी सुरतान ॥
निकट नगर दिल्ली गये प्रथीराज चहुआन ॥ ६५ ॥

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरी परिट्ठय।
हर बाँसह मंडप बनाय करि भाँवरि गंठिय ॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रत्ति वर।
पद्मावति दुलहिन दुल्लह प्रथिराज राज नर ॥
डंड्यो साह सहाबदी अट्ठ सहस हय वर सुवर।
दै दान मान षट भेस कों चढ़े राज द्रुग्गा हुजर ॥ ६६ ॥

दूहा

चढ़े राज द्रुग्गह नृपति सुमत राज प्रथिराज ।
अति अनन्द आनन्द सैं हिंदवान सिरताज ॥ ९७ ॥

चंद के अन्य दोहे

सरस काव्य रचना रचौं खल जन सुनिन हसंत ॥
जैसे सिंधुर देखि मग स्वान सुभाव भुसंत ॥ ९८ ॥
तौ पनि सुजन निमित्त गुन रचिये तन मन फूल ।
जूका भय जिय जानि कै क्यों डारियै दुकूल ॥ ९९ ॥
पूरन सकल विलास रस सरस पुत्र फलदान ।
अंत होइ सहगामिनी नेह नारि को मान ॥ १०० ॥
जस हीनो नागौ गिनहु ढंक्यो जग जसवान ।
लंपट हारै लोह छन त्रिय जीतै बिन बान ॥ १०१ ॥
समदरसो ते निकट है भुगति मुगति भरपूर ॥
विषम दरस वा नरन तें सदा सरबदा दूरि ॥ १०२ ॥
पर योषित परसै नहीं ते जीते जगबीच ।
परतिय तक्कत रैन दिन ते हारे जग नीच ॥ १०३ ॥

विद्यापति ठाकुर

महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर, पितामह का जयदत्त ठाकुर और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर था। इनका जन्म मिथिला देश के बिसपी ग्राम में हुआ था।

विद्यापति का जन्म किस संवत में हुआ, इसका ठीक ठीक

पता नहीं चलता। बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा संकलित विद्या-पति की पदावली में राजा शिवसिंह के सिंहासनारोहण विषयक एक कविता है। उसके ऊपर के दो पद हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं:—

३ ६ २ ४ २ ३ १
"अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवय सक समुद्द कर आगनि ससी
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ बार वेहप्पय जाउ लसी"

इससे केवल इतना पता चलता है कि लक्ष्मणसेन (लक्खन) द्वारा प्रचारित सन् २९३ (शकाब्द १३२४, विक्रम संवत् १४५९) में राजा शिवसिंह गद्दी पर बैठे। विद्यापति राजा शिवसिंह के दरबार में थे। दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। राजा ने इनको विसपी ग्राम दान दे दिया था। उसका दानपत्र अभी तक इनके वंशजों के पास है। उस पर सन् २९३ लिखा है। इससे अनुमान होता है कि राजा ने गद्दी पर बैठने की खुशी में विसपी ग्राम विद्यापति को दे दिया था। राज दरबार में अपनी विद्वत्ता के बल पर इतना सम्मान प्राप्त करने के समय किसी मनुष्य की आयु कम से कम कितनी होनी चाहिये, इसकी कल्पना करके सन् २९३ के उतना समय पहले विद्यापति का जन्म काल अनुमान कर लेना चाहिये।

विद्यापति की पदावली में बहुत से पद्य ऐसे हैं जिन में राजा शिवसिंह और उनकी रानी लखिमा देवी का नाम आया है। शृंगार रस का जहाँ कोई मधुर वर्णन आया है, वहाँ विद्यापति ने लिखा है कि इस रस को राजा शिवसिंह और लखिमा देवी ही जानती हैं। रानी लखिमा देवी के विषय में ऐसा कहने की स्वतन्त्रता जब कवि को प्राप्त थी तब इससे

प्रकट होता है कि विद्यापति को राजा शिवसिंह बहुत मानते थे।

विद्यापति प्रतिभाशाली कवि, और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने संस्कृत भाषा में पाँच उत्तम ग्रन्थ बनाये जिनका मिथिला में बड़ा आदर है। मैथिल भाषा में इनके बनाये बहुत से पद हैं, जो मिथिला में कामकाज के अवसर पर गृहस्थों के यहाँ गाये जाते हैं, और इनके कुछ पदों का बंगदेश में भी विशेष आदर है। इसी से कुछ बंगाली महाशय इनको भी बंगाली कवि कहते हैं, परन्तु ये बंगाली नहीं थे।

इनकी कविता में श्रृंगार रस प्रधान है। संयोग वियोग के छोटे छोटे भावों को भी दिखाने में इन्होंने बड़ी पटुता दिखलाई है। हमने इनकी कविता में से कुछ अच्छे अच्छे पद चुन कर आगे संग्रह कर दिये हैं, उसके पढ़ने से पाठकों का सहज ही में यह पता चल जायगा कि इन्होंने भावों के झलकाने में कितनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। इनकी कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसंद करते थे। वास्तव में इनकी कविता बड़ी ही श्रुति मधुर और भाव-विभूषिता है।

विद्यापति ने पारिजात-हरण और रुक्मिणी-परिणय नामक दो नाटक ग्रन्थ भी बनाये हैं, हिन्दी में पहले नाटककार विद्यापति ही हैं।

इनकी कविता की भाषा हिन्दी है, केवल थोड़े से ऐसे शब्द हैं जो मिथिला में बोले जाते हैं। अपनी कविता में स्थान स्थान पर इन्होंने ठेठ हिन्दी शब्दों का अच्छा प्रयोग किया है।

इनकी कविता के कुछ चुने हुए पद यहाँ हम उद्धृत करते हैं। बहुत से पद चमत्कार पूर्ण होने पर भी हमने छोड़ दिये, क्योंकि उनके भावों में अश्लीलता अधिक थी।

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बलाव ।
समय सँकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव ॥
सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि ।
जमुना का तिर उपवन उद्वेगल फिरि फिर ततहि निहार ।
गोरस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि ॥
तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन बचन सुनह किछु मोरा ।
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति बन्दह नन्दकिशोरा ॥ १ ॥

कि कहब हे सखि आजुक बात,
मानिक पड़ल कुबनिक हात ।
काच कांचन न जानय मूल,
गुंजा रतन करइ समतूल ।
जे किछु कभु नहिं कला रस जान,
नीर खीर दुहुँ करे समान ।
तन्हि सो कहाँ पिरित रसाल,
बानर कण्ठे कि मोतिय माल ।
भनइ विद्यापति इह रस जान,
बानर मुँह कि शोभय पान ॥ २ ॥

सजनी अपद न मोहिं परबोध ।
तोड़ि जोड़िअ जाहाँ गेंठे पए पड़ ताहाँ तेज तम परम विरोध ॥
सलिल सनेह सहज थिक सीतल ई जानइ सबे कोइ ।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइय तइअओ विरत रस होइ ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ कुल ससि नीली रंग ।
अनुभवि पुनि अनुभवए अचेतन पड़ए हुतास पतङ्ग ॥ ३ ॥
कालि कहल पिआ ए साँझहिरे जायब मोये मारू देश ।
मोये अभागिली नहिं जानल रे सङ्ग जइतँओ योगिनी वेश ॥

हृदय बड़ दारुन रे पिया बिनु बिहरि न जाइ।
एक शयन सखि सुतल रे अछल बालभु निस भोर।
न जानल कति खन तेजि गेलरे बिछुरल चकवा जोर॥
सून सेज हिय सालइ रे पियाए बिनु घर मोये आजि।
विनति करहु सुसहेलिनि रे मोहि देह अगिहर साजि॥
विद्यापति कवि गाओल रे आवि मिलत पिय तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे राय शिवसिंह नहिं भोर ॥ ४ ॥

हमर नागर रहल दूर देश,
केऊ नहिं कहि सक कुशल सँदेश।

ए सखि काहि करब अपतोस,
हमर अभागि पिया नहि दोस।

पिया बिसरल सखि पुरुब पिरीति,
जखन कपाल वाम।सब विपरीति।

मरमक वेदन मरमहिं जान,
आनक दुख आन नहि जान।

भनइ विद्यापति न पुरइ काम,
कि करति नागरि जाहि विधि वाम॥५॥

लोचन धाए फधायेल हरि नहिं आयल रे।
शिव शिव जिवओ न जाए आसे अरुझाएल रे॥
मन करि तहँ उड़ि जाइअ जहाँ हरि पाइअरे।
पेम परसमनि जानि आनि उर लाइअ रे॥
सपनहु संगम पाओल रंग बढ़ाओल रे।
से मोर विहि विघटाओल निन्दओ हेरायल रे॥
भनइ विद्यापति गाओल धनि धइरज कर रे।
अचिरे मिलत तोहिं बालम्भु पुरत मनोरथ रे॥ ६ ॥

सरसिज बिनु सर सरबिनु सर सिज
की सरसिज बिनु सूरे।
जौवन बिनु तन तनु बिनु जौवन
की जौवन पिय दूरे॥
सखि हे मोर बड़ दैव विरोधी॥ ७॥

माधव कत तोर करब बड़ाइ।
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहुँ अधिक लजाइ॥
जो श्रीखंड सौरभ अति दुर्लभ तौं पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीश निशाकर तौं पुन एकहि पक्ष इजोर॥
मनि समान अओरो नसि दूसर तनिकहुं पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित मै रहु की कहु ठामहि ठामे॥
तोहर सरिस एक तोह माधव मन होइछ अनुमाने।
सज्जन जन सों नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने॥ ८॥
सखि कि पुछसि अनुभव मोय।
सेही परित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतुन होइ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल श्रवणहि सुनल श्रुति पथे परस न गेल॥
कत मधु जामिनअ रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल।
लाख लाख जुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुड़न न गेल॥
कत विदगध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक॥९॥
ब्रह्म कमण्डल वास सुवासिनि सागर नागर गृह वाले,
पातक महिष विदारण कारण धृत करवाल वीचि माले,
जय गंगे, जय गंगे, शरणागत भय भंगे॥१०॥
पिया मोर बालक हम तरुणी,
कोन तप चुकालौंह भेलौंह जननी।

पहिर लेल सखि इक दछिनक चीर,
पिया के देखैत मोर दगध सरीर।
पिया लेलि गोद कै चललि बजार,
हटिया के लोग पुछै के लागु तोहार।
नहिं मोर देवर कि नहिं छोट भाइ,
पुरब लिखल छल स्वामी हमार॥ ११॥

सखि मोर पिया,
अबहुँ न आओल कुलिश हिया।
नखर खोयाअलुँ दिवस लिखि लिखि,
नयन अन्धाओलुँ पिया पथ पेखि,
आयब हेत कहि मोर पिया गैला,
पूरबक जेत गुन बिसरिल भेला।
भनहि विद्यापति शुन अवराइ,
कानु समझाइते अब चलि जाइ॥ १२॥

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा विहरत छाति।
गोपी सकल बिसरलनि रे जत छिल अहिवाति॥
सुतिल छलहुँ अपन गृहरे निन्दई गेलउ सपनाइ।
करसों छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिय गराणी।
आनक धन सो धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी॥
गोकुल चान चकोरल रे चोरी गेल चंदा।
बिछुड़ि चललि दुहु जोड़ी रे जीव इह गेल धन्दा॥
काक भाष निज भाखह रे पहु आओत मोरा।
क्षीर खाँड़ भोजन देवरे भरि कनक कटोरा॥
भनहिं विद्यापति गाओल रे धैरज धर नारी।
गोकुल होयत सुहाओन रे फेरि मिलत मुरारी॥१३॥

अँगने आओब जब रसिया,
पलटि चलब हम इषत हँसिया।
रस नागरि रमनी,
कत कत जुगुति मनहिं अनुमानो।
आवेशे आँचरे पिया धरबे,
जाओब हम जतन बहु करबे।
कँचुया धरब जब हठिया,
करे कर बाँधब कुटिल आध दिठिया।
रभस माँगब पिय जबहों,
मुख मोड़ि विहँसि बोलब नहिं नहिं।
सहजहि सुपुरुख भमरा,
मुख कमल मधु पीयब हमरा।
नेखने हरब मोर गेयाने,
विद्यापति कह धनि तुय धेयाने।१४॥

सरस बसंत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनहु रूप बचन यक भाषिय मुख से दुरि करु चीरे॥
तोहर वदन सम चाँद होअथि नहिं जैयो जतन बिह देला॥
कै बेरि काटि बनावल नव कय तैयो तुलित नहिं भेला।
लोचन तूअ कमल नहिं भैसक से जग के नहिं जाने।
से फिर जाय लुकैनह जल भय पंकज निज अपमाने॥
भनहि विद्यापति सुन वर जौवित ईसभ लछमि समाने।
राजा शिवसिंह रूपनरायन लखिमा देइ प्रति भाने॥ १५॥
जइत देखलि पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि।
कनकलता सम सुन्दरि सजनी विह निरमावल आनि॥
हस्ति गमनि जँगा चलइत सजनी देखइत राजकुमारि।
जिनका यह न सुहागिन सजनी पाय पदारथ चारि॥

नील वसन तन घेरलि सजनी सिरे लेल चिकुर सँभारि।
तापर भमर पिवय रस सजनी बैसल पंख पसारि॥
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी लोचन अंबुज धारि।
विद्यापति यह गाओल सजनी गुन पाओलि अवधारि॥ १६॥

कबीर साहब

संयुक्त प्रांत में शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो जो कबीर साहब को न जानता होगा। कबीर साहब के भजन, मंदिरों में और सत्संग के अवसरों पर गाये जाते हैं। उनकी साखियाँ प्रायः कहावतों का काम दिया करती हैं।

कबीर साहब एक पंथ के प्रवर्तक थे, जिसे कबीर पंथ कहते हैं। कबीर पंथियों में निम्न श्रेणी के लोग अधिकांश पाए जाते हैं। उनमें से कुछ तो साधू हैं जो गाँवों में कुटी बना कर रहते हैं और कुछ गृहस्थ हैं। कबीरपंथी साधू सिर पर नोकदार पीले रंग की टोपी पहनते हैं।

कबीर साहब कौन थे? कहाँ और किस समय में वे उत्पन्न हुये? उनका असली नाम क्या था? बचपन में वे कौन धर्मावलंबी थे? उनका विवाह हुआ था या नहीं? और वे कितने समय तक जीवित रहे? इन बातों में बड़ा मत भेद हैं। कबीर साहब की जीवनी लिखने वाले भिन्न भिन्न बातें बतलाते हैं। उनमें सत्य का अंश कितना है, इसका पता लगाना सहज नहीं है। "कबीरकसौटी" में कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ वि० में और मरण १५७५ वि० में होना लिखा है। कबीर पंथी लोग उनकी उम्र तीन सौ वर्ष की

बतलाते हैं। उनके कथनानुसार कबीर साहब का जन्म १२०५ वि० में और मरण १५०५ वि० में हुआ है। इनमें से किसकी बात सत्य है? इसका निर्णय करना बड़ी खोज का काम है। कबीर पंथ के विद्वानों की राय में कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहब ने अपने को जुलाहा लिखा है। एक जगह वे कहते हैं—

तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलहा बूझहु मोर गियाना।
(आदि ग्रंथ)

इससे अब इस बात में तो कुछ संदेह रह ही नहीं जाता कि कबीर साहब जुलाहे थे। परन्तु वे जन्म के जुलाहे नहीं थे, यह कहावतों से मालूम होता है।

कहा जाता है कि संवत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को एक ब्राह्मण की विधवा कन्या के पेट से एक पुत्र पैदा हुआ। लोक लज्जावश उसने बालक को लहर तालाब (काशी) के किनारे फेंक दिया। संयोग से नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उसी राह से आरहा था। उसने उस अनाथ बच्चे को घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नाम से विख्यात हुआ।

कबीर साहब बालकपन से ही बड़े धर्मपरायण थे। जब उनको सुध बुध होगई तब वे तिलक लगा कर राम राम करते थे। एक जुलाहे के घर में रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असंभव सा प्रतीत होता है? परन्तु संगति का प्रभाव बड़ा विचित्र होता है। वह असंभव को भी संभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानंद के

शिष्य थे। स्वामी रामानंद शेष रात्रि में गंगा स्नान के लिये मणिकर्णिका घाट पर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाट की सीढ़ियों पर जाकर सो रहे। अँधेरे में स्वामी जी का पैर उनके ऊपर पड़ गया। तब वे कुलबुलाये। स्वामी जी ने कहा—राम राम कह; राम राम कह"। कबीर साहब ने उसी को गुरुमंत्र मान लिया। उसी दिन से उन्होंने काशी में अपने को स्वामी रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध किया। यवन के घर में पले होने पर भी कबीर साहब की प्रवृत्ति हिन्दू धर्म की तरफ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात वे स्वयं स्वीकार करते हैं—हम घर सूतत नहिं नित ताना"।

कबीर साहब ने विवाह किया था या नहीं, इस विषय में भी बड़ा मत भेद है। कबीर पंथ के विद्वान् कहते हैं कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परन्तु उन्होंने उससे विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषय में भी विचित्र बातें सुनी जाती हैं। "डूबे बंस कबीर के उपजे पूत कमाल" यह भी एक कहावत सा प्रसिद्ध हो रहा है। इससे पता चलता है कि कबीर ने विवाह अवश्य किया था और कमाल कबीर का पुत्र था, कमाल भी कविता करते थे। परन्तु उन्होंने कबीर साहब के सिद्धान्तों के खडन करने हो में अपनी सारी उम्र बितादी। उसी से " डूबे बंस कबीर के उपजे पूत कमाल " कहा गया है।

कबीर साहब बड़े ही सुशील और बड़े सदाचारी थे। एक दिन की बात है कि उनके यहाँ बीस पचीस भूखे

फकीर आये। कबीर साहब के पास उस दिन कुछ खाने को नहीं था इसलिये वे बहुत घबराये। लोई ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपया लाऊँ क्योंकि वह मुझ पर मोहित है, मैं पहुँची नहीं कि उसने रुपये दिये नहीं। कबीर साहब ने कहा-जाओ ले आओ। लोई साहूकार के बेटे के पास गई और उसने उससे अपना अभिप्राय कह सुनाया। साहूकार के बेटे ने तत्काल धन दे दिये। जब अन्त में उसने अपना मनोरथ प्रगट किया, तब लोई ने रात में मिलने का वादा किया।

दिन खाने खिलाने में बीत गया। रात हुई, चारों ओर अँधेरा छा गया, संयोग से उस दिन पानी बरस रहा था। लोई ने कबीर साहब से सब वृत्तान्त कह दिया था, इससे कबीर साहब को चैन नहीं थी, वे सोचते थे कि जिसकी बात गई, उसका सब गया। उन्होंने हवा पानी की कुछ भी परवा न की और कम्बल ओढ़ कर स्त्री को कंधे पर बिठा कर वे साहूकार के घर पहुँचे। आप तो बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गई। न तो उसके कपड़े भीगे थे और न उसके पैर में कीचड़ ही लगी थी, यह देखकर साहूकार के लड़के ने इसका कारण पूछा। लोई ने सब सच सच कह दिया। यह सुन कर साहूकार के बेटे की कुवृत्ति बदल गई, वह लोई के पैर पर गिर पड़ा और कहा--तुम मेरी मा हो। इतना कह कर वह बाहर आया और कबीर साहब के पैर से लिपट गया तथा उसी दिन से वह उनका सच्चा सेवक बन गया।

कबीर साहब के जीवन चरित्र में ऐसी बहुत सी कथाएँ हैं जिनसे उनकी सच्चरित्रता प्रकट होती है।

कबीर साहब पढ़े लिखे न थे। सतसंगी थे। सतसंग से ही उन्होंने हिन्दू धर्म की गूढ़ गूढ़ बातें जान ली थीं। उनके हृदय में हिन्दू मुसलमान किसी के लिये द्वेष न था ; वे सत्य के बड़े पक्षपाती थे।जहाँ उन्हें सत्य के विरुद्ध कुछ दिखाई पड़ा, वहाँ उन्होंने उसका खंडन करने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखलाई।

कबीर साहब ने अपना अधिकार हिन्दू मुसलमान दोनों पर जमाया। आज कल भी हिन्दू मुसलमान दोनों प्रकार के कबीर पंथी मिलते हैं। परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनों का कबीर मत से बैर हो गया। हिन्दू धर्म के नेता एक अहिन्दू के मुख से हिन्दू धर्म का प्रचार देखकर भड़के और मुसलमान, कबीर साहब के हिन्दू आचार्य का शिष्य होने तथा हिन्दू धर्म का प्रचार करने के कारण कट्टर विरोधी हो गये। इस विरोध के कारण उनको बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ भोगनी पड़ीं। परन्तु उनके हृदय में जो सत्य का दीपक जल रहा था, वह किसी के बुझाये न बुझा।

कबीर साहब ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। वे साखी और भजन बना कर कहा करते थे, और उनके चेले उसे कंठस्थ कर लेते थे, पीछे से वह सब संग्रह कर लिया गया। कबीर पंथ के अधिकांश उत्तम उत्तम ग्रन्थ उनके शिष्यों के रचे हुए कहे जाते हैं।

"ख़ास ग्रन्थ" में निम्न लिखित पुस्तकें हैं।

१–सुखनिधान, २–गोरख नाथ की गोष्ठी, ३–कबीर पाँजी, ४–बलख की रमैनी, ५–आनन्द राम सागर, ६–रामानन्द की गोठी, ७–शब्दावली, ८–मङ्गल, ६बसन्त, १०–होली, ११–रेखता १२–झूलन, १३–कहरा, १४–हिन्दोल, १५–बारहमासा,

१६–चाँचर १७–चौंतीसी, १८–अलिफ नामा, १६–रमैनी, २०–साखी, २१–बीजक ।

कबीर पंथियों में बीजक का बड़ा आदर है। बीजक दो हैं—एक तो बड़ा, जो स्वयं कबीर साहब का काशिराज से कहा हुआ बतलाया जाता है, और दूसरे बीजक को कबीर के एक शिष्य भग्गूदास ने संग्रह किया है। दोनों में बहुत कम अंतर है।

कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है। मेरी समझ में लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यों तो अर्थ लगाने वाले कुछ न कुछ उलटा सीधा अर्थ लगाही लेते हैं परन्तु खींच तान कर लगाये गये ऐसे अर्थों में कुछ विशेषता नहीं रहती।

कबीर साहब मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। यद्यपि ईश्वर का अवतार धारण करना भी वे नहीं मानते थे, परन्तु अपने को उन्होंने स्वयं सत्य लोक वासी प्रभु का दूत बतलाया है। वे कहते हैं :—

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताये।
समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आये॥
(शब्दावली)

लोगों का ऐसा कथन है कि मगहर में प्राण त्याग करने से मुक्ति नहीं मिलती। भला सत्यान्वेषक कबीर इस बात को कैसे मान सकते थे, उन्होंने लोगों का यही भ्रम मिटाने के लिये ही मगहर में जाकर शरीर छोड़ा। इस विषय में उन्होंने कहा है :—

जो कबीर काशी मरे तो रामहिं कौन निहोरा।
* * *
जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।

कबीर साहब की कविता में बड़ी शिक्षा भरी है। एक एक पद से उनकी सत्य-निष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने जो कहा है, प्रायः सभी एक से एक बढ़ कर है। हम ने उन्हीं में से कुछ साखी और भजन चुन लिये हैं। हमें कबीर साहब की साखी में बड़ा आनन्द मिलता है। बातें तो छोटी सी हैं, परन्तु उनमें अगाध ज्ञान भरा हुआ है।

हम यहाँ कबीर साहब की कुछ साखियाँ और भजन उद्धृत करते हैं :—

साखी

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दिया बताय ॥१॥
यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं तौ भी सस्ता जान ॥ २ ॥
बहे बहाये जात थे लोक वेद के साथ।
पैंड़ा में सत गुरु मिले दीपक दीन्हा हाथ ॥ ३ ॥
ऐसा कोई ना मिला सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपे मिरग ज्यों सुनै बधिक का गीत ॥ ४ ॥
सतगुरु साचा सूरमा नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई भीतर चकनाचूर ॥ ५ ॥
सुख के माथे सिलि परै (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की पल पल नाम रटाय ॥ ६ ॥
लेने को सतनाम है देने को अन दान।
तरने को आधीनता बूड़न को अभिमान ॥ ७ ॥
दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे होय ॥ ८ ॥

सुमिरन की सुधि यों करै ज्यों गागर पनिहार ।
हालै डोलै सुरति में कहै कबीर विचार ॥ ६ ॥
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहि ।
मनुवाँ तो दहुँ दिस फिरै यह तो सुमिरन नाहि ॥१०॥
गगन मंडल के बीच में जहाँ सोहंगम डोरि ।
सबद अनाहद होत है सुरत लगी तहँ मोरि ॥ ११ ॥
कबीर गर्ब न कीजिये काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारि है क्या घर क्या परदेस ॥ १२ ॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास ।
सब जग जरता देखि कर भये कबीर उदास ॥ १३ ॥
झूठे सुख को सुख कहैं मानत हैं मन मोद ।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद ॥१४॥
पानी केरा बुद बुदा अस मानुष की जात ।
देखतही छिपि जायगी ज्यों तारा परभात ॥ १५ ॥
रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय ।
हीरा जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥ १६ ॥
आज कहै कल्ह भजूँगा काल कहै फिर काल ।
आज कालके करत ही औसर जासी चाल ॥ १७ ॥
आछे दिन पाछे गये गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥ १८ ॥
काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब ।
पलमें परलै होयगी बहुरि करैगा कब्ब ॥ १६ ॥
कबीर नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखौ आय ॥ २० ॥
पाँचो नौबत बाजती होत छतीसो राग ।
सो मन्दिर खाली पड़ा बैठन लागे काग ॥ २१ ॥

कहा चुनावै मेड़ियाँ लम्बी भीति उसारि।
घर तो साढ़े तीन हथ घना तो पौने चारि ॥ २२ ॥
माटी कहै कुम्हार को तू क्या रूँदे मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा मैं रूँदूँगी तोहिं ॥ २३ ॥
यह तन काँचा कुम्भ है लिये फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया कछु नहिं आया हाथ ॥ २४ ॥
आये हैं सो जाँयगे राजा रंक फकीर ॥
एक सिंघासन चढ़ि चले एक बंधे जँजीर ॥ २५ ॥
आसपास जोधा खड़े सभी बजावैं गाल ॥
मंझ महल से लै चला ऐसा काल कराल ॥ २६ ।
या दुनिया में आय के छाड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले उठी जात है पैंठ ॥ २७ ॥
कबीर आप ठगाइये और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै और ठगे दुख होय ॥ २८ ॥
ऐसी गति संसार की ज्यों गाडर की ठाट।
एक पड़ा जेहि गाड़ में सबै जाहिं तेहि बाट ॥ २९ ।
तू मत जानै बावरे मेरा है सब कोय ॥
पिंड प्रान से बँधि रहा सो अपना नहिं होय ॥ ३० ॥
इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं ॥ ३१ ॥
नाम भजो तो अब भजो बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े ईंधन हो गये सब्ब ॥ ३२ ॥
माली आवत देखि कै कलियाँ करी पुकार।
फूली फूली चुनि लिये कालि हमारी बार ॥ ३३ ॥
हम जानैं थे खाहिंगे बहुत जमी बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया पकरि लै गया काल ॥ ३४ ॥

भक्ति भाव भादों नदी सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये जो जेठ मास ठहराय ॥ ३५ ॥
जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले निःकामी निज देव ॥ ३६ ॥
लागी लागी क्या करे लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये जो वार पार ह्वै जाय ॥ ३७ ॥
लागी लगन छुटै नहीं जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में जाहि चकोर चबाय ॥ ३८ ॥
सोओं तो सुपने मिलै जागौं तो मन माहिँ।
लोचन राता सुधि हरी बिछुरत कबहुँ नाहिँ ॥ ३९ ॥
ज्यों तिरिया पीहर बसै सुरति रहै पिय माहिँ।
ऐसे जन जग में रहैं हरि को भूलैं नाहिँ ॥४० ॥
कबीर हँसना दूर करु रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये प्रेम पियारा मीत ॥ ४१ ॥
हँसौ तो दुख ना बीसरै रोवौं बल घटि जाय।
मनहीं माहिं बिसूरना ज्यौं घुन काठहिँ खाय ॥ ४२ ॥
हँस हँस केतन पाइया जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिलै तो कौन दुहागिनि होय ॥४३॥
सुखिया सब संसार है खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै औ रोवै ॥ ४४ ॥
माँस गया पिञ्जर रहा ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया मंद हमारे भाग ॥ ४५ ॥
हवस करै पिय मिलन की औ सुख चाहै अंग।
पीर सहे बिनु पद्मिनी पूत न लेत उछंग ॥ ४६ ॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी सपचे औ धुँधुआय।
छूटि पड़ौं या बिरह से जो सिगरो जरि जाय ॥ ४७ ॥

पावक रूपी नाम है सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै नहीं धूवाँ ह्वै ह्वै जाय॥ ४८॥
जो जन बिरही नाम के तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करैं सुमिरन करैं विदेह॥ ४९॥
बिरहा बिरहा मत कहो बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै सो घट जान मसान॥ ५०॥
आगि लगी आकास में झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया काँच भया संसार॥ ५१॥
कबिरा वैद बुलाइया पकरि के देखी बाहिं।
वैद न वेदन जानई करक करेजे माँहि॥ ५२॥
जाहु वैद घर आपने तेरा किया न होय।
जिन या वेदन निर्मई भला करैगा सोय॥ ५३॥
सीस उतारे भुइँ धरै तापर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव॥ ५४॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय॥ ५५॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिञ्जर बसै प्रेम कहावै सोय॥ ५६॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै प्रेम कहावै सोय॥ ५७॥
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाहिं॥ ५८॥
जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की साँस लेत बिन प्रान॥ ५९॥
प्रेम तो ऐसा कीजियो जैसे चंद चकोर।
घींच टूटि भुइँ माँ गिरै चितवै वाही ओर॥ ६०॥

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं तहाँ न बुधि ब्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया कौन गिने तिथि वार ॥ ६२ ॥
प्रेम छिपाया ना छिपै जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं नैन।देत हैं रोय ॥ ६२ ॥
पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड्ग देखा सुना न कान ॥ ६३ ॥
कबिरा प्याला प्रेम का अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा और अमल का खाय ॥ ६४ ॥
नैनों की करि कोठरी पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाय ॥६५॥
जल में बसै कमोदिनी चन्दा बसै अकास।
जो है जाको भावता सो ताही के पास ॥ ६६ ॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में ताको कहा सँदेस ॥ ६७ ॥
साईं इतना दीजिये जा में कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ॥ ६८ ॥
बिनवत हौं कर जोरि कै सुनिये कृपा-निधान।
साधु सँगति सुख दीजिये दया गरीबी दान ॥ ६९ ॥
क्या मुख लै बिनती करौं लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करौं कैसे भावौं तोहि ॥ ७० ॥
अवगुन मेरे बाप जी बकसु गरीब निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिता को लाज ॥ ७१ ॥
साहिब तुमहि दयाल हौ तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को सूझै और न ठौर ॥ ७२ ॥
सिख तो ऐसा चाहिये गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये सिख से कछु नहि लेय ॥ ७३ ॥

सिहों के लेहँड़े नहीं हंसों की नहिं पांत।
लाखों की नहिं बोरियाँ साधु न चलैं जमात ॥ ७४ ॥
साधु कहावन कठिन है ज्यों खाँड़े की धार।
डगमगाय तो गिरि परे निःचल उतरे पार ॥ ७५ ॥
गाँठी दाम न बाँधई नहिं नारी से नेह।
कह कबीर ता साधु के हम चरनन की खेह ॥ ७६ ॥
साधु हमारी आतमा हम साधुन के जीव।
साधुन मद्धे यों रहौं ज्यों पय मद्धे घीव ॥ ७७ ॥
जाति न पूछो साधु की पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥ ७८ ॥
कबीर संगत साधु की हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की आठो पहर उपाधि ॥ ७९ ॥
कबीर संगत साधु की जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिले साकट संग न जाय ॥ ८० ॥
कबीर संगत साधु की ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं तो भी बास सुबास ॥ ८१ ॥
कबीर संगत साधु की निस्फल कभी न होय।
होसी चंदन बासना नीम न कहसी कोय ॥ ८२ ॥
संगति भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर ॥ ८३ ॥
हरियर जानै रूखड़ा जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही केतहु बूड़ा मेह ॥ ८४ ॥
मारी मरै कुसंग की ज्यों केले ढिग बेर।
वह हालै वह चीरई साकट संग निबेर ॥ ८५ ॥
केला तबहिं न चेतिया जब ढिग जामी बेरि।
अब के चेते क्या भया काँटों लीन्हा घेरि ॥ ८६ ॥

समदृष्टी सतगुरु किया मेटा भरम बिकार।
जहँ देखों तहँ एक़ही साहिब का दीदार॥ ८७॥
सहज मिलै सो दूध सम माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम जा में ऐंचातानि॥ ८८॥
साधू ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥ ८९॥
आटा तजि भूसी गहै चलना देखु निहार।
कबीर सारहि छाँड़ि कै करै असार अहार॥ ९०॥
उततें कोई न बाहुरा जातें बूझूँ धाय।
इततें सब ही जात हैं भार लदाय लदाय॥ ९१॥
उततें सत गुरु आइया जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को खेइ लगावैं तीर॥ ९२॥
जो आवै तो जाय नहिं जाय तो आवै नाहिँ।
अकथ कहानी प्रेम की समझ लेहु मन माहिँ॥ ९३॥
सूली ऊपर घर करै विष का करै अहार।
ताको काल कहा करै जो आठ पहर हुसियार॥९४॥
नाँव न जानौं गाँव का बिन जाने कित जाँव।
चलता चलता जुग भया पाव कोस पर गाँव॥ ९५॥
सतगुरु दीनदयाल हैं दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था पल में पहुँचा जाय॥ ९६॥
चलन चलन सब कोई कहै मोहिं अँदेसा और।
साहिब से परिचय नहीं पहुचैंगे केहि ठौर॥ ९७॥
कबीर का घर सिखर पर जहाँ सिलहली गैल।
पाँव न टिकै पिपीलिका पंडित लादे बैल॥ ९८॥
मरिये तो मरि जाइये छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै दिन में सौ सौ बार॥ ९९॥

कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूँढ़ै बन माहिं ।
ऐसे घट में पीव है दुनियाँ जानै नाहि ॥ १००॥
द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनीका खाय ।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाड़ि न जाय ॥ १०१॥
जरा मीच ब्यापै नहीं मुआ न सुनिये कोय ।
चलु कबीर वा देस को जहँ बैद साइयाँ होय ॥१०२॥
साध सती औ सूरमा ज्ञानी औ गज-दंत ।
एते निकसि न बहुरैं जो जुग जाहि अनन्त॥ १०३ ॥
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की कटि उँजियारा होय ॥१०४ ॥
जूझैंगे तब कहैंगे अब कछु कहा न जाय ।
भीड़ पड़े मन मसखरा लड़ै किधौं भगि जाय ॥१०५॥
अगिनि आँच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार ।
नेह निभावन एकरस महा कठिन ब्यौहार ॥ १०६ ॥
सूरा नाम धराइ के अब का डरपै बार ।
मँडि रहना मैदान में सन्मुख सहना तीर ॥ १०७ ॥
पतिबरता को सुख घना जाके पति है एक ।
मन मैली बिभिचारनी ताके खसम अनेक ॥ १०८ ॥
पतिबरता पति को भजै और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना तौ भी घास न खाय ॥ १०९॥
नैनों अंतर आव तूँ नैन झाँपि तोहि लेवं ।
ना मैं देखौं और को ना तोहि देखन देवँ ॥ ११० ॥
मैं सेवक समरत्थ का कबहुँ न होय अकाज ।
पतिबरता नाँगो रहै तो वाही पति को लाज॥१११॥
सब आये उस एक में डार पात फल फूल ।
अब कहो पाछे क्या रहा गहि पकड़ा जब मूल ॥११२॥

चन्दन गया बिदेसड़े सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया त्यों त्यों अधिकी बास ॥११३॥
लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ॥ ११४ ॥
हम बासो वा देस जहँ बारह मास बिलास ।
प्रेम झिरे बिगसै कँवल तेज पुंज परकास ॥ ११५ ॥
कबीर जब हम गावते तब जाना गुरु नाहि।
अब गुरु दिल में देखिया गावन को कछु नाहिं ॥११६ ॥
ज्ञानी से कहिये कहा कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते कला अकारथ जाय ॥ ११७ ॥
जो तोको काँटा बुवै ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है वाको है तिरसूल ॥ ११८ ॥
दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
बिना जीवकी स्वास से लोह भसम होजाय ॥ ११९ ॥
ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहुँ सीतल होय ॥ १२० ॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है भूसन दे झख मारि ॥ १२१ ।
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये वही एक की एक ॥ १२२ ॥
कथा कीरतन रात दिन जाके उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की हम चरनन की खेह ॥ १२३ ॥
बन्दे तू कर बन्दगी तौ पावै दीदार।
औसर मानुष जनम का बहुरि न बारम्बार ॥ १२४ ॥
साधु भया तो क्या भया बोलै नाहि बिचार।
हते पराई आतमा जीभ बाँधि तरवार ॥ १२५ ॥

मधुर बचन है औषधी कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर ॥ १२६ ॥
बोलत ही पहिचानिये साहु चोर को घाट।
अन्तर की करनी सबै निकसै मुख की बाट ॥ १२७ ॥
जिन ढूँढा तिन पाइयाँ गहिरे पानी पैठि।
जो बौरा डूबन डरा रहा किनारे बैठि ॥ १२८ ॥
पढ़ना गुनना चातुरी यह तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन गगन चढ़न मुस्कल ॥ १२९ ॥
भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति ॥१३०॥
कथनी मीठी खाँड़ सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै तौ विष से अमृत होय ॥१३१॥
लाया साखि बनाय करि इत उत अच्छर काट।
कह कबीर कब लग जिये जूठी पत्तल चाट ॥ १३२ ॥
पानी मिलै न आपको औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीं और बँधावत धीर ॥ १३३ ॥
मारग चलते जो गिरै ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै ता सिर करड़े कोस ॥१३४॥
रोड़ा होइ रहु बाटका तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै ताहि मिलै निज नाम ॥ १३५ ॥
रोड़ा भया तो क्या भया पंथी को दुख देह।
साधू ऐसा चाहिये ज्यों पैंड़े की खेह ॥ १३६ ॥
खेह भई तो क्या भया उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये जैसे नीर निपंग ॥ १३७ ॥
नीर भया तो क्या भया ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये जो हरि ही जैसा होय ॥१३८॥

हरी भया तो क्या भया जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये जो हरि भज निरमल होय॥१३९॥
निरमल भया तो क्या भया निरमल माँगे ठौर।
मल निरमल तें रहित है ते साधू कोइ और॥ १४० ॥
साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप॥ १४१ ॥
साँचे स्राप न लागई साँचे काल न खाय।
साँचा को साँचा मिलै साँचे माहिं समाय॥ १४२ ॥
साँचे कोइ न पतीजई झूँठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै मदिरा बैठि बिकाय॥ १४३ ॥
साँचे को साँचा मिलै अधिक बढ़े सनेह।
झूँठे को साँचा मिलै तड़दे टूटै नेह ॥ १४४ ॥
जहाँ दया तहँ धर्म है जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ छिमा तहँ आप॥१४५॥
बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना मुझसा बुरा न कोय॥ १४६॥
दाया दिल में राखिये तू क्यों निरदइ होय।
साईं के सब जीव हैं कीड़ी कुंजर सोय॥ १४७ ॥
कोटि करम लागे रहैं एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया जब आया हंकार॥ १४८ ॥
दसो दिसा से क्रोध की उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की तहाँ उबरिये भागि॥ १४९ ॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागै अति दूर॥ १५० ॥
जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटैं चारो दीरघ रोग॥ १५१ ॥

कबीर जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करे तो जगत गुरू वह दास ॥१५२॥
तन तुरंग असवार मन कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को बिषै बाज लिये हाथ ॥ १५३ ॥
चलौ चलौ सब कोई कहै पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कमिनी दुरगम घाटी दोय ॥ १५४ ॥
पर नारी पैनी छुरी मत कोइ लावो अंग।
रावन के दस सिर गये पर नारी के संग ॥ १५५ ॥
सब सोने की सुन्दरी आवै बास सुबास।
जो जननी ह्वै आपनी तऊ न बैठे पास ॥ १५६ ॥
छोटी मोटी कामनी सब ही बिष की बेल।
बैरी मारै दाँव दै यह मारै हँसि खेल ॥ १५७ ॥
जागत में सोवन करै सोवन में लौ लाय।
सुरति डोर लागी रहै तार टूटि नहिं जाय ॥ १५८ ॥
निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय ॥ १५९ ॥
तिनका कबहुँ न निन्दिये जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै पीर घनेरी होय ॥ १६० ॥
दोष पराये देख करि चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई जिनका आदि न अंत ॥१६१ ॥
माखी गुड़ में गड़ि रही पंख रह्यो लिपटाय ॥
हाथ मलै औ सिरधुनै लालच बुरी बलाय ॥ १६२ ॥
औगुन कहौं सराब का ज्ञानवंत सुनि लेय ॥
मानुष से पसुआ करै द्रव्य गाँठि को देय ॥ १६३ ॥
रूखा सूखा खाइ कै ठंढा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव ॥ १६४ ॥

कबीर साईं मुझको रूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ रूखी छीनि न लेय॥ १६५॥
सत्त नाम को छाँड़ि के करै और को जाप।
बेस्या केरे पूत ज्यों कहै कौन को बाप॥ १६६॥
एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को फूलै फलै अघाय॥ १६७॥
पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पुजौं पहार।
तातें ये चाकी भली पीसि खाय संसार॥ १६८॥
काँकर पाथर जोरि कै मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय॥१६९॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥ १७०॥
सपने में साइँ मिले सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता मति सुपना ह्वै जाय॥ १७१॥
साँझ पड़े दिन बीतवै चकवी दीन्हा रोय।
चल चकवा वा देस को जहाँ रैन ना होय॥ १७२॥
चात्रिक सुतहिं पढ़ावही आन नीर मति लेय।
मम कुल यही स्वभाव है स्वाँति बूँद चित देय॥१७३॥
जूआ चोरी मुखबिरी व्याज घूस पर नार।
जो चाहै दीदार को एती वस्तु निवार॥ १७४॥

शब्दावली

मन फूला फूला फिरै जक्त में कैसा नाता रे॥ टेक॥
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा॥

पेट पकरि के माता रोवै बाँह पकरि के भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ॥
जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ॥
चार गजी चरगजी मँगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारों कोने आग लगाया फूँक दियो जस होरी।
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा ॥
घर की तिरिया ढूँढ़न लागी ढूँढ़ि फिरी चहुँ देसा।
कहै कबीर सुनो भइ साधो छाड़ौ जग की आसा ॥१७५॥

काया बौरी चलत प्रान काहे रोई ॥ टेक ॥
काया पाय बहुत सुख कीन्हो नित उठि मलि मलि धोई।
सो तन छिया छार ह्वै जैहै नाम न लैहै कोई ॥
कहत प्रान सुनु काया बौरी मोर तोर संग न होई।
तोहिं अस मित्र बहुत हम त्यागा संग न लीन्हा कोई ॥
ऊसर खेत कै कुसा मँगावै चाँचर चवर कै पानी।
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा के मिहमानी ॥
सब सनकादि आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख होई।
जो जा जन्म लियो बसुधा में थिर न रह्यो है कोई ॥
पाप पुन्य है जन्म सँघाती समुझि देख नर लोई।
कहत कबीरा अंतर की गति जानत बिरला कोई ॥ १७६ ॥

होली

आई गवनवाँ की सारी उमिरि अबहीं मोरी बारी ॥टेक
साज समाज पिया लै आये और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि कै जोरत गँठिया हमारी।
सखी सब गावत गारी ॥

बिधि गति बाम कछु समझ परत ना बैरी भई महतारी।
रोय रोय अँखियाँ मोर पोंछत घरवाँ से देत निकारी।
भई सब कौ हम भारी॥
गवन कराय पिया लै चाले इत उत बाट निहारी।
छूटत गाँव नगर से नाता छूटै महल अटारी॥
करम गति टरै न टारी॥
नदिया किनारे बलम मोर रसिया दीन्ह घूँघट पट टारी।
थर थराय तन काँपन लागे काहू न देख हमारी।
पिया लै आये गोहारी॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो यह पद लेहु विचारी।
अब के गौना बहुरि नहि औना करिले भेंट अंकवारी।
एक बेर मिलि ले प्यारी॥१७७॥

हमन हैं इस्क मस्ताना हमनको होसियारी क्या।
रहैं आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में हमन को इन्तिजारी क्या॥
खलक सब नाम अपने, को बहुत कर सिर पटकता है।
हमन गुरु नाम साँचा है हमन दुनिया से यारी क्या॥
न पल बिछुड़े पिया हमसे न हम बिछुड़ें पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या॥
कबीरा इस्क का माता दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक हैं हमन सिर बोझ भारी क्या॥१७८॥

भज ले सिरजन हार सुघर तनके पायके॥ टेक॥
काहे रहौ अचेत कहाँ यह औसर पैहो।
फिर नहिं ऐसी देह बहुरि पाछै पछितैहो॥

लख चौरासी जोनि में मानुष जन्म अनूप।
ताहि पाय नर चेतत नाहीं कहा रंक कहा भूप॥ सुघर॥
गर्भ वास में रह्यो कह्यौ मैं भजिहौं तोहीं।
निस दिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढ़ौ मोहीं॥
चरनन ध्यान लगाइ के रहौं नाम लौ लाय।
तनिक न तोहि बिसारिहौं यह तन रहै कि जाय॥ सुघर॥
इतना कियो करार काढ़ि गुरु बाहर कीना।
भूलि गयौ यह बात भयौ माया आधीना॥
भूली बातैं उद्र की आन पड़ी सुधि एत।
बारह बरस बीतिगे या बिधि खेलत फिरत अचेत॥ सुघर॥
बिषया बान समान देंह जोबन मदमाती।
चलत निहारत छाँह तमकके बोलत बाती॥
चोवा चन्दन लाइ के पहिरे बसन रंगाय।
गलियाँ गलियाँ झाँकी मारे परतिरियालखमुसकाय॥ सुघर॥
तरुनापन गइ बीत बुढ़ापा आनि तुलाने।
काँपन लागे सीस चलत दोउ चरन पिराने॥
नैन नासिका चूवन लागे मुख तें आवत बास।
कफ पित कंठै घेर लियो है छुटि गइ घर की आस॥सुघर॥
मातु पिता सुत नारि कहो काके सङ्ग जाई।
तन धन घर औ काम धाम सब ही छुटि जाई॥
आखिर काल घसीटि है पड़िहौ जम के फन्द।
बिन सतगुरु नहि बाँचिहौ समुझ देख मतिमन्द॥सुघर॥
सुफल होत यह देह नेह सतगुरु से कीजे।
मुकी मारग जानि चरन सतगुरु चित्त दीजे॥
नाम गहो निरभय रहो तनिक न ब्यापै पीर।
यह लीला है मुक्ति की गावत दासकबीर॥सुघर १७१॥

जाग पियारी अब का सोवै।
रैन गई दिन काहे को खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया।
तैं बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी।
कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ॥
हौं बौरी बौरापन कीन्हो।
भर जोबन अपना नहिं चीन्हों ॥
जाग देख पिय सेज न तेरे।
तोहि छाड़ि उठि गये सबेरे ॥
कहै कबीर सोई धन जागै।
सबद बान उर अन्तर लागै ॥ १८० ॥

या जग अंधा मैं केहि समुझावौं ॥ टेक ॥
इक दुइ होयँ उन्हें समझावौं
सबहि भुलाना पेट के धन्धा ॥ मैं केहि० ॥
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा
ढरकि परे जस ओस कै बुन्दा ॥ मैं केहि० ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा
खेवन हारा के पड़िगा फन्दा ॥ मैं केहि० ॥
घर की बस्तु निकट नहिं आवत
दियना बारिके ढूँढत अंधा ॥ मैं केहि० ॥
लागी आग सकल बन जरिगा
बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बन्दा ॥ मैं केहि० ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो
इक दिन जाय लँगोटी झार बन्दा ॥ मैं केहि० ॥ १८१ ॥

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं,
देखि भागै सोई सूर नाहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना,
मँडा घमसान तहँ खेत माहीं॥
सील औ साच संतोष साही भये,
नाम समसेर तहँ खूब बाजै।
कहै कब्बीर कोइ जूझि है सूरमा,
कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै॥१८२॥

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड
कर खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़दे बालके
आयजा भेख भगवंत पाहीं॥
भेष भगवंत की सेस महिमा करै
सेस के सीस पर चरन डारै।
कामदल जीतिके कँवल दल सोधिके
ब्रह्म को बेधि कै क्रोध मारै॥
पद्म आसन करै पवन परिचै करै
गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोई संत जन जौहरी
करम की रेख पर मेख मारै॥१८३॥

माया महा ठगिनि हम जानी।

तिरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी॥

योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो यह सब अकथ कहानी॥ १८४॥

पायो सत नाम गरे कै हरवा।

साँकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पाँच कहरवा।
ताला कुंजी हमैं गुरु दीन्ही जब चाहों तब खोलों किवरवा॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा॥ १८५॥

कैसे दिन कटिहै जतन बताये जइयो॥
एहि पार गंगा वोहि पार यमुना
बिचवा मड़इया हम को छवाये जइयो॥
अँचरा फारि के कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइयो॥ १८६॥

करम गति टारे नाहिं टरी।

मुनि वसिष्ट से पण्डित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को बन में विपति परी॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लैगो रावन सुबरन लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरिगिट जानि परी॥
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।

राहु केतु औ भानु चन्द्रमा विधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही ॥ १८७ ॥

संतो राह दोऊ हम डीठा।

हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानै स्वाद सबन को मीठा ॥
हिन्दू बरत एकादसि साधै दूध सिंघाड़ा सेती।
अन को त्यागै मन नहि हटकै पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै बिसमिल बाँग पुकारै।
उनकी भिस्त कहाँ ते होइ है साँझे मुरगी मारै ॥
हिन्दू दया मेहर को तुरकन दोनों घट सों त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारैं आगि दुनों घर लागी ॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है सदगुरु इहै बताई।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो राम न कहेउ खोदाई ॥ १८८ ॥

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवैं यह देखो हिँदुआई ॥
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहि में करैं सगाई ॥
बाहर से एक मुरदा लाये धोय धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिल जेंवन बैठीं घरभर करै बड़ाई ॥
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ॥ १८९ ॥

मन न रँगाये रँगाये जोगी कपरा।

आसन मारि मँदिर में बैठे
　　　　नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा ॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलैं
　　　　दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैलें बकरा ॥

जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमौलैं
काम जराय जोगी बनि गैलैं हिजरा ॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रँगौलैं
गीता बाँचि कै होइ गैलैं लबरा ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो
जम दरवजवाँ बाँधल जैबे पकरा ॥१६०॥

रमैया की दुलहिन लूटा बजार ।

सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मच हाहाकार ।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के परी पिछार ॥
स्त्रिंगी की मिंगो करि डारी पारासर कै उदर बिदार ।
कनफूँका चिरकासी लूटे लूटे जोगेसर करत विचार ॥
हम तो बचिगे साहब दया से शब्द डोर गहि उतरे पार ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो इस ठगनी से रहो हुसियार१६१॥

रैदास

रैदासजी कबीर साहब के समय में हुए थे। ये जाति के चमार थे। इनके पिता का नाम रग्घू और माता का नाम घुरबिनिया था। इनका जन्म काशी में हुआ था। ये भी महात्मा रामानन्द के शिष्यों में थे।

रैदासजी और कबीर साहब में बहुत बादविवाद हुआ करता था। रैदास जी जब कुछ सयाने हुये तब भक्तों और

साधुओं की सेवा में अधिक रहने लगे। जो कुछ कमाते सब साधु सन्तों को खिला पिला दिया करते थे। यह बात इनके पिता रघू को अच्छी नहीं लगी। उसने स्त्री सहित रैदास जी को घर से अलग कर दिया। खर्च के लिये वह इनको एक कौड़ी भी नहीं देता था। रैदास जी जूता बनाकर किसी तरह अपना गुजर करते और रातदिन भगवत्-चर्चा में मग्न रहा करते थे। ये मांस मदिरा को छूते तक न थे।

इनके विषय में बहुत सी करामात की कहानियाँ लोगों में प्रसिद्ध हैं। गुजरात प्रांत में इनके मत के मानने वाले लाखों आदमी हैं जो अपने को रविदासी कहते हैं। ये मीरा-बाई के गुरु थे। इनकी कविता से इनकी बड़ी भक्ति प्रकट होती है। रैदास जी के बनाये हुये कुछ दोहे और पद हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

१

हरि सा हीरा छाँड़ि कै करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे सत भाषै रैदास॥

२

रैदास राति न सोइये दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमिरिये छाड़ि सकल प्रतिवाद॥

३

भगती ऐसी सुनहु रे भाई।
आइ भगति तब गई बड़ाई॥

कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे जोलौं तत्त्व न चीन्हे॥
कहा भयो जे मूँड़ मुड़ायो कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।
खाली दास भगत अरु सेवक परम तत्त्व नहिं चीन्हे॥

कह रैदास तेरी भगति दूर है भाग बड़े सों पावे।
तजि अभिमान मेटि आपा पर पिपलिक ह्वै चुनि खावै॥

४

पहले पहरे रैन दे बनजरिया तैं जनम लिया संसार वे।
सेवा चूकी राम की तेरी बालक बुद्धि गंवार वे॥
बालक बुद्धि न चेता तूँ भूला माया जाल वे।
कहा होय पीछे पछिताये जल पहिले न बाँधी पाल वे॥
बीस बरस का भया अयाना थाँभि न सक्का भार वे।
जन रैदास कहै बनजरिया जनम लिया संसार वे॥

५

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ। फल अरु मूल अनूप न पाऊँ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भँवर जल मीन बिगारी॥
मलयागिर बेधियो भुअंगा। विष अमृत दोउ एकै संगा॥
मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेऊँ सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी। कह रैदास कवन गति मेरी॥

६

रे चित चेत अचेत काहे बालक को देख रे।
जाति तें कोइ पद नहिं पहुँचा राम भगति विशेष रे॥
खट क्रम सहित जे विप्र होते हरि भगति चित दृढ़ नाहिं रे।
हरि की कथा सोहाय नाहीं स्वपच तूलै ताहि रे॥
मित्र शत्रु अजात सबतें अन्तर लावे हेत रे।
लाग वाकी कहाँ जानै तीन लोक पवेत रे॥
अजामिल गज गनिका तारी काटी कुंजर की पास रे।
ऐसे दुरमत मुक्त कीये तो क्यों न तरै रैदास रे॥

७

जो तुम गोपालहि नहिं गैहौ।
तो तुमको सुख में दुख उपजै सुखहि कहाँ ते पैहौ॥
माला नाय सकल जग डहको झूँठो भेख बनैहौ।
झूँठे ते साँचे तब होइ हो हरि की सरन जब ऐहौ॥
कनरस, बतरस और सबै रस झूँठहि मूड़ डुलैहौ।
जब लगि तेल दिया में बाती देखत ही बुझ जैहौ॥
जो जन राम नाम रंग राते और रंग न सोहैहौ।
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ॥

८

प्रभु जी संगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी॥
गली गली को जल बहि आयो सुरसरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम नाम गंगोदक पायो॥
स्वाँति बूँद बरसै फनि ऊपर सीस विषै होइ जाई।
वही बूँद कै मोती निपजै संगत की अधिकाई॥
तुम चंदन हम रेंड बापुरे निकट तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम आवै बास सुबासा॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊंच कियो है कह रैदास चमारा॥

धर्मदास

धर्मदास जी जाति के कसौंधन बनिये और बाँधवगढ़ के बड़े भारी महाजन थे इनके जन्म और मरण के समय का ठीक पता नहीं चलता। परन्तु ये कबीर साहब के समकालीन थे, यह निश्चय है।

धर्मदास जी बालकपन से ही बड़े धर्मात्मा और भगवत चर्चा के प्रेमी थे, साधु, संतों और पंडितों का बड़ा आदर सत्कार करते थे। इन्होंने दूर दूर तक तीर्थों की यात्रा की थी।

मथुरा से आते समय कबीर साहब से इनका साक्षात् हुआ। कबीर साहब ने मूर्तिपूजा और तीर्थ व्रत आदि का खंडन मंडन करके इनका चित्त संत मत की ओर झुकाया। फिर तो ये बराबर कबीर साहब से मिलते रहे और अपना संशय मिटाते रहे। "अमर सुख निधान" ग्रन्थ में इनकी और कबीर साहब की बातचीत विस्तार के साथ लिखी है। उनमें बहुत सी ज्ञान की बातें हैं।

कबीर साहब की शरण में आने पर धर्मदास जी ने अपना सारा धन लुटा दिया। सं० १५७५ वि० में जब कबीर साहब परमधाम को सिधारे तब उनकी गद्दी धर्मदास जी को मिली। उससे पंद्रह या बीस वर्ष के बाद इन्होंने भी इस संसार को छोड़ा।

इनकी शब्दावली में से कुछ पद चुनकर हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

मोरे पिया मिले सत ज्ञानी।

ऐसन पिय हम कबहूँ न देखा देखत सुरत लुभानी॥
आपन रूप जब चीन्हा बिरहिन तब पिय के मन मानी॥
कर्म जलाय के काजल कीन्हा, पढ़े प्रेम की बानी॥
जब हंसा चले मानसरोवर मुक्ति भरे जहँ पानी॥
धर्मदास कबीर पिय पाये मिट गई आवाजानी॥

गुरु पैयाँ लागों नाम लखा दीजो रे।
जनम जनम का सोया मनुआँ शब्दन मारि जगा दीजो रे॥
घट अँधियार नैन नहिँ सूझै ज्ञान का दीपक जगा दीजो रे॥
विष की लहर उठत घट अन्तर अमृत बूँद चुवा दीजो रे॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा खेय के पार लगा दीजो रे॥
धरमदास की अरज गुसाईं अब के खेप निभा दीजो रे॥ २॥

हम सत्त नाम के बैपारी।
कोई कोई लादे काँसा पीतल कोई कोई लौंग सुपारी॥
हम तो लाद्यो नाम धनी को पूरन खेप हमारी॥
पूँजी न टूटै नफ़ा चौगुना बनिज किया हम भारी॥
हाट जगाती रोक न सकि हैं निर्भय गैल हमारी॥
मोति बूँद घटही में उपजै सुकिरत भरत कोठारी॥
नाम पदारथ लाद चला है धरमदास बैपारी॥ ३॥

झरि लागै महलिया, गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठै शोभा बरनि न जाय॥
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनन्द ह्वै साधु नहाय॥
खुलीकिवरियामिटीअँधियरिया,धनसतगुरुजिनदियालखाय॥
धरमदास बिनवै कर जोरी,सतगुरु चरन में रहत समाय॥४॥

मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो।
अपन बलम परदेश निकरि गैलो
हमरा के कछुवो न गुन दै गैलो॥
जोगिन ह्वै के मैं बन ढूँढ़ों
हमरा के बिरह बैराग दै गैलो॥
सँग की सखी सब पार उतरि गैलीं
हम धन ठाढ़ी अकेली रहि गैलो॥

धरमदास यह अरज करतु हैं
सार सबद सुमिरन दै गैलो॥

गुरू नानक

गुरू नानक का जन्म सं० १५२६ वि० कार्तिक की पूर्णिमा के दिन चार घड़ी रात रहे कल्यानचन्द खत्री की धर्मपत्नी तृप्ता के गर्भ से हुआ। कल्यानचन्द, ज़िला लाहौर, तहसील शरकपुर के तलवंडी नगर के सूबाराय बुलार पठान के कारकुन थे।

गुरू नानक ने बालकपन ही में अपनी विलक्षण बुद्धि के अपूर्व चमत्कार दिखाये। ये बहुत सीधे सादे और संत स्वभाव के थे। सं० १५४५ वि० में इनका विवाह गुरुदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ। संवत् १५५१ और १५५३ वि० में सुलक्षणी देवी के गर्भ से क्रमशः श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचंद्र, दो पुत्रों का जन्म हुआ। आगे चल कर श्री चंद्र उदासी साधू सम्प्रदाय का मूल पुरुष हुआ। और लक्ष्मीचंद के वंश के लोग अब तक वर्त्तमान हैं।

गुरू नानक जी के समय में मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू जाति त्राहि त्राहि कर रही थी। गुरू नानक जी के सदुपदेश से हिन्दुओं में एक ऐसा सिखसमुदाय पैदा हो गया जिस ने हिन्दुओं की मान मर्यादा ही नहीं बचाई बल्कि मुसलमानी सलतनत की जड़ तक हिला दी। विचार करके देखा जाय तो गुरू नानक जी ने हिन्दुओं का बड़ा भारी उपकार किया।

गुरू नानक जी ने संवत् १५५६ से १५७१ तक आगरा

बिहार, बंगाल, आसाम, ब्रह्मा, उड़ीसा, मारवाड़, हैदराबाद, मद्रास, लंका, बद्रीनारायण, नैपाल, सिकम, भूटान, सिंध, मक्का, जद्दा, मदीना, रूम, बग़दाद, ईरान, बिलोचिस्तान, कंधार, काबुल, और कश्मीर की यात्रा की। यात्रा में ये जहाँ जहाँ गये वहाँ वहाँ के लोग इनके उपदेश से बहुत लाभ उठाते रहे। काशी में गुरू नानक और कबीर साहब से भी धर्मचर्चा हुई थी। अंत के १६ वर्ष इन्होंने कर्तारपुर में बिताकर ६६ वर्ष १० महीना और १० दिन की अवस्था (सं० १५६५) में शरीर छोड़ा।

गुरू नानक जी की शिक्षा ने पंजाब में सिखों की एक जाति ही बना दी। इनके बाद जितने गुरु हुये, सब एक से एक बढ़कर पराक्रमी, प्रतापी और बुद्धिमान थे। यह गुरू नानक जी की ही शिक्षा का फल था कि गुरू गोविन्दसिंह सरीखे शूर बीर हिन्दुओं में पैदा हुये।

हम गुरू नानक जी की कविता के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत करते हैं—

कलियाँ थी धडले भये धडलियें भये सुपैदु।
नानक मता मतो दियाँ उज्जरि गइया खेडु॥ १॥
जागोरे जिन जागना अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागो नानका जब सोवउ पाँव पसारि॥ २॥
मित्राँ दोस्त माल धन छड्डि चले अति भाइ।
संगि न कोई नानका उह हंस अकेला जाइ॥ ३॥
जेही पिरीति लगंदिया तोड़ निबाहू होइ।
नानक दरगह जाँदियाँ ठक न सक्के कोइ॥ ४॥
सूरा एकन आखियन जो लड़नि दलाँ में जाय।
सूरे सोई नानका जो मंनणु हुकुम रजाय॥ ५॥

हिरदे जिनके हरि बसे से जन कहियहि सूर।
कही न आई नानका पूरि रह्या भरपूर ॥ ६ ॥
मन की दुविधा ना मिटै मुक्ति कहाँ ते होइ।
कउड़ी बदले नानका जन्म चल्या नर खोइ ॥ ७ ॥
जित बेले अमृत बसे, जीयाँ होवे दाति।
तिन बेले तू उठि बहु चिह पहरे पिछली राति ॥ ८॥
इस दम दा मैनूं कीबे भरोसा
आया आया न आया न आया ॥
या संसार रैन दा सुपना
कहिं दीखा कहिं नाहिं दिखाया ॥
सोच विचार करे मत मन में
जिसने ढूँढ़ा उसने पाया ॥
नानक भक्तन के पद परसे
निस दिन,रामचरन चित लाया॥ ६॥

सब कछु जीवत को व्योहार।

मात पिता भाई सुत बांधव अरु पुन गृह की नार॥
तन तें प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार॥
आध घरी कोऊ नहिं राखे घर तें देत निकार।।
मृग तृस्ना ज्यों जग रचना यह देखो दै विचार॥
कहु नानक भज राम नाम नित जातें हो उधार।। १० ॥

मन की मनहीं माहिं रही

ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही।।
दारा मीत पूत रथ संपति धन जन पूर्न मही॥
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही॥
फिरत फिरत बहुते जुग हार्यो मानस देह लही
नानक कहत मिलन की बिरियाँ सुमिरत कहा नहीं ॥ ११ ॥

जो नर दुख में दुख नहिं मानै ॥
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जानै ॥
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना ॥
हर्ष शोक तें रहे नियारो नाहिं मान अपमाना ॥
आसा मनसा सकल त्यागि कै जगते रहै निरासा ॥
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन तेहिं घट ब्रह्मनिवासा ॥
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी ॥
नानक लीन भयो गोविन्द सों ज्यों पानी सँग पानी ॥ १२ ॥

रे मन कौन गत होइ है तेरी ।
गहि जग में रामनाम सो तो नहिं सुन्यो कान ।
विषयन सों अति लुभान मति नाहिन फ़ेरी ॥
मानस को जनम लीन्ह सिमरन नहिं निमिष कीन्ह ।
दारा सुत भयो दीन पगहुं परी बेरी ॥
नानक जन कह पुकार सुपने ज्यों जग पसार ।
सिमरत नहिं क्यों मुरार माया जाकी चेरी ॥ १३ ॥

———:०:———

सूरदास

सूरदास का जन्म अनुमान से १५४० वि० में और मरण १६२० वि० में कहा जाता है। उन्हों ने ६७ वर्ष की अवस्था में सूरसारावली लिखी। सूरदास का सब से बड़ा ग्रंथ सूरसागर है, सूरसारावली उसी की सूची है, जो सूरसागर के बनने के बाद बनी है। सूरसारावली में लिखा है—

"गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन ।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन ॥

इस से पता चलता है कि सूरसारावली लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष को थी। उन्होंने साहित्य लहरी नाम का एक और ग्रन्थ बनाया है। उसमें सूरसागर के दृष्ट-कूट पदों का संग्रह है। साहित्य लहरी में सूरदास ने एक स्थान पर लिखा है :—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।

दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल संवत पेख॥
नन्द नन्दन मास छै ते हीन त्रितिया वार।
नन्द नन्दन जनम ते हैं बाण सुख आगार॥
तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन।
नन्द नन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन॥

अर्थ—मुनि=७, रसन=रस हीन अर्थात् शून्य, रस=६ दसन गौरीनन्द=१=१६०७, नन्द नन्दन मास=वैशाख, छै हीन तृतिया=अक्षय तृतीया, तृतिय ऋक्ष=कृत्तिका नक्षत्र सुकर्म योग। (देखो सरदार कवि कृत साहित्य लहरी की टीका)।

इस से प्रकट होता है कि साहित्य लहरी १६०७ वि० में बनी। उस समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। क्योंकि साहित्य लहरी और सूरसारावली के बनने का समय प्रायः एक ही अनुमान किया जाता है। इस अनुमान के आधार पर सूरदास का जन्म (१६०७–६७) १५४० वि० में होना सिद्ध होता है।

सूरदास का जन्म दिल्ली के पास "सोही" गाँव में हुआ था। इनके माता पिता दरिद्र थे। पिता का नाम रामदास था। सूरदास सात भाई थे। छः भाई मुसलमानों के साथ

लड़ाई में मारे गये। सूरदास अपने को चन्द बरदायी का वंशज बतलाते हैं।

सूरदास जन्म के अन्धे न थे। ऐसी कहावत है कि एक बार ये एक युवती को देखकर उसपर मुग्ध हो गये। उसकी ओर एकटक ताकते हुए ये बहुत देर तक खड़े रहे। अंत में वह युवती इनके पास स्वयं आई और कहने लगी—महाराज, क्या आज्ञा है ? सूरदास को उस समय अपनी स्थिति पर बड़ी लज्जा आई। इन्हों ने यह दोष आँखों का समझ कर उस युवती से कहा कि यदि तुम मेरी आज्ञा मानती हो तो सुई से मेरी दोनों आँखें फोड़ दो। युवती ने आज्ञानुसार ऐसा ही किया। तब से सूरदास अंधे हो गये। भक्तमाल में लिखा है कि सूरदास जन्म के अंधे थे। परन्तु इस पर सहसा विश्वास नहीं होता, क्योंकि इन्होंने अपनी कविता में रंगों का, ज्योति का और अनेक प्रकार के हाव भाव का ऐसा यथार्थ वर्णन किया है जो बिना आँख से देखे, केवल सुनकर, नहीं किया जा सकता।

सूरदास की कविता के लालित्य और माधुर्य के विषय में तो कहना ही क्या है ? हिन्दुओं के घर घर में इनके भजन बड़े प्रेम से गाये और सुने जाते हैं। हिन्दुस्तान के गवैये सूरदास के भजन बड़े चाव से गाते हैं। राम चरित्र लिखने में जैसी तुलसीदास जी ने अपनी प्रतिभा दिखलाई है उसी तरह श्रीकृष्ण की लीला लिखकर सूरदास ने भी अपनी अनुपम कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। प्रेमी और भक्त जनों के हृदयों में सूरदास के भजनों से आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है। कविता द्वारा बाल-चरित्र का ठीक ठीक चित्र आँखों के सामने कर देने की इनमें अलौकिक पटुता थी।

हिन्दी साहित्य में सूरदास का गौरव कितना है, यह इस दोहे से भली भाँति समझा जा सकता है—

"सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करैं प्रकास"

गोपियों के विरह वर्णन में सूरदास ने हृद्गत भावों के झलकाने में कमाल कर दिया है। सूरदास काव्य शास्त्र के पंडित थे। पुराणों का इन्हों ने अच्छा अध्ययन किया था। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध आठ कवियों को मिला कर अष्टछाप स्थापित किया था। उनके नाम ये हैं—कृष्णदास, परमानन्द दास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, सूरदास। इन आठों में सूरदास सब से उत्तम थे।

सूरदास ने ८० वर्ष की अवस्था में गोकुल में शरीर छोड़ा। इनका अंतिम भजन यह है, जो शरीर छोड़ते समय इन्होंने कहा—

खंजन नैन रूप रस माते।

अति से चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चल चल जात निकट श्रवनन के उलट पलट ताटंक फँदाते॥
सूरदास अंजन गुन अटके नातर अब उड़ि जाते॥

प्राचीन मनुष्यों की कहावत है कि ये उद्धव के अवतार थे। इस में संदेह नहीं कि इनके हृदय में वास्तविक प्रेम था। ये प्रेम की दशा से पूर्ण अभिज्ञ थे और भगवान श्री कृष्ण को सखा भाव से भजने वाले भक्त थे।

यद्यपि इनके पद पद में लालित्य भरा है परन्तु स्थाना-

भाव से इनके थोड़े से पद सूर सागर से चुनकर यहाँ लिखे जाते हैं—

मेरो मन अनंत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै॥
कमल नयन को छाँड़ि महातम और देव को धावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥ १॥

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुवन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये॥
चारु कपोल लोल लोचन छवि गौरोचन को तिलक दिये।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये॥
कठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये।
धन्य सूर एको पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये॥ २॥

यशोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं जोइ सोई कछु गावैं॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगी सी आवे तोकों कान्ह बुलावै॥
कबहूँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहू अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रही कर कर सैन बतावैं॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नँद भामिनि पावै॥ ३॥

लालन हौं वारी तेरे या मुख ऊपर।
माई मेरिहि डीठि न लागे तातें मसि बिंदा दयो भ्रू पर॥
सर्वसु मैं पहिले हा दीनों नान्हीं नान्हीं दँतुली दूपर।
अब कहा करों निछावरि सूर यशोमति अपने लालन ऊपर॥४॥

घुटुरुवन चलत श्याम मणि आँगन
मात पिता दोउ देखत री
कबहुँक किलकिलात मुख हेरत,
कबहुँ जननि मुख पेखत री ॥
लटकन लटकत ललित भाल पर
काजर बिंदु भ्रुव ऊपर री।
वह सोभा नैननि भरि देखैं
नहि उपमा कहुँ भू पर री ॥
कबहुँक दौरि घुटुरुवन लटकत
गिरत परत फिरि धावत री।
इतते नंद बुलाइ लेत हैं,
उतते जननि बुलावति री ॥
दंपति होड़ करत आपुस में
श्याम खिलौना कीनो री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन
सुत हितकरि दोउ लीनो री ॥ ५॥

गहे अँगुरिया तात की नँद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत ॥
बार बार बकि श्याम सों कछु बोल बकावत।
दुहुँघा दोउ दँतुली भई अति मुख छवि पावत ॥
कबहुँ कान्ह कर छाँड़ि नंद पग द्वै करि धावत।
कबहुँ धरणि पर बैठिके मन महँ कछु गावत ॥
कबहुँ उलटि चलैं धाम को घुटरुन करि धावत।
सूर श्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढ़ावत ॥ ६ ॥

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
कितीबार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी ॥

तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत नहावत आँछत नागिन सी भ्वै लोटी॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
सूर श्याम चिरजीवो दोऊ, भैया हरि हलधर की जोटी॥ ७॥

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहि मोहि देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया॥
मोसों कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि यतन बटैया॥
अब बाबा कहि कहत नंद को यसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोंहि खिझावत तब उठि चलो खिसैया॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हंसत उर लैया।
सूर नंद बलिरामहि धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया॥ ८॥

कमलनयन कछु करो बियारी।
लुचुई लपसी सद्य जलेबी सोइ जेवहु जो लगे पियारी॥
घेवर मालपुआ मुतिलाडू सुघर सजूरी सरस सवारी।
दूध बरा उत्तम दधि बाटी दाल मसूरी की रुचि न्यारी॥
आछो दूध औटि धौरी को मैं ल्याई रोहिणि महतारी।
सूरदास बलराम श्याम दोउ जेवें हैं जननि जाइ बलिहारी॥९॥

जेंवत श्याम नंद की कनियाँ।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छबि निरखत नँद रनियाँ॥
बरी बरा बेसन बहु भाँतिन व्यंजन विविध अनगनियाँ।
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनियाँ॥
मिश्री दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छविधनियाँ।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो सुख कहत न बनियाँ॥
जो रस नन्द यशोदा बिलसत सो नहिं तिहुँ भुवनियाँ।
भोजन करि नन्द अचवन कियो माँगत सूर जुठनियाँ॥ १०॥

नैना ढीठ अतिही भए।
लाज लकुट दिखाइ त्रासी नैं कहूँ न नए॥
तोरि पलक कपाट घूँघट ओट मेटि गए।
मिले हरि को जाइ आतुर जे हैं गुननि मए॥
मुकुट कुण्डल पीत पट कटि ललित भेस ठए।
जाइ लुब्धे निरखि वह छवि सूर नन्द जए॥ ११॥
बिछुरे श्री ब्रजराज आजु तौ नैनन ते परतीत गई।
उठि न गई हरि संग तबहि ते ह्वै न गई सखि श्याम मई॥
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई।
साचे क्रूर कुटिल ए लोचन व्यथा मीनछवि मानो छीन लई॥
अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए ते शूल नए।
सूरदास याही ते जड़ भए इन पलकन ही दगा दए॥ १२॥
यशोदा बार बार यौं भाषै।
है कोई ब्रज हितू हमारो चलत गोपालहिं राखै॥
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वै आयौ॥
बरु ये गोधन हरो कंस सब मोहि बंदी ले मेलौ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अँखियन आगे खेलौ॥
बासर वदन विलोकत जीवौं निसि निज अङ्क में लाऔं।
तेहि बिछुरत जो जीवौं कर्म वश तौं हँसि काहि बुलाऔं॥
कमल नयन गुण टेरत टेरत अधर वदन कुम्हिलानी।
सूर कहा लगि प्रकट जनाऊँ दुखित नन्दजू की रानी॥ १३॥
अरी मोहिं भवन भयानक लागे, माई! श्याम बिना।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्द महरि के अङ्गना॥
लै जु गये अक्रूर ताहि को ब्रज के प्राण धना।
कौन सहाय करे घर अपने मेटे बिघन घना॥

काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना।
सूरदास मोहन दरसन बिन सुख संपति सपना ॥ १४ ॥

नैन सलोने श्याम हरि कब आवहिंगे।

वे जो देखत राते राते फूलन फूले डार।
हरि बिन फूल झरीसी लागत झरिझरि परत अँगार ॥
फूल बिनन ना जाऊँ सखीरी हरि बिन कैसे फूल।
सुनरी सखी मोहि राम दुहाई लागत फूल त्रिशूल ॥
जबतें पनिघट जाऊँ सखीरी वा जमुना के तीर।
भरि भरि यमुना उमड़ि चलत हैं इन नैनन के नीर ॥
इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घरनाव।
चाहत हौ ताही पै चढ़िके हरि जी के ढिग जावँ ॥
लाल पियारे प्राण हमारे रहे अधर पर आय।
सूरदास प्रभु कुंज बिहारी मिलत नहीं क्यों धाय ॥ १५ ॥

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।

प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्राण दह्यो ॥
अलि सुत प्रीति करी जल सुत सों सम्पति हाथ गह्यो।
सारङ्ग प्रीति करी जो नाद सों सन्मुख बाण सह्यो ॥
हम जो प्रीत करी माधव सों चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ॥ १६ ॥

प्रीति तौ मरनऊ न बिचारै।

प्रीति पतङ्ग जोति पावक ज्यों जरत न आपु सँभारै ॥
प्रीति कुरङ्ग नाद स्वर मोहित बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन तें उड़त न आपु सँभारै ॥
सावन मास पपीहा बोलत पिउ पिउ करि जो पुकारै।
सूरदास प्रभु दरसन कारन ऐसी भाँति बिचारै ॥ १७ ॥

जिन कोउ काहू के वश होहि ।
ज्यों चकोर दिनकर बश डोलत मोह फिरावत मोहि ॥
हम तौ रीझ लटू भइ लालन महा प्रेम जिय जानि ।
बन्ध अबन्ध अमति निशि बासर को सरझावति आनि ॥
उरझे सङ्ग अङ्ग अङ्ग प्रति विरह वेलि की नाई ।
मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि रूप सुधा सियराई ॥
अति आधीन हीन अति व्याकुल कहाँ लों करौं बनाइ ।
ऐसी प्रीति करी रचना पर सूरदास बलि जाइ ॥ १८ ॥

कहयो कान्ह सुन यशुमति मैया ।
आवहिंगे दिन चार पाँच में हम हलधर दोउ भैया ॥
मुरली वेत विषाण देखियो श्रृंगी बेर सबेरो ।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो ॥
जादिन तें तुम से बिछुरे हम कोऊ न कहत कन्हैया ।
भोरहि नाहिं कलेऊ कीनो साँझ न पय पीयो ना धैया ॥
कहत न बन्यो सँदेशो मोपै जननि जितो दुख पायो ।
अब हम सों बसुदेव देवकी कहत आपनो जायो ॥
कहियो कहा नंद बाबा सों बहुत निठुर मन कीनो ।
सूर हमहि पहुँचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीनो ॥ १९ ॥

मधुकर हम न होहिँ वे वेली ।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग करत कुसुम रस केली ॥
वारे ते वर बाजि बढ़ी है अरु पोषी पिय पानि ।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत होत सदा हित हानि ॥
हैं वेली विरहा वृन्दावन उरझी श्याम तमाल ।
पुहुप वास रस रसिक हमारे विलसत मधुप गोपाल ॥
योग समीर धीर नहि डोलत रूप डार ढिग लागि ।
सूर परागनि तजति हिये ते श्री गुपाल अनुरागि ॥ २० ॥

समुझि न परत तुम्हारी ऊधो ।
ज्यों त्रिदोष उपजे जक लागत बोलति बचन न सूधो ॥
आपुन को उपचार करो कछु तब औरन सिख देहू ।
बड़ो रोग उपज्यों है तुमको मौन सवारे लेहू ॥
वहाँ भेषज नाना विधि को अरु मधुरिपु से हैं वैद ।
हम कातर डरपत अपने सिर यह कलङ्क है कैद ॥
साँची बात छाँड़ि कत झूठी कहो कौन विधि सुनहीं ।
सूरदास मुकताहल भोगी हंस ज्वारि को चुनहीं ॥ २१ ॥

अखियाँ हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यो चाहत कमलनैन को निसि दिन रहत उदासी ॥
आये ऊधो फिरि गये आँगन डारि गये गर फाँसी ।
केसरि को तिलक मोतिन की माला वृन्दावन को वासी ॥
काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हाँसी ।
सूरदास प्रभु तुमरे दरस को जाइ करवट लयों कासी ॥ २२ ॥

ऊधो अँखियाँ अति अनुरागी ।
इकटक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस पावस ऋतु आई देखत हैं विदमान ।
अबधौं कहा कियो चाहत हैं छाड़हु निर्गुन ज्ञान ॥
सुनि प्रिय सखा श्याम सुंदर के जानत सकल सुभाइ ।
जैसे मिलें सूर के स्वामी तैसी करहु उपाइ ॥ २३ ॥

हमको हरि की कथा सुनाउ ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि मथुरा ही लै जाउ ॥
वे नर नारिन के समुझहिंगी तेरो बचन बनाउ ।
पालागौं ऐसी इन बातनि उनही जाइ रिझाउ ॥
जो शुचि सखा श्यामसुंदर को अरु जिय अति रतिभाउ ।
तो वारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि दिखाउ ॥

जो कोउ कोटि करै कैसे हु बिधि विद्या व्यवसाउ।
तो सुन सूर मीन को जल बिन नाहिं न और उपाउ ॥ २४ ॥

ऊधो जी हमहिं न योग सिखैये।
जेहि उपदेश मिले हरि हमको सो व्रत नेम बतैये ॥
मुक्ति रहो घर बैठि आपने निरगुन सुनत दुख पैये।
जेहि सिर केस कुसुम भरि गूदे तेहि कैसे भसम चढ़ैये ॥
जानि जानि सब मगन भये हैं आपुन आपु लखैये।
सूरदास प्रभु सुनत न वा बिधि बहुरि किया व्रज ऐये ॥ २५ ॥

ऊधो कहा मति दीन्हीं हमहिं गोपाल।
आवहु री सखी सब मिलि जो पावें नँदलाल ॥
घर बाहर तें बोलि लेहु सब जावदेक व्रज बाल।
कमलासन बैठहु री माई मूँदहु नैन बिशाल ॥
षटपद कही सोऊ करि देखी हाथ कछू नहिं आई।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन नेकु न देत दिखाई ॥
फिरि भई मगन विरह सागर में काहुहि सुधि न रही।
पूरण प्रेम देखि गोपिन को मधुकर मौन गही ॥
कछु ध्वनि सुनि श्रवणन चातक की प्राण पलटि तनु आये।
सूर सो अब के टेरि पपीहे विरही मृतक जिवाये ॥ २६ ॥

मुख देखे की कौन मिताई।
जैसे कृपणहिँ दीन माँगनो लालच लीने करत बड़ाई ॥
प्रीतम सो जो रहे एकरस निसिवासर बढ़ि प्रेम सवाई।
चितमहिं और कपट अंतर्गत ज्यों फलखीर नीर चिकनाई ॥
तब वह करी नंद नंदन अलि बन बेली रसरास खिलाई।
अब यह कितही दूर मधुपुरी ज्यों उड़ि भँवर बेलि तजि जाई ॥
योग सिखाये क्यों मनमानै क्योंऽब ओसकन प्यास बुझाई।
सूरजदास उदास भई हम पूरब प्रीति उघरि निजआई॥ २७ ॥

ऊधो योग योग हम नाहीं।
अबला सार ज्ञान कहा जानै कैसे ध्यान धराहीं ॥
ते ये मूँदन नैन कहत हैं हरि मूरति जा माहीं।
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमतें सुनी न जाहीं ॥
श्रवण चीर अरु जटा बँधावहु ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत विरह अनल अति दाहीं ॥
योगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपु माहीं।
सूरदास ते न्यारे न पल छिन ज्यों घट तें परिछाँहीं ॥ २८ ॥

कहाँ लौ कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाध मन अगम अगोचर मनसो तहाँ न जाई ॥
जाके रूप न रेख बरन वपु नाहिन संगत सखा सहाई।
ता निर्गुण सों नेह निरन्तर क्यों निबहैरी माई।
जल बिन तरंग भीति बिन लेखन बिन चेतहि चतुराई ॥
या ब्रज में कछु नहीं चाह है ऊधो आनि सुनाई ॥
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति अंग अंग उरझाई।
सुंदर श्याम कमल दल लोचन सूरदास सुखदाई ॥ २९ ॥

कहत कत परदेशी की बात।
मंदिर अरध अवधि बदि हमसों हरि अहार चलि जात ॥
शशि रिपु वरष सूर रिपु युगवर हर रिपु किये फिरे घात।
मघ पंचक लै गये श्यामघन आइ बनी यह बात ॥
नखत वेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात।
सूरदास प्रभु तुमहिँ मिलन को कर मींजत पछितात ॥ ३० ॥

ऊधो जो तुम हमहिं बतायो।
सो हम निपट कठिनई करि करि या मनको समुझायो ॥
योग याचना जबहि अगह गहि तबहीं है सो ल्यायो।
भटक फिरो बोहित के खग ज्यों फिरि हरि ही पै आयो ॥

अब कै तो सोई उपदेशो जेहि जिय जाय जिआयो।
बारक मिलैं सूर के प्रभु तौ करौं आपनों भायो ॥ ३१ ॥

मधुकर इतनी कहियहु जाइ।

अति कृष गात भई ये तुम बिन परम दुखारी गाय ॥
जल समूह बरसत दोउ आँखें हूँकति लीने नाउँ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनों सूँघति सोई ठाउँ॥
परति पछार खाइ छिनहीं छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारी है वारि मध्य तें मीन ॥ ३२ ॥

जाके रूप वरन वपु नाहीं।
नैन मूँदि चितवो चित माँहीं॥
हृदय कमल में ज्योति-विराजै।
अनहद नाद निरन्तर बाजै॥
इड़ा पिंगला सुखमन नारी।
सहज सु तामे बसैं मुरारी॥
माता पिता न दारा भाई।
जल थल घट घट रह्यो समाई॥
इहि प्रकार भव दुख सरि तरहू।
योग पंथ क्रम क्रम अनुसरहू ॥३३॥

प्रेम प्रेम तें होय प्रेम तें पर है जीये।
प्रेम बँधो संसार प्रेम परमारथ लहिये॥
एकै निश्चय प्रेम को जीवन मुक्ति रसाल।
साँचो निश्चय प्रेम को जिहिरे मिलै गोपाल॥
ऊधो कहि सतभाय न्याय तुम्हरे मुख साँचे।
योग प्रेम रस कथा कहो कंचन की काँचे॥
जाके पर है हूजिये ग हिये सोई नेम।
मधुप हमारी सों कहो योग भलो या प्रेम॥

सुनि गोपी के बयन नेम ऊधो के भूले।
गावत गुण गोपाल फिरत कुंजन में फूले॥
खिन गोपी के पाँ परें धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेटहीं ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य सुरभी बनचारी।
धनि यह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारी॥
उपदेसन आये हुते मोहिं भयो उपदेस।
ऊधो यदुपति पै चले धरे गोप को भेस॥
भूले यदुपति नावँ कहो गोपाल गोसाईं।
एक बार ब्रज जाहु देहु गोपिन दिखराई॥
वृंदाबन सुख छाँड़ि कै कहाँ बसे हो आइ।
गोवर्द्धन प्रभु जानि कै ऊधो पकरे पाँइ॥
ऊधो ब्रज को नेम प्रेम बरनो सब आई।
उमग्यो नैनन नीर बात कछु कह्यो न जाई॥
सूर श्याम भूलत भये रहे नैन जल छाइ।
पोंछि पोत पट सों कह्यो भल आये योग सिखाइ॥३४॥

कहाँ लौं कहिये ब्रज की बात।

सुनहु श्याम तुम बिन उन लोगन जैसे दिवस बिहात।
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृश गात॥
परम दीन जनु शिशिर हिमी हत अंबुज गत बिन पात॥
जाकहुँ आवत देखि दूरतें सब पूछति कुशलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं वायस बलिहि न खात।
सूर श्याम संदेशन के डर पथिक न उहि मग जात॥ ३५॥
सुन ऊधो मोहिं नेक न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।
तुम उनको कछु भली न कीनी निसिदिन दियो बियोग॥

यदपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राज सुख भोग।
तद्यपि मनहिं बसत बंशीवट ब्रज यमुना संयोग॥
वे उत रहत प्रेम अवलम्बन इतते पठयो योग।
सूर उसास छाँड़ि भरि लोचन बढ्यो विरह ज्वर सोग॥३६॥

ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
वृंदावन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छाँहीं॥
प्रात समय माता यशुमति अस नन्द देख सुख पावत।
माखन रोटी दह्यो सजायो अति हित साथ खवावत॥
गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत सब दिन हँसत खिरात।
सूरदास धनि धनि व्रजवासी जिन सों हँसत ब्रजनाथ॥ ३७॥

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुनसुन्दरि जिय मिलन न हरि बिसरै॥
और मित्र ऐसे समया महँ कत पहिचान करै।
विपति परे कुशलात न बूझै बात नहीं बिचरै॥
उठिके मिले तँदुल हम दीने मोहन बचन फुरै।
सूरदास स्वामी की महिमा टारी विधि न टरै॥ ३८॥

और को जाने रस की रीति।
कहाँ हैां दीन कहाँ त्रिभुवन पति मिले पुरातन प्रीति॥
चतुरानन सन निमिष न चितवत इती राज की नीति।
मोसों बात कही हिरदय की गये जाहि युग बीति॥
बिनु गोविन्द सकल सुख सुन्दरि भुस पर कोसी भीति।
हौं कहाँ कहों सूरके प्रभु की निगम करत जाकी क्रीत॥ ३६॥

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहाँ तें सजनी सुनियत दूरि सिधारे॥
वे जल सर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातक चकोर श्यामघन बदन सुधानिधि प्यारे॥

मधुबन बसत आस दरसन की जोइ नैन मग हारे।
सूरज श्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे ॥ ४० ॥

रुकमिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

वा क्रीड़ा खेलत यमुना तट विमल कदम की छाँहीं ॥
सकल सखा अरु नन्द यशोदा वे चितर्तें न टराहीं।
सुत हित जानि नन्द प्रतिपाले बिछुरत विपति सहाहीं ॥
यद्यपि सुख निधान द्वारावति तउ मन कहुँ न रहाहीं।
सूरदास प्रभु कुंज बिहारी सुमिरि सुमिरि पछताहीं ॥ ४१ ॥

सखीरी श्याम सबै इक सार।

मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारनहार।
भँवर कुरंग काम अस कोकिल कपटिन की चटसार।
सुनहु सखीरी दोष न काहू जो बिधि लिखो लिलार ॥
उमड़ी घटा नाखि आवे पावस प्रेम की प्रीति अपार।
सूरदास सरिता सर पोखत चातक करत पुकार ॥ ४२ ॥

सखीरी श्याम कहा हित जानै।

कोऊ प्रीति करे कैसेहू वे अपनो गुन ठानै ॥
देखो या जलधर की करनी बरसत पोषै आनै।
सूरदास सरबस जो दीजै कारो कृतहि न मानै ॥ ४३ ॥
मेरे कुँअर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धस्यो रहै।
को उठि प्रात होत ले माखन को कर नेत गहै ॥
सूने भवन यसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै ॥
जो ब्रज में आनन्द हो तो मुनि मनसाहू न गहै ॥
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ीहू न लहै ॥ ४४ ॥

जन्म सिरानो ऐसे ऐसे ।

कै घर घर भरमत यदुपति बिन कै सोवत कै वैसे ॥
कै कहुँ खान पान रसनादिक कै कहुँ बाद अनैसे ।
कै कहुँ रंक कहूँ ईश्वरता नट बाजीगर जैसे ॥
चेत्यो नहीं गयो टरि अवसर मीन बिना जल जैसे ।
यह गति भई सूर की ऐसी श्याम मिलै धौं कैसे ॥ ४५ ॥

काया हरि के काम न आई ।

भाव भक्ति जहँ हरि यश सुनयो तहाँ जात अलसाई ॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहाँ सुनत उठि धाई ।
चरन कमल सुन्दर जहँ हरि को क्योंहूँ न जात नवाई ॥
जब लगि श्याम अंग नहि परसत आँखें जोग रमाई ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु विषय परम विष खाई ॥ ४६ ॥

सबै दिन गये विषय के हेत ।

तीनौ पन ऐसेही बीते केस भये सिर सेत ॥
आँखिन अन्ध श्रवण नहि सुनियत थाके चरन समेत ।
गंगाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत ॥
राम नाम बिन क्यों छूटोगे चन्द्र गहे ज्यों केत ।
सूरदास कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत ॥ ४७ ॥

जो तू राम नाम चित धरतौ ।

अबको जन्म आगलो तेरो दोऊ जन्म सुधरतौ ॥
यम को त्रास सबै मिटि जातो भक्त नाम तेरो परतौ ।
तंदुल घृत सँवारि श्याम को संत परोसो करतौ ॥
होतो नफ़ा साधु की संगति मूल गाँठते टरतौ ।
सूरदास बैकुंठ पैंठ में कोऊ न फेंट पकरतौ ॥ ४८ ॥

दो में एको तो न भई।
न हरि भजे न गृह सुख पाये वृथा बिहाय गई॥
ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि भई।
अविगत गति कछु समझि परत नहिं जो कछु करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसिदिन होत खई।
पद नख चंद चकोर विमुख मन खात अँगार भई॥
विषय विकार दवानल उपजी मोह बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुते दुख पायो अजहुँ न टेव गई॥
कहा होत अबके पछताने होती सिर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई॥ ४९॥
अदभुत एक अनूपम बाग।
जुगुल कमल पर गज वर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पालव, तापर सुक, पिक, मृगमद, काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर ता ऊपर यक मनिधर नाग॥
अंग अंग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधारस मानहु अधरन को बड़भाग ५०॥
आपको आपनहीं बिसरो।
जैसे स्वान काँच के मन्दिर भ्रमि भ्रमि भूँकि मरो।
ज्यों केहरि प्रतिमा के देखत बरबस कूप परो॥
मरकट मूठि छोड़ि नहीं दीनी घर घर द्वार फिरो।
सूरदास नलिनी के सुवना कह कौने पकरो॥ ५१॥

(दोहा)

भौंरा भोगी बन भ्रमै मोद न माने ताप।
सब कुसुमनि मिल रस करै कमल बधावे आप॥ १॥

सुनि परमित पिय प्रेम की चातक चितवत पारि।
वन आशा सब दुख सहै अंत न याचै बारि॥ २॥
देखो करनी कमल की कीनों जल सों हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो सूख्यो सरहि समेत॥ ३॥
दीपक पीर न जानई पावक परत पतंग।
तनु तो तिहि ज्वाला जस्यो चित न भयो रस भंग॥ ४॥
मीन वियोग न सहि सकै नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि रति न घटै नन जात॥ ५॥
प्रीति परेवा की गनो चाहत चढ़न अकास।
नहँ चढ़ि तीय जु देखिये परत छाँड़ उर स्वाँस॥ ६॥
सुमर सनेह कुरंग को पवन न राच्यो राग।
धरि न सकत पग पछ मनों सर सनमुख उर लाग॥ ७॥
सब रस को रस प्रेम है विषयी खेलै सार।
तन, मन, धन, यौवन खिसै तऊ न माने हार॥ ८॥
तैं जु रत्न पायो भलो जान्यो साधु समाज।
प्रेम कथा अनुदिन सुनी तऊ न उपजी लाज॥ ६॥
सदा सँघाती आपनो जिय को जीवन प्रान।
सो तू बिसस्यो सहज ही हरि ईश्वर भगवान॥ १०॥
वेद पुराण स्मृति सबै सुर नर सेवत जाहि।
महामूढ़ अज्ञान मति क्यों न सँभारत ताहि॥ ११॥
खग मृग मीन पतंग लौं मैं सोधे सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते कहों कहाँ लगि और॥ १२॥
प्रभु पूरन पावन सखा प्राणनहू को नाथ।
प्राण दयालु कृपालु प्रभु जीवन जाके हाथ॥ १३॥
गर्भवास अति त्रास में जहाँ न एको अंग।
सुनि सठ तेरो प्राणपति तहाँ न छाँड़यो संग॥ १४॥

दिना राति पोखत रह्यो ज्यों तंबोली पान।
वा दुख तें तोहिं काढ़ कै लै दीनो पय पान॥ १५॥
जिन जड़ ते जेतन कियो रचि गुण तत्व विधान।
चरन चिकुर कर नख दिये नयन नासिका कान॥ १६॥
असन बसन बहु विध दये औसर औसर आनि।
मात पिता भैया मिले नई रुचहि पहिचानि॥ १७॥
सजन कुटुम परिजन बढ़े सुत दारा धन धाम।
महामूढ़ विषयी भयो चित आकर्ष्यो काम॥ १८॥
खान पान परिधान रस यौवन गयो व्यतीत।
ज्यों मिट परि परतीय बस भोर भये भय भीत॥ १९॥
जैसे सुख ही मन बढ़यो तैसे बढ़यो अनंग।
धूम बढ़यो लोचन खस्यो सखा न सूझयो संग॥२०॥
जम जान्यो सब जग सुन्यो बाढ़यो अजस अपार।
बीच न काहू तब कियो (जब) दूतनि काढ्यो बार२१॥
कह जानो कहँवा मुवो ऐसे कुमति कुमीच।
हरिसों हेत बिसारि के सुख चाहत है नीच॥२२॥
जो पै त्रिय लज्जा नहीं कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे रे सठ सूर गँवार॥ २३॥
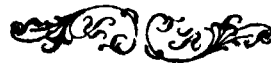
हितहरिवंश

गो स्वामी हितहरिवंश का जन्म वैशाख बदी ११ सं० १५५६ में देवबंद (सहारनपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम हरिराम और माता का तारावती था, इनकी स्त्री का नाम रुक्मिणी था।

हित हरिवंश जी राधावल्लभ संप्रदाय के संस्थापक थे। ये संस्कृत और हिन्दी के अच्छे कवि थे। इनकी कविता का मुख्य लक्ष्य भक्ति था। हिन्दी में इन्होंने ८४ पद कहे हैं। उनमें से कुछ चुने हुये पद हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी॥
नख सिखलौं अँग अंग माधुरी मोहे श्याम धनी।
यों राजत कवरी गूँथित कच कनक कञ्ज बदनी॥
चिकुर चन्द्रिकनि बीच अरध विधु मानहुँ ग्रसत फनी॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी।
भृकुटि काम कोदंड नैन सर कज्जल रेख अनी॥
तरल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी॥
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि साँवल विन्दु कनी।
पीतम प्रान रतन संपुट कुच कंचुकि कसित तनी॥
भुज मृनाल बल हरत वलय जुत परस सरस स्रवनी।
श्याम सीस तरु मनु मिडवारी रची रुचिर रवनी॥
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन कौ ह्रदिनी।
कृश कटि पृथु नितंब किंकिन व्रत कदलि खंभ जघनी॥
पद अंबुज जावक युत भूषन पीतम उर अवनी।
नव नव भाय विलोम भामइभ विहरत बर करनी॥

हित हरिवंस प्रसंसित स्यामा कीरति बिसद घनी।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर विस्व दुरित दवनी॥ १॥

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर।

तो बिन कुँवर कोटि वनिता जुत मथत मदन की पीर॥
गद्गद सुर बिरहाकुल पुलकित श्रवत विलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभान नंदिनी विलपत विपिन अधीर॥
बंसी बिसिख ब्याल मालावलि पञ्चानन पिक कीर।
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपु चीर॥
हितहरिवंस परम कोमल चित सपदि चली पिय तीर।
सुनि भय भीत वज्र को पिंजर सुरत सूर रनवीर॥ २॥

आजु बन नीको रास बनायो।

पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन बेनु बजायो॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो।
जुवतिनु मंडल मध्य श्यामघन सारँग राग जमायो॥
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायो।
विविध विसद वृषभान नंदिनी अंग सुगंध दिखायो॥
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायो।
ताताथेइ ताथेइ धरि नवगति पति ब्रजराज रिझायो॥
सकल उदार नृपति चूड़ामणि सुख बारिद बरखायो।
परिरंभन चुंबन आलिंगन उचित जुवति जन पायो॥
बरखत कुसुम मुदित नभ नायक इन्द्र निसान बजायो।
हितहरिबंस रसिक राधा पति जस बितान जग छायो॥ ३॥

नरहरि

नरहरि का जन्म सं० १५६२ में फतेहपुर जिले के असनी गाँव में हुआ। ये १०५ वर्ष तक जीवित रहे। अकबर के दरबार में इनका अच्छा मान था। इन्होंने एक छप्पय लिख कर एक गाय के गले में लटका कर उसे अकबर के सामने उपस्थित किया था। कहते हैं इसके प्रभाव से अकबर ने अपने राज में गोबध बंद कर दिया था। वह छप्पय यह है—

अरिहुँ दन्त तृन धरैं ताहि मारत न सबल कोइ।
हम संतत तृन चरहिं बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥
कह कवि नरहरि अकबर सुनो बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहिं मारियत मुयहु चाम सेवइ चरन॥

इनके बनाये हुए नीति विषयक दो ग्रन्थ सुने जाते हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने देखियेः—

नरहरि धरहरि को करै जननि सुतहिं विष देइ।
वेड़ा हठि खेती चरै साधु परद्धन लेइ॥
साधु परद्धन लेइ नाव करिया।गहि बोरै।
सोइ पहरू सोइ चोर प्रीति प्रियतम हठि तोरै॥
नृपति प्रजहिं दुख देइ कौन समरथ करै धरहरि।
छितिपति अकबर साह सुनो धरहरि करैं नरहरि॥१॥
खानखान हठ करै निधन परिवार बढ़ावै।
बँधुआ करै गुमान भर्ता सेवक ह्वै धावै॥
पण्डित किरिया हीन राँड़ दुरबुद्धि प्रमानै।
धनी न समझै धर्म नारि मर्जाद न मानै॥

कुलवंत पुरुष कुलविधि तजै बन्धु न मानै बन्धु हित।
सन्यास धारि धन संग्रहै ये जग में मूरख विदित॥ २ ॥
को सिखवत कुल बधू लाज गृह काज रङ्ग रति।
हंसन को सिक्खवत करन पय पान भिन्न गति॥
सज्जन को सिक्खवत दान अरु शील सुलच्छन।
सिंहन को सिक्खवत हनन गज कुंभ ततच्छन॥
विधि रच्यो जानि नरहरि निरखि कुल सुभाव को मिट्टवै।
गुण धर्म अकब्बर साह सुन को नर काको सिक्खवै॥ ३॥
सठन सनेह जु करै मान बेचै सुलुब्ध कहँ।
पिय बियोग सुख चहै साँकरै तजै स्वामि कहँ॥
मन बन्धहि पर रमन खेल दुर्जन सँग खेलहिं।
नृपति मित्र करि गिनहिं सर्प मुख अंगुलि मेलहिं॥
चुक्क हित समै नरहरि निरखि जड़ आगे बिस्तरहिं गुन॥
पछताहिं सु ते नर भगति बिन दौलत दलपति खान सुन॥४॥
बैर धनी निरधनो बैर कायर अरु सूरहिं।
घृत मधु माखी बैर बैर निम्मूहि कपूरहि॥
मूसं सर्पहि बैर बैर पावक अरु पानी।
जरा जोबना बैर बैर मूरख अरु ज्ञानी॥
बड़ बैर मोर जिमि चन्द मन बिरहिन बैर बसन्त सों।
नरहरि सुकब्बि कब्बित्त किय मङ्गन बैर अदत्त सों ॥ ५ ॥
न कछु क्रिया बिन विप्र न कछु कायर जिय छत्री।
न कछु नीति बिन नृपति न कछु अच्छर बिन मन्त्री॥
न कछु बाम बिन धाम न कछु गथ बिन गरुआई।
न कछु कपट को हेत न कछु मुख आप बड़ाई॥
न कछु दान सनमान बिन न कछु सुभोजन जासु दिन।
जन सुनो सकल नरहरि कहत न कछु जनम हरि-भक्ति बिन॥६॥

सरवर नीर न पीवहीं स्वाति बुंद की आस।
केहरि कबहुँ न तृन चरै जो ब्रत करै पचास॥
जो ब्रत करै पचास बिपुल गज्जूह बिदारै।
धन ह्वै गर्व न करै निधन नहिं दीन उचारै॥
नरहरि कुल क सुभाव मिटै नहिं जब लग जीवै।
बरु चातक मरि जाय नीर सरवर नहिं पीवै॥ ७॥

सर सर हंस न होत बाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफर न होत नारि पतिव्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत मलैगिर होत न बन बन।
फन फन मनि नहि होत मुक्त जल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत हैं जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल नरहरि कहत सब नर होत न एक सरि॥८॥

भूमि परत अवतरत करत बानक बिनोद रस।
पुनि जोबन मदमत्त तत्व इन्द्री अनङ्ग बस॥
विजय हेत जड़ फिरत बहुरि पहुँच्यो बिरधप्पन।
गयो जन्म गुन गनत अन्त कछु भयो न अप्पन॥
थिर रहत न कोउ नरपति न बल रहत एक चहुँ जुग्ग जस।
सुइ अजर अमर नरहरि निरखि पिये भक्ति भगवंत रस॥९॥

कबहुँ द्वार प्रतिहार कबहुँ दर दर फिरंत नर।
कबहुँ देत धन कोटि कबहुँ कर तर करंत कर॥
कबहुँ नृपति मुख चहत कहत करि रहत वचन बस।
कबहुँ दास लघु दास करत उपहास जिभ्य रस।
कछु जानि न संपति गर्ब्बिये विपति न यह उर आनिये।
हिय हारि न मानत सत पुरुष नरहरि हरिहिं सँभारिये॥१०॥

स्वामी हरिदास

स्वामी हरिदास ललिता सखी के अवतार समझे जाते थे। मुलतान के समीप सारस्वत ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था। ये बड़े त्यागी और विरक्त पुरुष थे। इनके प्रायः सभी शिष्य महात्मा और सुकवि थे। इन्होंने टट्टी वाली वैष्णव सम्प्रदाय चलाई। गान विद्या में ये बड़े प्रवीण थे। तानसेन बैजू बावरे को गानविद्या इन्हों ने सिखलाई थी। ये वृन्दाबन में रहा करते थे। अकबर बादशाह भी एक बार तानसेन के साथ इनका दर्शन करने के लिए आये थे।

इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है। इनके जन्म मरण का ठीक समय विदित नहीं है।

इनकी कविता का कुछ नमूना हम नीचे लिखते हैं :—

१

गहो मन सब रस को रस सार।

लोक बेद कुल करमै तजिये भजिये नित्य बिहार॥

गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ सुमिरो श्याम उदार॥

गति हरिदास रीति संतन की गादी को अधिकार॥

२

गायो न गोपाल मन लाइकै निवारि लाज पायो न प्रसाद साधु मंडली में जाइके। धायो न धमक वृंदा विपिन की कुंजन में रह्यो न सरन जाय बिठलेसराइ के। नाथ जू न देखि छक्यो छिन हूँ छबीली छाँव सिह पौरि परस्यो नाहि सीसहू नवाइके। कहै हरिदास तोहिँ लाजहू न आवे नेक जनम गमायो न कमायो कछु आइके॥

नन्ददास

नन्ददास तुलसीदास जी के सगे भाई और स्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे । अष्ट छाप में इनका भी नाम है । २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि शिष्य होने के पहले ये एक बार द्वारिका जा रहे थे ; पर राह भूल कर सीनन्द गाँव में पहुँचे । वहाँ एक खत्री की परम सुन्दरी स्त्री पर आसक्त हो गये । उस स्त्री के सम्बन्धी इनसे पिंड छुड़ाने के लिये उसे लेकर गोकुल चले गये, ये भी पीछे पीछे लगे रहे । अंत में विट्ठलनाथ जी के उपदेश से इनका मोह भंग हुआ ; और ये कृष्ण भगवान के प्रेम में फँस गये ।

इन्होंने कई ग्रंथ बनाए हैं । उनके नाम ये हैं:— रासपंचाध्यायी, अनेकार्थ नाम माला, रुक्मिणी मंगल, हितोपदेश, दशमस्कंध भागवत, दानलीला, मानलीला, ज्ञानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, रूपमंजरी, नाममंजरी, नाम चिंतामणि माला, रसमंजरी, विरहमंजरी, नाम माला, नासकेतु पुराण गद्य, और श्याम सगाई । भंवरगीत भी इन्हीं का रचित कहा जाता है । इसकी कविता भी बड़ी मनोहारिणी है । २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि इन्होंने समस्तश्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद किया था, परंतु मथुरा के कथावाचकों के आग्रह से इन्होंने उसे जमुना जी में प्रवाहित कर दिया । रासपंचाध्यायी की रचना इन्होंने अपने एक मित्र की सम्मति से की थी ।

भँवर गीत, इनकी हिन्दी भागवत का अंश जान पड़ता है, क्योंकि उसके प्रारंभ में पुस्तक प्रारंभ का कोई लक्षण नहीं । इसमें कुल ७५ पद्य हैं ।

रास पंचाध्यायी और भँवरगीत के कुछ सुन्दर पद हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

रास पंचाध्यायी

बन्दन करौं कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी॥
हरि लीला रस मत्त मुदित नित विचरत जगमें।
अद्भुत गति कतहूँ न अटक ह्वै निकसत मगमें॥
नीलोत्पलदल श्याम अंग नव जोवन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल मनो अलि अवलि विराजै।
ललित बिसाल सुभाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण भगति प्रतिबन्ध तिमिर कहँ कोटि दिवाकर॥
कृपा रङ्ग रस ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूम घुमारे॥
श्रवण कृष्ण रसभवन गण्ड मण्डल भल दरसै।
प्रेमानन्द मिलिन्द मन्द मुसुकनि मधु बरसै॥
उन्नत नासा अधर बिम्ब शुक की छबि छीनी।
तिन मह अद्भुत भाँति जु कछुक लसित मसि भीनी॥
कम्बुकण्ठ की रेख देखि हरि धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिहि निरखत नासै॥
उरवर पर अति छबि की भीर कछु वरनि न जाई।
जिहि भीतर जगमगत निरन्तर कुँअर कन्हाई॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हियो सरोवर रस भरि चली मनो उमगि पनारी॥
जिहि रस की कुण्डिका नाभि अस शोभित गहरी।
त्रिवली तामहँ ललित भाँति मनु उपजत लहरी॥

अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित सघनन अस।
जोवन मद आकरसत बरसत प्रेम सुधारस॥
गूढ़ जानु आजानु-बाहु मद-गज-गति-लोलैं।
गङ्गादिकन पवित्र करत अवनी पर डोलैं॥
अब दिन मनि श्रीकृष्ण दृगन तें दूरि भये दुरि।
पसरि परयौ अँधियार सकल संसार घुमड़ि घिरि॥
तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक लखि दुखित दयाकर।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर॥
श्रीवृन्दावन चिद्घन कछु छबि बरनि न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज गहि रह्यो जड़ताई॥
जहँ नग खग मृग लता कुञ्ज वीरुध तृन जेते।
नहि न काल गुन प्रभा सदा सोभित रहैं तेते॥
सकल जन्तु अविरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरहीं॥
सब दिन रहत बसन्त कृष्ण अवलोकनि लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा॥
ज्यों लक्ष्मी निज रूप अनूपम पद सेवति नित।
भू बिलसत जु बिभूति जगत जगमग रही जित कित॥
श्री अनन्त महिमा अनन्त को बरनि सकै कवि।
सङ्करषन सो कछुक कही श्रीमुख जाकी छवि॥
देवन में श्री रमारमन नारायन प्रभु जस।
बन में वृन्दावन सुदेस सब दिन सोभित अस।
या बन की बर बानिक या बनही बन आवै।
सैस महेस सुरेस गनेस न पारहिं पावै॥
जहँ जेतिक द्रुमजात कलपतरु सम सब लायक।
चिन्तामणि सम सकल भूमि चिन्तित फल दायक॥

तिन महँ इक जु कलपतरु लगि रही जगमग ज्योती।
पात मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती॥
तहँ मुनियन के गन्ध लुब्ध अस गान करत अलि।
वर किन्नर गन्धर्व अपच्छर तिन पर गइ बलि॥
अमृत फुही सुख गुही अति सुही परत रहत नित।
रास रसिक सुन्दर पियको स्रम दूर करन हित॥
ता सुरतरु महँ और एक अद्भुत छबि छाजै।
साखा दल फल फूलनि हरि प्रतिबिम्ब बिराजै॥
ता तरु कोमल कनक भूमि मनिमय मोहत मन।
दिखियतु सब प्रतिबिम्ब मनौ धर महँ दूसर बन॥
जमुनाजू अति प्रेम भरी नित बहत सुगहरी।
मनि मण्डित महिमाँह दौरि जनु परसत लहरी॥
तहँ इक मनिमय अङ्क चित्र को सङ्क सुभग अति।
तापर षोडश दल सरोज अद्भुत चक्राकृति॥
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर।
तहँ राजत बृजराज कुँअर वर रसिक पुरन्दर॥
निकर विभाकर दुति मेंटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नन्द कुँअर उर पर सोइ लागति उडु जस॥
मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छवि ताकी।
अखिल खण्ड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी॥
परमातम परब्रह्म सबनके अन्तरजामी।
नारायन भगवान धरम करि सबके स्वामी॥
बाल कुमर पौगण्ड धरम आक्रान्त ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सबको मन॥
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जहँ।
याही ते बैकुण्ठ विभव कुण्ठित लागत तहँ॥

भँवर गीत

ऊधव को उपदेश सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी॥
प्रेम धुजा रस रूपिनी उपजावन सुख पुंज।
सुन्दर स्याम बिलासिनी नव वृन्दाबन कुंज॥
सुनो ब्रजनागरी॥ १॥

कहन स्याम सन्देस एक मैं तुम पै आयो।
कहन समै संकेत कहूँ अवसर नहिँ पायो॥
सोचत ही मन में रह्यो कब पाऊँ इक ठाउँ।
कहि सँदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ॥
सुनो ब्रजनागरी॥ २॥

सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अंग भये भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गद्गद गिरा बोले जात न बैन॥
व्यवस्था प्रेम की॥ ३॥

*   *   *   *

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ।
विवस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रही साँवरे गात।
कल्पतरोरुह साँवरो ब्रजवनिता भईं पात॥
उलहि अंग अंग तें॥ ४॥

तुलसीदास

हिन्दी भाषा के अभूतपूर्व महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ वि० में, राजापुर में हुआ। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इन का पहला नाम रामबोला था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म दरिद्र कुटुम्ब में हुआ था; जैसा कि इन्होंने कवितावली में "जायो कुल मंगन" आदि स्पष्ट ही लिखा है। इनके गुरु का नाम नरहरिदासजी था। रामायण के प्रारंभ में "बंदउँ गुरु पद कञ्ज, कृपासिन्धु नर रूप हरि" इस सोरठे के "नर रूप हरि" पद से, लोग गुरु का नाम नरहरि निकालते हैं। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। स्त्री पर इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह नैहर चली गई। इनसे पत्नी-वियोग न सहा गया। ये ससुराल जाकर स्त्री से मिले। स्त्री को लज्जा आई। उसने ये दोहे कहे:—

लाज न लागत आपु को दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहैां मैं नाथ॥
अस्थि चरम मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ होति न तौ भव भीति॥

यह बात गोसाईं जी को ऐसी लगी कि ये वहाँ से उसी समय काशी चले आये, और विरक्त हो गये। स्त्री बेचारी को क्या मालूम था कि उसकी साधारण बात का ऐसा परिणाम होगा। उसने बहुत विनती की, और भोजन करने को कहा, परन्तु इन्होंने एक न सुनी। यह घटना तुलसीदास के प्रेम की प्रौढ़ता प्रकट करती है। इनके हृदय में प्रेम का समुद्र

लहरें मार रहा था। प्रेम की अटूट धारा जो क्षण भर पहले स्त्री की ओर बह रही थी, उसी को दूसरे ही क्षण में इन्होंने श्रीराम की ओर फेर दी, जो इनके जीवन के अन्तिम दम तक बड़े वेग से बहती रही। उस प्रेम की धारा ने तुलसीदास को अजर अमर कर दिया। कौन जानता था कि एक छोटी सी घटना से इनके जीवन का प्रवाह इस प्रकार बदल जायगा।

घर छोड़ने के पीछे एक बार स्त्री ने यह दोहा इनके पास लिख भेजा:—

कटि की खीनी कनक सी रहत सखिन सँग सोय।
मोहि फटे की डर नहीं अनत कटे डर होय॥

इसके उत्तर में गोसाईं जी ने लिखा:—

कटे एक रघुनाथ सँग बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस पतिनी के उपदेस॥

वृद्धावस्था में एक दिन तुलसीदास चित्रकूट से लौटते हुये बिना जाने अपने ससुर के घर टिके। इनकी स्त्री भी वृद्धा हो चुकी थी। उसने पहले तो उन्हें पहचाना नहीं, अतिथि-सत्कार के लिये चौका आदि लगा दिया। पीछे बात चीत होने पर उसने पहचाना कि ये मेरे पति हैं। उसकी इच्छा हुई कि मैं भी पति के साथ रहूँ। रात भर आगा पीछा सोच कर उसने सबेरे अपने को तुलसीदास के सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनाई। परन्तु गोसाईं जी ने अस्वीकार किया। इस अचानक भेंट का प्रभाव दोनों ओर कैसा पड़ा होगा, यह अनुमान करने पर बड़ा करुण जान पड़ता है। गोसाईं जी और उनकी स्त्री को अपनी युवा-

वस्था के उस एक दिन की घटना याद आई होगी जब उन दोनों का वियोग हुआ था।

गोसाईं जी काशी और अयोध्या में बहुत रहा करते थे। परन्तु मथुरा, वृंदाबन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथ जी और सोरों (शूकरक्षेत्र) में भी भ्रमण किया करते थे। काशी जी में इनके कई स्थान प्रसिद्ध हैं, जहाँ ये रहते थे।

अन्य साधु संतों की तरह इनके माहात्म्य की भी बहुत सी कथाएँ लोक में प्रसिद्ध हैं। कहा जाता कि हनुमानजी की कृपा से इनको श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन हुआ था।

काशी में टोडरमल्ल नाम के एक जमींदार से गोसाईं जी का बड़ा प्रेम था। उनके मरने पर इन्होंने ये दोहे कहे थे—

महतो चारो गाँव को मन को बड़ो महीप।
तुलसी या कलिकाल में अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को सिर धरि भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयननि सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥
राम धाम टोडर गये तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि संकोच॥

* * *

अकबर के प्रसिद्ध वज़ीर नवाब खानखाना (रहीम) से भी गोसाईं जी का बड़ा स्नेह था। आमेर के राजा मानसिंह भी इनका बड़ा आदर करते थे। कहते हैं कि ब्रज-भाषा के प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी तुलसीदास जी के सगे भाई थे। तुलसीदासजी से, सूरदासजी, नाभाजी और केशव दासजी से भी भेंट हुई थी, और मीराबाई के साथ जो पत्र

व्यवहार हुआ था, वह मीराबाई के चरित्र में लिखा गया है। इन बातों से प्रकट होता है कि तुलसीदासजी की कीर्ति उनके जीवन काल में ही चारों ओर फैल गई थी।

तुलसीदासजी ने इतने ग्रन्थ बनाए—

१—रामचरित मानस, २—कवित्त रामायण, ३—दोहावली, ४—गीतावली, ५—रामाज्ञ, ६—विनय पत्रिका, ७—बरवै रामायण, ८—रामलला नहछू, ९—वैराग्य संदीपनी, १०—कृष्ण गीतावली, ११—पार्वती मङ्गल, १२—राम सतसई, १३—रामशलाका, १४—कड़खा रामायण, १५—संकट मोचन, १६—छन्दावली, १७—हनुमद्बाहुक, १८—छप्पय रामायण १९—झूलना रामायण, २०—कुंडलिया रामायण, २१—जानकी मंगल।

इनमें कई एक ग्रन्थ नहीं मिलते। तुलसीदास जी के ग्रन्थों में रामचरित मानस सब से बड़ा और बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। भारत में अब तक इसकी करोड़ों प्रतियाँ छप चुकी हैं। यह एक ऐसा सर्वप्रिय ग्रन्थ है कि ग़रीब की झोपड़ी से लेकर राजा के महल तक इसकी पहुँच है। इस एक ग्रन्थ ने ही तुलसीदास जी को तब तक के लिये अमर कर दिया, जब तक पृथ्वी पर हिन्दू जाति और हिन्दी भाषा का अस्तित्व है। कौन कह सकता था कि एक गरीब के घर में उत्पन्न होकर, एक साधारण स्त्री द्वारा प्रताड़ित युवक इस असार संसार में अनंत काल के लिये अपनी कीर्ति ध्वजा स्थापित कर जायगा। हमने तुलसीदास जी के ग्रन्थों में से कुछ दोहे, चौपाई, बरवा, कवित्त, भजन आदि संग्रह कर दिये हैं, परन्तु इनकी कविता का पूरा आनन्द तो तभी मिलेगा जब

पूरा रामचरितमानस पढ़ा जाय। रामचरितमानस के समान भारत में और किसी ग्रन्थ का प्रचार नहीं है।

संवत् १६८० वि० श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदास ने असी और गंगा के संगम पर शरीर छोड़ा। उस समय का यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोरह सै असी असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥

मृत्यु के समय गोसाईं जी ने यह दोहा पढ़ा था—

रामनाम जस बरनि कै भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये अबहीं तुलसी सोन॥

राम का विवाह।

(रामायण से)

जनम सिंधु पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलङ्क।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रङ्क।
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई
कोक सोकप्रद पङ्कज द्रोही अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही
वैदेही मुख पटतर दीन्हे होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे
सियमुखछबि बिधु व्याजबखानी गुरु पहँ चले निसा बड़ि जानी
करि मुनिचरण सरोज प्रनामा आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा
बिगत निसा रघुनायक जागे बन्धु बिलोकि कहन अस लागे
उदउ अरुन अवलोकहु ताता पङ्कज कोक लोक सुखदाता
बोले लषन जोरि जुग पानी भुप्र प्रभावसूचक मृदु बानी
अरुनउदय सकुचे कुमुद उडुगन जोति मलीन
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भये नृपति बलहीन

नृप सब नखत करहिं उजियारी टारि न सकहिं चाप तम भारी
कमल कोक मधुकर खग नाना हरषे सकल निसा अवसाना
ऐसहि प्रभु सब भगत तुम्हारे होइहहिं टूटे धनुष सुखारे
उदय भानु बिनुश्रम तम नासा दुरे नखत जग तेज प्रकासा
रवि निज उदय ब्याज रघुराया प्रभु प्रताप सब नृपन्ह दिखाया
तव भुजबल महिमा उदघाटी प्रकटी धनु विघटन परिपाटी
बन्धु बचन सुनि प्रभु मुसकाने होइ शुचि सहज पुनीत नहाने
नित्य क्रिया करि गुरु पहं आये चरन सरोज सुभग सिरनाये
सतानन्द तब जनक बुलाये कौशिक मुनि पंह तुरत पठाये
जनक विनय तिन आनि सुनाई हर्षे बोलि लिये दोउ भाई

शतानन्द पद बन्दि प्रभु बैठे गुरु पहँ जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बुलाइ॥

सीय स्वयम्बर देखिय जाई ईस काहि धौं देइ बड़ाई
लषन कहा यश भाजन सोई नाथ कृपा तव जा पर होई
हर्षे सुनि सब मुनि बर बानी दीन्ह असीस सबहि सुखमानी
पुनि मुनि वृन्द समेत कृपाला देखन चले धनुष मखशाला
रङ्ग-भूमि आये दोउ भाई अस सुधि सब पुरबासिन पाई
चले सकल गृह काज बिसारी बालक युवा जरठ नर नारी
देखी जनक भीर भइ भारी सुचि सेवक सब लिये हंकारी
तुरत सकल लोगन पहं जाहू आसन उचित देहु सब काहू

कहि मृदु बचन बिनीत तिन बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥

राजकुँवर तेहि अवसर आये मनहुँ मनोहरता तन छाये
गुन सागर नागर बर बीरा सुन्दर श्यामल गौर शरीरा
राज समाज बिराजत रूरे उड़ गन महं जनु युग विधु पूरे
जिनके रही भावना जैसी प्रभु मूरति तिन देखी तैसी

देखहिं भूप महा रनधीर। मनहुँ वीर रस धरे शरीरा
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी मनहुँ भयानक मूरति भारी
रहे असुर छल छो.निप बेख। तिन प्रभु प्रकट कालसम देखा
पुरवासिन देखे दोउ भाई नरभूषन लोचन सुखदाई
नारि विलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृंगार धरि मूरति परम अनूप॥
विदुषन प्रभु विराटमय दीसा बहु मुख-कर-पग-लोचन सीसा
जनक जाति अवलोकहिं कैसे सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी सिसुसमप्रीति न जाइ बखानी
जोगिन्ह परम-तत्त्व-मय भासा सांत-सुद्ध-सम सहज प्रकासा
हरि भगतन देखे दोउ भ्राता इष्ट देव इव सब सुख दाता
रामहि चितव भाव जेहि सीया सो सनेह सुख नहि कथनीया
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ
जेहिविधि रहा जाहि जस भाऊ तेहि तस देखेउ कोसलराऊ
राजत राज समाज महं कोसल राज किसोर।
सुन्दर-स्यामल-गौर-तनु विस्व-विलोचन-चोर॥
सहज मनोहर मूरति दोऊ कोटि काम उपमा लघु सोऊ
सरद-चंद-निंदक मुख नीके नीरजनयन भावते जीके
चितवनि चारु मार-मद हरनी भावत हृदय जात नहि बरनी
कल कपोल स्रुतिकुंडल लोला चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला
कुमुद-बंधु कर निंदक हासा भृकुटी बिकट मनोहर नासा
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं कचबिलोकिअलिअवलिलजाहीं
पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई कुसुमकली बिच बीच बनाई
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ जनु त्रिभुवन सोभा की सीवाँ
कुंजर-मनि-कंठा कलित उरन्ह तुलसिका माल।
वृषभकंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधे कर सर धनुष बाम बर काँधे
पीत-जज्ञ-उपबीत सोहाये नखसिख मंजु महा छबि छाये
देखि लोग सब भये सुखारे इकटक लोचन टरत न टारे
हरषे जनक देखि दोउ भाई मुनि पद-कमल गहे तब जाई
करि बिनती निजकथा सुनाई रग अवनि सब मुनिहि देखाई
जहं जहं जाहिं कुँवरबर दोऊ तहं तहं चकित चितवसबकोऊ
निजनिजरुख रामहिंसब देखा कोउ न जान कछु मरमबिसेखा
भलि रचना मुनि नृपसन कहेऊ राजा मुदित महासुख लहेऊ

सब मचन्ह तें मंच इक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहं बैठारे महिपाल ॥

प्रभुहिं देख सब नृप हिय हारे जनु राकेस उदय भये तारे
अस प्रतीति सब के मन माहीं राम चाप तोरब सक नाहीं
बिन भंजेहु भव धनुष बिसाला मेलिहि सीय राम उर माला
अस बिचारि गवनहु घर भाई जस प्रताप बल तेज गवाँई
बिहँसे अपर भूप सुनि बानी जे अबिबेक अंध अभिमानी
तोरेहु धनुष ब्याहु अवगाहा बिनु तोरे को कुँअरि बियाहा
एक बार कालहु किन होऊ सियहित समरजितबहमसोऊ
यह सुनि अपर भूप मुसुकाने धरम सील हरि भगत सयाने

सीय बियाहब राम गरब दूरि करि नृपन्ह कर।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे ॥

वृथा मरहु जनि गाल बजाई मन मोदकन्हि कि भूख बुताई
सिख हमार सुनि परम पुनीता जगदंबा जानहु जिय सीता
जगत पिता रघुपतिहिं बिचारी भरि लोचन छबि लेहु निहारी
सुन्दर सुखद सकल गुनरासी ए दोउ बंधु संभु उर बासी
सुधासमुद्र समीप बिहाई मृगजल निरखि मरहु कत धाई
करहु जाइ जाकहँ जोइ भावा हम तौ आजु जनम फल पावा

अस कहि भले भूप अनुरागे रूप अनूप बिलोकन लागे
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना बरषहिं सुमन करहिं-कलगाना
आनि सुअवसर सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुंदर सकल सादर चलीं लेवाइ॥
सिय सोभा नहिं जाइ बखानी जगदंबिका रूप-गुन-खानी
उपमा सकल मोहि लघुलागीं प्राकृति नारि अंग-अनुरागी
सीय बरनि तेहि उपमादेई कुकवि कहाइ अजस को लेई
जौं पटतरिय तीय महँ सीया जग अस जुबतिकहाँकमनीया
गिरामुखर तनु अरध भवानी रतिअतिदुखितअतनुपतिजानी
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही कहिय रमासम किमि बैदेही
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई परम-रूप-मय कच्छप सोई
सोभा रजु मंदर सिंगारू मथइ पानिपंकज निज मारू
एहि बिधि उपजइ लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल॥
चली संग्र लइ सखी सयानी गावत गीत मनोहर बानी
सोह नवलतनु सुंदर सारी जगतजननिअतुलितछबिभारी
भूषन सकल सुदेस सुहाये अंग अंग रचि सखिन्ह बनाये
रंग भूमि जब सिय पगु धारी देखि रूप मोहे नर नारी
हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई बरषि प्रसून अपछरा गाई
पानि सरोज सोह जयमाला अवचककचितये सकल भुआला
सीय चकितचितरामहि चाहा भये मोहबस सबनरनाहा
मुनि समीप देखे दोउ भाई लगे ललकि लोचन निधि पाई
गुरु जन लाज समाज बड़ देखि सीय सकुचानि।
लगी बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहिं उर आनि॥
रामरूप अरु सिय छबि देखी नरनारिन्ह परिहरी निमेखी
सोचहिं सकलकहत सकुचाहीं विधिसनविनयकरहिंमनमाहीं

हरु विधि वेगि जनक जड़ताई मति हमार असि देहु सुहाई
बिनु बिचार पन तजि नरनाहू सीय राम कर करइ बियाहू
जग भल कहिहि भाव सब काहू हठ कीन्हे अंतहुँ उर दाहू
एहि लालसा मगन सब लोगू वर साँवरो जानकी जोगू
तब बंदी जन जनक बोलाये बिरदावली कहत चलि आये
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा चले भाट हिय हरष न थोरा
बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥
नृप-भुज बलविधु सिवधनुराहू गरुअ कठोर विदित सबकाहू
रावन बान महा भट भारे देखि सरासन गवहिँ सिधारे
सोइ पुरारि कोदंड कठोरा राज समाज आजु जेइ तोरा
त्रिभुवन जय समेत बैदेही बिनहि बिचार बरइ हठि तेही
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे भट मानी अतिसय मनमाषे
परिकर बाँधि उठे अकुलाई चले इष्टदेवन्ह सिर नाई
तमकिताकितकिसिवधनुधरहीं उठइ न कोटिभाँतिबल करहीं
जिन्ह के कछु बिचार मनमाहीं चाप समीप महीप न जाहीं
तमकि धरहि धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहि लजाइ।
मनहु पाइ भट बाहु बल अधिक अधिक गरुआइ॥
भूप सहस दस एकहि बारा लगे उठावन टरइ न टारा
डगइ न संभु सरासन कैसे कामी बचन सतीमन जैसे
सब नृप भये जाग उपहासी जैसे बिनु बिराग सन्यासी
कीरति विजय वीरता भारी चले चापकर बरबस हारी
श्रीहत भये हारि हिय राजा बैठे निजनिज जाइ समाजा
नृपन्ह बिलाेकि जनक अकुलाने बोले बचन रोष जनु साने
दीप दीप के भूपति नाना आये सुनि हम जो पन ठाना
देव दनुज धरि मनुज सरीरा बिपुल बीर आये रनधीरा

कुअँरि मनोहर विजयबड़ि कीरति अति कमनीय ।
पावनहार विरंचि जनु रचेउ न धनुदमनीय ॥
कहहु काहि यह लाभ न भावा काहु न संकर चाप चढ़ावा
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई तिल भरि भूमि नसके छुड़ाई
अब जनि कोउ माखइभटमानी वीर विहीन मही मैं जानी
तजहु आस निजनिज गृह जाहू लिखा न बिधि वैदेहि विवाहू
सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ कुअँरि कुआँरि रहइ का करऊं
जौं जनतेउं बिनुभट भुवि भाई तौ पन करि होतेउं न हँसाई
जनक बचन सुनि सब नरनारी देखि जानकिहि भये दुखारी
माखे लषन कुटिल भईं भौंहैं रदपट फरकत नयन रिसौंहैं
कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान ।
नाइ राम-पद-कमल सिर बोले गिरा प्रमान ॥
रघुबंसिन्ह मह जहँ कोउ होई तेहि समाज अस कहइ न कोई
कही जनक जसि अनुचितबानी बिद्यमान रघु-कुल-मनि जानी
सुनहु भानु-कुल-पंकज-भानू कहउं सुभाव न कछुअभिमानू
जौं तुम्हार अनुसासन पावउं कंदुक इव ब्रह्मांड उठावउ
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी सकउ मेरु मूलक इव तोरी
तव प्रताप महिमा भगवाना का बापुरा पिनाक पुराना
नाथ जानि अस आयसु होऊ कौतुक करउं बिलोकिय सोऊ
कमल नालजिमिचाप चढ़ावउ जोजन सत प्रमान लेइधावउं
तोरउं छत्रकदंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।
जौ न करउ प्रभु पद सपथ कर न धरउ धनु भाथ ॥
लषन सकोप बचन जब बोले डगमगानि महि दिग्गज डोले
सकल लोक सब भूप डेराने सियहिय हरष जनक सकुचाने
गुरुरघुपति सब मुनिमनमाहीं मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं
सयनहि रघुपति लषन निवारे प्रेम समेत निकट बैठारे

विश्वामित्र समय सुभ जानी बोले अति सनेह मय बानी
उठहु राम भञ्जहु भव चापा मेटहु तात जनक परितापा
सुनि गुरुबचन चरनसिरनावा हरष विषाद न कछु उर आवा
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये ठवनि जुवा मृगराज लजाये
उदित उदय-गिरि मञ्च पर रघुबर बाल पतङ्ग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृङ्ग ॥
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी वचन नखत अवली न प्रकासी
मानी महिप कुमुद सकुचाने कपटी भूप उलूक लुकाने
भये बिसोक कोक मुनि देवा बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा
गुरुपद बन्दि सहित अनुरागा राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा
सहजहिचले सकलजग स्वामी मत्त--मंजु---वर---कुञ्जर---गामी
चलत राम सब पुर-नर नारी पुलक-पूरि-तन भये सुखारी
बदि पितर सब सुकृत सँभारे जो कछु पुन्य प्रभाव हमारे
तो सिवधनु मृनाल की नाईं तोरहि राम गनेस गाेसाईं
रामहिं प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बालाइ ।
सीता मातु सनेह बस वचन कहइ बिलखाइ ॥
सखि सब कौतुक देखनिहारे जेउ कहावत हितू हमारे
काेउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं ए बालक अस हठ भल नाहीं
रावन बान छुआ नहि चापा हारे सकल भूप करि दापा
सो धनु राज-कुँअर-कर देहीं बाल मराल कि मंदर लेहीं
भूप सयानप सकल सिरानी सखिविधिगतिकछुजातिजानी
बाला चतुर सखी मृदु बानी तेजवंत लघु गनिय न रानी
कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा सोखेउ सुजस सकल संसारा
रबि मंडल देखत लघु लागा उदय तासु त्रिभुवन तम भागा
मंत्र परम लघु जासु बस विधि हरि हर सुर सर्ब ।
महा मत्त गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्ब ॥

काम कुसुम-धनु-सायकलीन्हें सकलभुवन अपने बस कीन्हें
देवि तजिय संसय अस जानी भंजब धनुष राम सुनु रानी
सखी बचन सुनि भइ परतीती मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती
तब रामहिं बिलोकि वैदेही सभयहृदय विनवत जेहि तेही
मनहीं मन मनाय अकुलानी होउ प्रसन्न महेस भवानी
करहु सुफल आपन सेवकाई करि हित हरहु चाप गरुआई
गन नायक वर दायक देवा आजु लगे कीन्हेउँ तव सेवा
बार बार सुनि बिनती मोरी करहु चाप गरुता अति थोरी

देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली शरीर॥

नीके निरखि नयनभरि सोभा पितुपनसुमिरिबहुरि मन छोभा
अहह तात दारुन हठ ठानी समुझत नहिं कछुलाभ न हानी
सचिवसभय सिखदेइ न कोई बुधसमाज बड़ अनुचित होई
कहँधनुकुलिसहु चाहिकठोरा कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा
बिधिकेहिभाँति धरउँ उरधीरा सिरिस-सुमन-कन बेधिय हीरा
सकल सभा कै मति भइ भोरी अब मोहि संभु-चाप गति तोरी
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी
अति परिताप सीय मन माहीं लव निमेष जुग सय सम जाहीं

प्रभुहि चितइ पुनि चितइमहि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज-मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥

गिराअलिनि मुखपंकज रोकी प्रगट न लाज निसा अवलोकी
लोचन जल रह लोचन कोना जैसे परम कृपन कर सोना
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी धरिधीरज प्रतीति उर आनी
तनमन बचन मोर पन साचा रघुपतिपदसरोज चितु राचा
तौ भगवान सकल उर वासी करिहहिं मोहिं रघुबर कै दासी
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू

प्रभु तन चितइ प्रेमपन ठाना कृपा निधान राम सब जाना
सियहिंबिलोकितकेउ धनुकैसे चितव गरुड़लघुब्यालहि जैसे
लषन लखेउ रघुबंस-मनि ताकेउ हर कोदण्ड।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मण्ड॥
दिसिकुञ्जरहु कमठ अहिकोला धरहु धरनि धरिधीर न डोला
राम चहहिं सङ्कर धनु तोरा होहु सजग सुनि आयसु मोरा
चाप समीप राम जब आये नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाये
सब कर संसय अरु अज्ञानू मंद महीपन्ह कर अभिमानू
भृगुपति केरि गरब गरुआई सुरमुनिवरन्ह केरि कदराई
सियकर सोच जनक पछितावा रानिन्ह करदारुन-दुख दावा
संभु चाप बड़ बोहित पाई चढ़े जाइ सब संग बनाई
राम-बाहु-बल सिंधु अपारू चहत पार नहिं कोउ कनहारू
राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेखि॥
देखी विपुल बिकल बैदेही निमि षविहात कलपसम तेही
तृषित बारिबिनु जो तनुत्यागा मुये करइ का सुधा तड़ागा
का वरषा जब कृषी सुखाने समय चूकि पुनि का पछिताने
अस जियजानि जानकी देखी प्रभुपुलके लखि प्रीति बिसेखी
गुरुहिं प्रनाम मनहिमन कीन्हा अतिलाघव उठाइ धनु लीन्हा
दमकेउदामिनिजिमि जबलयऊ पुनि धनुनभमंडल सम भयऊ
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े काहु न लखा देख सब ठाढ़े
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा
भरि भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

संकर चाप जहाज सागर रघुबर-बाहु-बल ।
बूड़े सकल समाज चढ़े जो प्रथमहिं मोह बस ॥

बरवा रामायण

कुंकुम तिलक भाल श्रुति कुंडल लोल ।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल ॥ १ ॥
केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥ २ ॥
सम सुवरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ॥ ३ ॥
सिअ मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय ।
निसि मलीन वह निसि दिन यह विगसाय ॥ ४ ॥
चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ॥ ५ ॥
सिअ तुअ अंग रंग मिलि अधिक उदोत ।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ॥ ६ ॥
का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि ।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥ ७ ॥
गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह ।
देखहु आपनि मूरति सियकै छाँह ॥ ८ ॥
स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम ।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम ॥ ९ ॥
बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाय ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहि बुताय ॥ १० ॥
डहकनि है उजियरिया निसि नहिं घाम ।
जगत जरत अस लागै मोहिं बिनु राम ॥ ११ ॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ ॥ १२ ॥
जान आदि कवि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत काल तें भये ऋषि राउ ॥ १३ ॥
केहि गनती महँ गनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसी दास ॥ १४ ॥
नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनंदन तुलसिहिं देहु ॥ १५ ॥

तुलसी सतसई

आसन दृढ़ आहार दृढ़ सुमति ज्ञान दृढ़ होइ।
तुलसी बिना उपासना बिन दूलह की जोइ ॥ १ ॥
रामचरण अवलंब बिनु परमारथ की आस।
चाहत बारिद बुंद गहि तुलसी उड़न अकास ॥ २ ॥
स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एकही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥ ३ ॥
जहाँ राम तहँ काम नहिँ जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिँ रवि रजनी इक ठाम ॥ ४ ॥
संपति सकल जगत्त की स्वासा सम नहिँ होइ।
सो स्वासा तजि राम पद तुलसी अलग न खोइ ॥ ५ ॥
तुलसी सो अति चतुरता राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन हरन को गनिका परम प्रवीन ॥ ६ ॥
स्वामी होनो सहज है दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को लागी चरन कपास ॥ ७ ॥
तुलसी सब छल छाँडि कै कीजै राम सनेह।
अंतर पति सों है कहा जिन देखी सब देह ॥ ८ ॥

कोटि विघ्न संकट विकट कोटि सत्रु जौ साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकै जो सुदिष्ट रघुनाथ ॥ ९ ॥
लगन महूरत योग बल तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने सबै दाहिने ताहि ॥ १० ॥
ऊँची जाति पपीहरा पियत न नीचो नीर॥
कै याँचै घनश्याम सों कै दुख सहै शरीर ॥ ११ ॥
होइ अधीन याँचै नहीं सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनहिं को बारिद बिनु देइ ॥ १२ ॥
मान राखिबो माँगिबो पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै जब चातक मत लेहु ॥ १३ ॥
गङ्गा यमुना सरसुती सात सिंधु भर पूर।
तुलसी चातक के मते बिन स्वाती सब धूर ॥ १४ ॥
एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश चातक तुलसीदास ॥ १५ ॥
राम राम रटिबो भलो तुलसी खता न खाय।
लरिकाईं ते पैरिबो धोखेहुँ बूड़ि न जाय ॥ १६ ॥
तुलसी बिलम्ब न कीजिये भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात हैं स्वाँस सारसो तीर ॥ १७ ॥
असन बसन सुत नारि सुख पापिहुँ के घर होइ।
संत समागम रामधन तुलसी दुर्लभ दोइ ॥ १८ ॥
तुलसी मीठे बचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
बसी करन यह मंत्र हैं परिहरु बचन कठोर ॥ १९ ॥
तुलसी अपने राम कहँ भजन करहु निरसंक।
आदि अंत निर्वाहिबो जैसे नव को अंक ॥ २० ॥
तुलसी राम सनेह करु त्याग सकल उपचारु।
जैसे घटत न अंक नव नव के लिखत पहारु ॥ २१ ॥

तुलसी संत सुअंबु तरु फूलि फलहिँ पर हेत।
इतते ये पाहन हनत उतते वे फल देत ॥ २२ ॥
गो धन, गज धन, बाजि धन और रतन धन खान।
जब आवत संतोष मन सब धन धूरि समान ॥ २३ ॥
काम क्रोध मद लोभ की जौलों मन में खान।
तौलों पंडित मूरखौ तुलसी एक समान ॥ २४ ॥
प्रेम बैर अरु पुण्य अघ यश अपयश जय हान।
बात बीज इन सबन को तुलसी कहहिँ सुजान ॥ २५॥
तौ लगि योगी जगत गुरु जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी जग गुरु योगी दास ॥ २६ ॥
उरग तुरँग नारी नृपति नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित इनहिँ न पलटत बार ॥ २७ ॥
दुर्जन दर्पन सम सदा करि देखो हिय गौर।
सन्मुख की गति और है विमुख भये पर और ॥ २८ ॥
सिष्य सखा सेवक सचिव सुतिय सिखावनु साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय पर मनरञ्जन पाँच ॥ २९ ॥
दीरघ रोगी दारिदी कटु बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान जौ तऊ त्यागिबे योग ॥ ३० ॥
बहु सुत बहु रुचि बहु वचन बहु अचार ब्यवहार।
इनको भलो मनाइबो यह अज्ञान अपार ॥ ३१ ॥
सहि कुवास साँसति असम पाय अनट अपमान।
तुलसी धर्म न परिहरहिँ ते वर सन्त सुजान ॥ ३२ ॥
तुलसी साथी विपत के विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत राम भरोसो एक ॥ ३३ ॥
तुलसी असमय के सखा साहस धर्म विचार।
सुकृत सील सुभाव ऋजु राम चरन आधार ॥ ३४ ॥

राग रोष गुन दोष को साखी हृदय सरोज।
तुलसी विकसत मित्र लखि सकुचत देखि मनोज॥ ३५॥
खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नयपाल।
कुनय बालि रावण घरहिँ सुखद बंधु किय काल॥ ३६॥
तुलसी जो कीरति चहहिँ पर कीरति को खोइ।
तिनके मुँह मसि लागि हैं मुये न मिटि हैं धोइ॥ ३७॥
नीच चंग सम जानिये सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरिपरत खैंचत चढ़त अकास॥ ३८॥
राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार॥ ३९॥
साहिब ते सेवक बड़ो जो निज धर्म सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि नाँघि गये हनुमान॥ ४०॥
सूर समर करनी करहि कहि न जनावहि आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहि प्रलाप॥ ४१॥
जूझे तें भल बूझिबो भली जीति ते हारि।
डहके ते डहकाइबो भलो जु करिय बिचार॥ ४२॥
मंत्री गुरु अरु वैद्य जो प्रिय बोलहि भय आस।
राज धर्म तन तीन कर होइ बेगिही नास॥ ४३॥
हृदय कपट बर बेष धरि बचन कहैं गढ़ि छोलि।
अबके लोग मयूर ज्यों क्यों मिलिये मन खोलि॥४४॥
अमिय गारि गारेउ गरल नारि करी करतार।
प्रेम बैर की जननि युग जानहिँ विधि न गँवार॥४५॥
तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू की बासु॥ ४६॥
मुखिया मुख सो चाहिये खान पान को एक।
पालै पोसै सकल अँग तुलसी सहित विवेक॥ ४७॥

हित पुनीत सब स्वारथहि अरि असुद्ध बिनु जाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़ ॥ ४८ ॥
तुलसी पावस के समै धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं हमैं पूछि हैं कौन ॥ ४९ ॥
तुलसी हमसों राम सों भलो मिलो है सूत।
छाँड़े बनै न सँग रहै ज्यों घर माँहि कपूत ॥ ५० ॥
व्याधा बधो पपीहरा परो गंग जल जाय।
चोंच मूँदि पीवै नहीँ जल पिये मो पन जाय ॥ ५१ ॥
बार बार बर माँगहूँ हरषि देहु श्रीरङ्ग।
पद सरोज अनपायिनी भक्ति सदा सत्संग ॥ ५२ ॥
सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अङ्ग।
तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्सङ्ग ॥ ५३ ॥
तुलसी रा के कहत ही निकसत पाप पहार।
फिरि भीतर आवत नहीं देत मकार किवार ॥ ५४ ॥
तुलसी काया खेत है मनसा भये किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज हैं बुवै सो लुनै निदान ॥ ५५ ॥
आवत ही हर्षे नहीं नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये कंचन बरसे मेह ॥ ५६ ॥
तुलसी कबहुँ न त्यागिये अपने कुल की रीति।
लायक ही सो कीजिये ब्याह बैर अरु प्रीति ॥ ५७ ॥
तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।
आप न आवे ताहि पै ताहि तहाँ लै जाय ॥ ५८ ॥
जगते रहु छत्तीस ह्वै रामचरन छत्तीन।
तुलसी देखु विचारि हिअ है यह मतौ प्रवीन ॥ ५९ ॥
रैन को भूषन इन्दु है दिवस को भूषन भान।
दास को भूषन भक्ति है भक्ति को भूषन ज्ञान ॥ ६० ॥

ज्ञान को भूषन ध्यान है ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांति पद तुलसी अमल अदाग ॥ ६१ ॥
तुलसी मिटै न मोहतम किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं बिनु रवि कुलरवि राम॥६२॥
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै परसै बिना निकेत ॥ ६३ ॥
सोई ज्ञानी सोइ गुनी जन सोइ दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई राग द्वेष की हानि ॥ ६४ ॥

विनय पत्रिका

१

गाइये गनपति जगबंदन सङ्करसुवन भवानीनंदन
सिद्धिसदनगजबदन बिनायक कृपासिंधु सुंदर सब लायक
मोदक प्रिय मुद मंगल-दाता विद्या वारिधि बुद्धि विधाता
माँगत तुलसिदास कर जोरे बसहिं रामसियमानसमोरे

२

बावरो रावरो नाह भवानी
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी
निज घर की बर बात बिलोकहु हो तुम परम सयानी
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी
प्रेम प्रसंसा विनय ब्यंग जुत सुनि बिधि की बर बानी
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी ॥

३

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से तोसे न वसीले॥
तेरे देखत सिंह के सिसु-मेढ़क लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दस कन्ध के भये बन्धन ढीले।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्बगहीले॥
सेवक को परदा फटै तुम समरथ सीले।
अधिक आपु ते आपनो सुनि मान सहीले॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुहीले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले॥

४

श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरन भव भय दारुनं।
नव कंज लोचन कंजमुख करकंज पद कंजारुनं॥
कन्दर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरं।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीनबन्धु दिनेस दानव दैत्यवंस निकंदनं।
रघुनन्द आनँद कन्द कौसलचन्द दसरथ नन्दनं॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अङ्ग विभूषनं।
आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खर दूषनं॥
इमि बदत तुलसीदास शंकर शेष मुनि मनरंजनं।
मम हृदय कंज निवास करु कामादि खलदल-गंजनं॥

५

मेरो मन हरि हठ न तजै

निस दिन नाथ देउँ सिख बहु विधि करत सुभाव निजै।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै॥

ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै ॥
लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों जहँ तहँ सिरापदत्रान बजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥
हौं हारयों करि जतन विविध विध अतिसय प्रबल अजै।
तुलसीदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥

६

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं ॥
पायों नाम चारु चिन्तामनि उर करते न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

७

ऐसे राम दीन-हितकारी।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी ॥
साधन हीन दीन निज अघ बस सिला भई मुनि नारी।
गृहते गवनि परसि पद पावन घोर सापते तारी ॥
हिंसारत निषाद तामस वपु पसु समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस नहिँ कुल जाति विचारी ॥
यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाइ अतिभारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गये भय टारी ॥
बिहँग योनि आमिष अहार-पर गीध कौन व्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥
अधम जाति सवरी जोषित जड़ लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ॥
कपि सुग्रीव बन्धु भय व्याकुल आयो सरन पुकारी।

सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी ॥
रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यों भुजा पसारी ॥
असुभ होइ जिनके सुमिरेते बानर रीछ बिकारी।
वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिनकी तुम विपति निवारी
कलि मल ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी ॥

८

मन पछतैहै अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम बचन अरु हीते ॥
सहस बाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबहीते।
अन्तहुँ तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबहीते ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते ॥

गीतावली

१

पौढ़िये लाल पालने हौं झुलावौं।

बाल विनोद मोद मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहिवे कहुँ मति मृगनयनि बुलावौं ॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चित लावौं ॥

२

जागिये कृपानिधान जानिराय रामचन्द्र
जननि कहै बारबार भोर भयो प्यारे।
राजिव लोचन बिसाल प्रीति वापिका मराल
ललित बदनकमल उपर मदन कोटि वारे॥
अरुनउदित विगत सर्वरी ससांक किरिनिहीन
दीन दीप ज्योति मलिन दुति समूह तारे।
मनहु ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भौबिलास
आस त्रास तिमिरतोम तरनि तेज जारे॥
बोलत खगनिकरमुखर मधुर करि प्रतीतसुनहु
श्रवन प्रान जीवन धन मेरे तुम वारे।
मनहु बेद बंदी मुनिवृंद सूत मागधादि
बिरुद बदत जय जय जय जयति कैटभारे॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल
भागे जंजाल विपुल दुख कदंब टारे।
तुलसिदास अति अनंद देख के मुखारबिंद
छूटे भ्रम फंद परम मंद द्वंद भारे॥

३

जननी निरखत बाल धनुहिंआँ।
बार बार उर नयननि लावति प्रभुजुकी ललित पनहिआँ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सकारे।
उठहु तात बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे॥
कबहुँ कहत बड़ वार भई ज्यों जाहु भूप पै भैया।
बन्धु बोलि जेइयै जो भावै गई नेछावरि मैया॥
कबहुँ समुझि बन गमन राम को रहि चकि चित्र लिखीसी।
तुलसिदास या समय कहेते लागति प्रीति सिखीसी॥

४

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब अइहैं मेरे बाल कुशल घर कहहु काग फुरि बाता ॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बुलाइ पाय परि पूछति प्रेम मगन मृदुबानी ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते समाचार लै आयौ ।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मानों मीन मरत जल पायौ ॥

कृष्ण गीतावलि

१

मोकहँ झूँठहिं दोस लगावहिं ।
मैय्या इनहिं बानि पर गृह की नाना युक्ति बनावहिं ॥
इन्ह के लिये खेलिबो छाँड्यो तऊ न उबरन पावहिं ।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उलहनों आवहिं ॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस यहि करि उठि धावहिं।
करहिं आपु शिर धरहिं आनके बचन बिरंचि हरावहिं ॥
मेरी टेव बूझ हलधर सों संतत संग खेलावहिं ।
जे अन्याउ करहिं काहू को ते शिशु मोहि न भावहिं ॥
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहि ।
बाल गोपाल केलि कल कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं ॥

२

अबहिं उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई ।
सुनुमैय्या तेरीसौंकरो याकी टेव लरन की सकुच बेचेसि खाई॥
या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्याई ।
मुँह लाए मूड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनितोहिं सूधी करि पाई ॥

३

छाड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।

ऐहैं देखु कालि तेरे वै ब्याह कि बात चलाई॥
डरि हैं सासु ससुर चोरी सुनि हँसि हैं नई दुलहिआ सुहाई॥
उबटि नहाहु गुहौं चोटिआ बलि देखि भलो बर करहिं बड़ाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै भइ बड़िबार कालि तो न आई।
जब सोइबो तात यौं हाँ कहि नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोरभयो भँगुली दै मुदित महर लखि अतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जान तुलसीप्रभु सकुचि लगे जननीउर धाई॥

४

हरि को ललित बदन निहारु।

निपटहीं डाटति निठुर ज्यौं लकुट करते डारु॥
मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु।
श्याम सारस मगन मनो शशि श्रवत सुधा सिंगारु॥
सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपो वारु।
मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु॥
कान्ह हूँ पर सतर भौंहैं महरि मनहिं विचारु।
दासतुलसी रहति क्यों रिस निरखि नन्दकुमारु॥

५

देखु सखी हरि बदन इन्दु पर

चिक्कनकुटिलअलकअवली छबि कहि न जाय शोभाअनूपबर॥
बालभुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रही घेरिरसजानि सुधाकर।
तजि न सकहि नहिंकरहिं पान कहो कारन कौन विचारि डरहिउर
अरुनबनजलोचन कपोलसुभश्रुति मंडित कुंडल अतिसुन्दर।
मनहुसिंधु निज सुतहि मनावन पठयेयुगल बसीठि बारिचर॥

नँदनंदन मुखकी सुन्दरता कहि न सकहिं श्रुति शेष उमा वर।
तुलसीदास त्रिलोक्य विमोहन रूप कपटनर त्रिविधिशूलहर॥

६

गोपाल गोकुल बल्लभी प्रिय गोप गोसुत बल्लभं।
चरणारबिन्दमहं भजे भजनीय सुरनर दुर्लभं॥
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क बसन किशोर मूरति भूरि गुन करुनाकरं॥
सिर केकिपच्छ बिलोल कुंडल अरुन बनरुह लोचनं।
गुंजावतंस विचित्र सब अँग धातु भव भय मोचनं॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयंक समाननं।
अपहरत तुलसीदास त्रास बिहार वृन्दा काननं॥

कवितावली

१

अवधेशके द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौंसोच विमोचनको ठगि सी रही जे न ठगे धिकसे॥
तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातकसे।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥

२

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग को दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिन ज्यों किलकैं कल बाल विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मनमन्दिर में बिहरैं॥

३

वर दंत की पंगति कुन्द कली अधराधर पल्लव बोलन की।
चपला चमकै घन बीच जुगै छवि मोतिन माल अमोलन की॥

घुघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्राण करैं तुलसी बलिजाऊँ लला इन बोलन की॥

४

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग बास के रूप ज्यों पंथ के साथ ज्यौं लोगलुगाई॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सोहाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउकी नाई॥

५

पुरते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पटु सूखि गए मधुराधर वै॥
फिर बूझतिहैं चलनोऽबकितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अतिचारुचलीजलच्वै॥

६

जल को गये लक्खन हैं लरिका परिखो पिय छाँह घरीकहु ठाढ़े।
पोंछ पसेउ बयारि करौं अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥
तुलसी रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि विलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तन वारिविलोचन बाढ़े॥

७

सीस जटा उर बाहु विशाल विलोचन लाल तिरीछीसी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिबार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम वधू सिय सों कहो साँवरो सो सखि रावरो को है॥

८

कतहुँ विटप भूधर उपारि अरि सैन बरष्षत।
कतहुँ बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करष्षत॥

चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
विकट कटक विद्दरत वीर वारिद जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि महि जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवननन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

६

खेती न किसान को भिखार को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी। जीविका बिहीन लोग सिद्यमान सोचबस कहै एक एकन सों कहाँ जाय का करी। वेदहुँ पुरान कही लोकहूँ बिलोकियत साँकरे समय के राम रावरे कृपा करी। दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबन्धु दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी॥

मीराबाई

मीराबाई जोधपुर मेड़ता के राठौर रतनसिंह जी की एकलौती बेटी थीं। इनका जन्म कुड़की नामक गाँव में, संवत् १५५५ वि० और सं० १५६० वि० के बीच में हुआ था। इनका विवाह उदयपुर के सीसोदिया राजकुल में महाराना साँगाजी के कुँअर भोजराज के साथ सं० १५७३ में हुआ था। इनका देहान्त कब हुआ—इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। स्वर्गवासी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनुमान है कि मीराबाई ने संवत् १६२० और १६३० वि० के बीच शरीर छोड़ा।

विवाह होने पर मीराबाई चित्तौड़ गईं। वहाँ विवाह होने से दस बरस के भीतर ही ये विधवा हो गईं। परन्तु इनको इस बात का कुछ भी शोक न हुआ। क्योंकि इनके

हृदय में गिरिधर गोपाल के लिये बड़ी भक्ति थी और ये, रात दिन गिरिधर नागर के प्रेम में ही मतवाली रहती थीं। अपने कुल की लज्जा छोड़ कर जब ये बेधड़क साधु सेवा करने लगीं, तब यह बात इनके देवर विक्रमाजीत को, जो महाराना रतनसिंह के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे थे बहुत खटकी। उन्होंने मीरा को बहुत समझाया, और चम्पा और चमेली नाम की दो दासियाँ इस अभिप्राय से मीरा के पास रक्खीं कि वे साधु संगति की ओर से मीरा का चित्त हटाती रहें। परन्तु मीरा की संगति से उन दोनों दासियों पर भी भक्ति का रंग चढ़ गया। तब राना ने अपनी सगी बहन ऊदा को मीरा के पास समझाने के लिये भेजा। रन्तु मीरा अपने प्रण से नहीं टली, उलटे ऊदा का ही चित्त मीरा के प्रेम पर आसक्त होगया। वह मीरा की चेली हो गई। तब राणा ने मीरा को विष का प्याला भेजा। मीरा ने उसे भगवान का चरणामृत समझ कर पी लिया। कहते हैं कि उस विष का मीराबाई पर कुछ भी असर न हुआ। इतने पर भी जब राणा ने नहीं माना और वे बराबर उपाधि करते रहे, तब मीरा ने घबड़ा कर गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिख कर भेजा—

श्री तुलसी सुख निधान दुख हरन गुसाँईं।
बारहिं बार प्रनाम करूँ अब हरो सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाईं॥

मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई ।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई ॥

इसके उत्तर में तुलसी दास ने यह लिख भेजाः—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रहलाद,बिभीषण बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनिता, भये सब मङ्गलकारी ॥
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँख जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित, पूज्य प्रानतें प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद एही मतो हमारो ॥

इस उत्तर के पाने पर मीराबाई चित्तौड़ छोड़ कर रात के समय मेड़ता चली आईं । वहाँ भी उनका मन न लगा तब वृंदावन चली गईं। वहाँ कुछ समय रह कर फिर द्वारका चली गईं । और अन्त में वहीं उन्होंने प्राण भी त्याग किया ।

मीराबाई के हृदय में अगाध प्रेम था। उनके पदों से उनकी हार्दिक भक्ति प्रकट होती है ।

मीराबाई की कविता राजपूतानी बोली मिश्रित हिन्दी भाषा में है । हम यहाँ उनके कुछ पद उद्धृत करते हैं :—

घड़ी एक नहिं आवड़े तुम दरसण बिन मोय ।
तुमहो मेरे प्राण जी कासूँ जीवण होय ॥
धान न भावै नींद न आवै विरह सतावे मोय ।
घायल सी घूमत फिरूँ रे मेरा दरद न जाणे कोय ॥
दिवस तो खाय गमायोरे रैण गमाई सोय ।
प्राण गमायो झूरताँ रे नैण गमाई रोय ॥

जो मैं ऐसा जाणती रे प्रीति किये दुख होय।
नगर ढंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय॥
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ ऊबी मारग जोय।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे तुम मिलियाँ सुख होय॥ १॥
हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय॥
सूली ऊपर सेज हमारी किस विध सोणा होय॥
गगन मंडल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होय॥
घायल की गति घायल जानै की जिन लाई होय॥
जौहरी की गति जौहरी जानै की जिन जौहर होय॥
दरद की मारी बन बन डोलूँ वैद मिल्या नहिं कोय॥
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी जब वैद सँवलिया होय॥ २॥
बंसी वारो आयो म्हारे देस थाँरी साँवरी सुरत वालीवैस॥
आऊं आऊं कर गया साँवरा कर गया कौल अनेक।
गिणते गिणते घिस गईं उँगली घिस गई उंगली की रेख॥
मैं बैरागिणि आदि की थांरे म्हारे कद को सनेस।
बिन पाणी बिन साबुन साँवरा हुइ गई धुई सपेद॥
जोगिण हुई जंगल सब हेरूँ तेरा नाम न पाया भेस।
तेरी सुरत के कारणे धर लिया भगवा भेस॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै घूँघर वाला केस।
मीरा को प्रभु गिरिधर मिल गये दूना बढ़ा सनेस॥ ३॥
राम मिलण रो घणो उमावो नित उठ जोऊं बाटड़ियाँ।
दरसण बिन मोहिं पल न सुहावै कल न पड़त हैं आँखड़ियाँ॥
तलफ तलफ के बहु दिन बीते पड़ी बिरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो वेगि दया कर साहिब मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ॥
नैण दुखी दरसण को तिरसे नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
रात दिवस यह आरत मेरे कब हरि राखे पासड़ियाँ॥

लगी लगन छूटण की नाहीं अब क्यों कीजै आटड़ियाँ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर पूरो मन की आसड़ियाँ॥ ४॥

पायो जी, मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवे दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरख हरख जस गायो॥ ५॥

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनी मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधा रस मुरली राजित उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटि तटि सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥ ६॥

करम गत टारे नाहि टरे।
सतबादी हरिचँद से राजा नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु कुंती द्रोपती हाड़ हिमालय गरे॥
जज्ञ किया बलि लेण इंद्रासन सो पाताल धरे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर विष से अमृत करे॥ ७॥

मेरे तो एक राम नाम दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोडया बंधु छोडया छोडया सगा सोई।
साध संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
प्रेम नीर सींच सींच विष बेल धोई॥
दधिमथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्याल्यो भेज्यो पीय मगन होई॥

अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई।
मीरा राम लगण लागी होणी होय सो होई ॥ ८ ॥
मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥
साँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय ॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अँचाय ॥
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय ॥
मीरा के प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय ॥ ९ ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी का असली नाम मुहम्मद था। मलिक इनकी उपाधि थी। और जायस में रहने के कारण लोग इनको जायसी कहते थे। जायस रायबरेली जिले में एक बड़ा क़सबा और रेल का स्टेशन है। जायसी के जन्म और मरण की तिथि का ठीक ठीक पता नहीं चलता। इनकी क़ब्र अभी तक अमेठी के महल के सामने बनी हुई है।

जायसी ने दो पुस्तकें पद्य में लिखीं, एक पद्मावत और दूसरी अखरावट। पद्मावत में रानी पद्मावती की कहानी बड़ी कुशलता से लिखी गई है। यद्यपि उसकी भाषा जायस के आस पास की देहाती है, परन्तु उसमें रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि का बहुत सुन्दर समावेश हुआ है। सारी

कथा दोहे चौपाई में है। मुसलमान होने पर भी प्रसंग के अनुसार हिन्दू देवताओं के प्रति भक्ति का वर्णन करने में जायसी ने बड़ी उदार हृदयता का परिचय दिया है। एक मुसलमान के द्वारा हिन्दी भाषा की ऐसी सेवा होनी बड़े हर्ष की बात है।

हिजरी सन् ६२७ में पद्मावत लिखी गई। अखरावट पद्मावत के बाद बना। अखरावट में क से लेकर प्रायः सभी अक्षरों पर कविता की गई है। इसमें ईश्वर की स्तुति और संसार की असारता बतलाई गई है।

पद्मावत की कविता का कुछ नमूना हम आगे प्रस्तुत करते हैं—

राजा का स्वर्गवास

तौलहि श्वास पेट महँ अही जौलहि दशा जीउकी रही
काल आइ देखलाई साँटी उठ जिय चला छाँड़के माटी
काकर लोग कुटुम घर बारू काकर अर्थ द्रव्य संसारू
वही घड़ी सब भयो परावा आपन सोइ जो परसा खावा
रहि जे हितू साथ के नेगी सबै लागि काढ़न तेहि बेगी
हाथझार जस चले जुवारी तजा राज ह्वै चला भिखारी
जब लग जीउ रतन सब काहा भा बिन जीव न कौड़ी लाहा
गढ़सौंपा तेहिं बादल गये टेकत बसुदेव।
छोड़ी राम अयोध्या जो भावै सो लेव॥
पद्मावति पुनि पहिर पटोरा चली साथ पियके ह्वै जोरा
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई पूनो शशि सो अमावस भई
छोरे केश मोति लट छूटी जानो रयनि नखत सब टूटी
सेंदुर परा जो शीस उघारी आग लाग चहि जग अँधियारी

यही दिवस हौं चाहत नाहाँ चलो साथ पिय दै गलबाहाँ
सारस पँख नहिं जिये निरारे हौं तुम बिन का जियौं पियारे
न्योछावर कै तन छहराऊँ छार होउं सँग बहुर न आऊँ
दीपक प्रीति पतंग ज्यों जन्म निवाह करेउं।
न्योंछावर चहुँ पास ह्वै कंठ लाग जिय देउं॥

पद्मावत का सती होना

नागमती पद्मावत रानी दोउ महासत सती बखानी
दोउ सौत चढ़ खाट जो बैठी औ शिवलोक परातहँ दीठी
बैठो कोइ राज औ पाटा अन्त सबै बैठे पुनि खाटा
चन्दन अगर काढ़सर साजा औ गति देय चले लै राजा
बाजन बाजहि होय अगोता दोउ कन्तलै चाहै सोता
एक जो बाजा भयो विवाहू अब दुसरे है और निबाहू
जियत जलैं जो कन्त की आसा मुये रहस बैठे इक पासा
आज सूर दिन अथयो आज रयनि शशि बूड़।
आज नाथ जिय दीजिये आज अगिन हम जूड़॥

सर रच दान पुण्य बहु कीन्हा सात बार फिर भाँवर लीन्हा
एक जो भाँवर भयो बियाही अब दूसर ह्वै गाहन जाही
जियत कन्त तुम हम गल लाई मुये कण्ठ नहिं छाड़हु साईं
लै सर ऊपर खाट बिछाई पौढ़ी दोउ कन्त गल लाई
और जो गाँठ कन्त तुम जोरी आदि अन्त लहि जाय न छोरी
यह जग काह जो अथहि न याथी हम तुम नाह दोहू जग साथी
लागी कण्ठ अंग दै होरी छार भई जर अङ्ग न मोरी
राती पिय के नेह की स्वर्ग भयो रतनार।
जो रे उवा सो अथवा रहा न कोइ संसार॥

वै सहगवन भई जिय आई बादशाह गढ़ छेंका आई
तबलग सो अवसर ह्वै बीता भये अलोप राम औ सीता
आय शाह जो सुना अखारा ह्वै गइ रात दिवस उजियारा
छार उठाय लीन इक मूठी दीन्ह उड़ाय पिरथवी झूठी
सगरे कटक उठाइ माटी पुल बाँधा जहँ जहँ गढ़ घाटी
जौ लहि उपर छार नहिं परै तौ लहि यह तृष्णा नहिं मरै
भा दहवा भा जूझ असूझा बादल आय पँवर पर जूझा

जून्हर भईं सब स्त्री पुरुष भये संग्राम।
बादशाह गढ़ चूरा चितौर भा इसलाम॥

मैं यह अर्थ पण्डितन बूझा कहा कि हम कुछ और न सूझा
चौदह भुवन जोहत उपराहीं सो सब मानुष के घट माहीं
तन चितौर मन राजा कीन्हा हियसिंहल बुधिपद्मिनि चीन्हा
गुरू सुवा जेहि पंथ दिखावा बिनगुरुजगतसो निरगुनपावा
नागमती यह दुनिया धन्धा बाचा सोई न यह चितबन्धा
राघव दूत सोई शैतानू माया अलाउदीं सुलतानू
प्रेम कथा यह भाँति विचारू बूझ लेहु जो बुझहि पारू

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेमका सबै सराहै ताहि॥

मुहमद कवि यह जोर सुनावा सुना सो प्रेम पीर का पावा
जोरे लाय रक्त ले गये प्रेम प्रीति नयनहिं जल भये
औ मैं जान गीत अस कीन्हा की यह रीति जगत महँ चीन्हा
कहाँ सो रतनसेन अब राजा कहाँ सुवा अस बुध उपराजा
कहाँ अलाउदीन सुलतानू कहँ राघव जेहि कीन्ह बखानू
कहँ सुरूप पद्मावति रानी कुछ न रही जग रही कहानी
धन सोई यह कीरति तासू फूल मरै पर मरै न बासू

कौन जगत यश बेचा कौन लीन यश मोल।
जो यह पढ़ै कहानी हम सँवरै दोउ बोल॥
मुहमद वृद्ध बैस जो भई यौवन हन सो अवस्था गई
बल जो गयो कै खीन शरीरू दृष्टि गई नयनहिं दै नीरू
दशन गये कै बचा कपोला बैन गये अनरुच दै बोला
बुधि जो गई दै हिय बौराई गर्व गयो तरिहत शिरनाई
श्रवण गये ऊँच जो सूना स्याही गये सीस भा धूना
भँवर गये केसहिं दै भुवा यौवन गयो जीत ले जुवा
जो लहि जीवन जोवन साथा पुनि सो मीच पराये हाथा

टोडरमल

टोडरमल खत्री थे। इनका जन्म सं० १५८० में और मरण सं० १६४६ में हुआ। ये बादशाह अकबर के भूमि-कर विभाग के प्रधान अमात्य थे। एक बार ये बंगाल के गवर्नर भी बनाये गये थे और इन्होंने कई बार पठानों को भी परास्त किया था। बही खाते का सब से पहिले इन्होंने ही प्रचार किया था। ये हिन्दी कविता भी करते थे, उसके कुछ नमूने नीचे देखिये—

सोहै जिन सासन में आतमानुसासन सु जीके दुखहारी सुखकारी साँची सासना। जाको गुन भद्रकार गुण भद्र जाको जानि भद्र गुन धारी भव्य करत उपासना॥ ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को बनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम बासना। ताते देस भाषा अर्थ को प्रकास करु जाते मन्द बुद्धिहूँ के हिये होवै अर्थ भासना॥ १॥

गुन बिनु धन जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे, मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है। कण्ठ बिन गीत जैसे,हित बिन प्रीति जैसे,वेश्या रस रीति जैसे, फल बिन तर है॥ तार बिन जन्त्र जैसे,स्याने बिन मंत्र जैसे,पुरुष बिन नारि जैसे, पुत्र बिन घर है। टोडर सुकवि तैसे मन में विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिना पर है॥२॥

जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा,गदहा को पान कहा, आँधरे को आरसी। निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिद्री को,सेवा कहा सूम को अरण्डन की डारसी॥ मदपी को सुचि कहा, साँच कहा लम्पट को, नीच को बचन कहा, स्यार को पुकार सी। टोडर सुकवि ऐसे हठी ते न टारे टरै, भावे कहो सूधी बात भावे कहो फारसी॥ ३॥

बीरबल

महाराज बीरबल का जन्म सं० १५८५ वि० में, तिकवाँपुर ज़ि० कानपूर में एक साधारण ब्राह्मण के घर में हुआ। इनके पिता का नाम गंगादास था। प्रयाग के क़िले में जो अशोक स्तंभ है उस पर यह खुदा हुआ है:—

"संवत् १६३२ शाके १४६३ मार्ग बदी ५ सोमवार गङ्गादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं।"

शिवराज भूषण में भूषण कवि ने इनका जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर लिखा है, जो यमुना के तट पर बसा है और वहीं भूषण का भी जन्मस्थान है। अतएव जो लोग बीरबल

का जन्मस्थान नारनौल बताते हैं उन्हें भूषण का यह दोहा देखना चाहिये—

द्विज कनौज कुल कस्यपी रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनि तनूजा तीर॥
बीर बीरबल से जहाँ उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप॥

महाराज बीरबल अकबर के मन्त्री थे। अकबर इनको बहुत मानते थे। इन्होंने कई बार सेनापति का भी काम किया था और कई लड़ाइयाँ जीती थीं। यहाँ तक कि सं० १६४० में, उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश के युद्ध ही में इनका प्राणान्त भी हुआ। जब इनके मरने का समाचार बादशाह अकबर को मिला, तब अकबर ने अत्यन्त दुःखी होकर यह सोरठा पढ़ा—

दीन देखि सब दीन एक न दीन्हों दुसह दुख।
सो अब हम कहँ दीन कछुक न राख्यो बीरबर॥

अकबर के दरबार में कट्टर मुसलमान वज़ीरों के बीच में रह कर भी इन्होंने हिन्दुओं का बड़ा हित-साधन किया था। इनके ही प्रभाव से हिन्दुओं की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हुई थीं और हिन्दुओं को ऊँचे ऊँचे पद मिले थे। अकबर बीरबल पर बड़ा विश्वास रखते थे। ये अपनी युक्तिपूर्ण बातों से बादशाह का मनोरञ्जन भी खूब करते थे। एक साधारण दशा से अपने बुद्धिबल के द्वारा उन्नति करके ये अकबर के नवरत्नों में हो गये और शाही दरबार से इन्होंने एक बड़ी जागीर और महाराजा की पदवी पाई। कविता में इनका उपनाम ब्रह्म था।

ये स्वयं ब्रज भाषा के अच्छे कवि थे और कवियों का बड़ा आदर करते थे। केशवदास को एक बार इन्होंने एक छंद पर छः लाख रुपये दिये थे और ओड़छा-नरेश पर एक करोड़ का अर्थ दंड क्षमा करा दिया था।

इनका लिखा कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आता। केवल पुस्तकों में कहीं कहीं इनके दो एक छंद मिलते हैं। इनकी कविता बड़ी ही चमत्कारपूर्ण और ललित होती थी। उसका नमूना देखिये—

उछरि उछरि भेकी झपटैं उरग पर उरग पै केकिन के लपटैं लहकि है। केकिन के सुरति हिये की ना कछू है भये एकी करी केहरि न बोलत बहकि है॥ कहै कवि ब्रह्म बारि हेरत हरिन फिरैं बैहर बहत बड़े जोर सों जहकि है। तरनि के तावन तवा सी भई भूमि रही दसहू दिसान में दवारि सी दहकि है ॥१॥

एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मञ्जु रसालहि। डीठि गई चलि मोहन की बृषभानुसुता उर मोतिन मालहि। सो छवि ब्रह्म लपेटि हिये करसों कर लैकर कंज सनालहि। ईस के सीस कुसुम्भ की माल मनो पहिरावति व्यालिनि व्यालहि ॥२॥

सखि भोर उठी बिन कंचुकी कामिनि कान्हर तें करि केलि घनी। कवि ब्रह्म भनै छवि देखत ही कहि जात नहीं मुखतें बरनी। कुच अग्र नखच्छत कंत दयो सिर नाय निहारि लियो सजनी। ससिसेखर के सिर से सु मनों निछुरे ससि लेत कला अपनी ॥ ३ ॥

पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक परोस लजाय न सारो। बन्धु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ

धुनारो ॥ साहब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो । ब्रह्म भनै सुन शाह अकब्बर बारहो बाँधि समुद्र में डारो ॥४॥

गंग

गंग बड़े प्रतिभाशाली और अकबर के दरबारी कवि थे। अब्दुल रहीम खानखाना इनको बहुत चाहते थे। गंग के जन्म और मरण की तिथि का ठीक ठीक पता नहीं चलता। परन्तु अनुमान से यह माना जा सकता है कि इनकी और रहीम की अवस्था मे बहुत कम अन्तर रहा होगा। रहीम का जन्म सं० १६१० में और मृत्यु १६८२ वि० में हुई। अतएव गंग का भी जन्मकाल १६१० के आसही पास होगा।

गंग बड़े ही धुरंधर कवि थे। यद्यपि इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, परन्तु जो कुछ फुटकर छन्द मिलते हैं उनसे इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इनका एक छप्पै सुनकर अब्दुर्रहीम खानखाना ने इनको ३६ लाख रुपये दिये थे। वह छप्पै यह है :—

चकित भँवर रहि गयौ गमन नहिं करत कमलबन।
अहि फनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहैं न करैं रति॥
खलभलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानान खान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तँग कस्यो॥

हम इनके कुछ छन्द नीचे लिखते हैं :—

बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो
सुख के समूह में वियोग आग भरकी।
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो
लागतही ताके तन भई बिथा जर की।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ
लागत ही और गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी ॥१॥
नवल नवाब खानखाना जू तिहारो त्रास
भागे देसपती धुनि सुनत निसान की।
गंग कहै तिनहूँ की रानी राजधानी छाँड़ि
फिरै बिललानी सुधि भूली खान पान की।
तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरन
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन भवानी जानी केहरिन
मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ॥२॥
प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना
तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी।
कहै कवि गंग तहाँ भारी सूर वीरन के
उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी।
मच्यो घमसान तहाँ तोप तीर बान चलै
मंडि बलवान किरवान कोपि गहकी।
तुंड काटि मुंड काटि जोसन जिरह काटि
नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी ॥३॥
झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान
एकन तें एक मनो सुखमा जरद की।

कहैं कवि गंग तेरे बल की बयारि लगे
फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरद की।
एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं
रही न निसानी कहूँ महि में गरद की।
गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी
गौरीपति गह्यो पूँछ लपकि बरद की ॥ ४ ॥

फूट गये हीरा की बिकानी कनी हाट हाट
काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल के लयो।
टूट गई लंका फूट मिल्यो जो विभीषन है
रावन समेत वंश आसमान को गयो।
कहै कवि गंग दुर्योधन से छत्रधारी
तनक में फूटें तें गुमान वाको नै गयो।
फूटे तें नरद उठि जात बाजी चौसर की
आपुस के फूटे कहु कौन को भलो भयो ॥५ ॥

आवत हैं। चले शिव शैलतें गिरीश जाँचे
मिल्यो हुतो मोहि जहाँ सागर सगर को।
कविन की रसना के पालकी पै चढ़ो जात
संग सोहै रावरो प्रताप तेज वर को।
कवि गंग पूछी तुम को हौ कित जैहो, उन
कह्यो मोसों हँसिके सनेसो ऐसो थर को।
जस मेरो नाम मेरो दसो दिसि काम मेरो
कहियो प्रनाम हैं। गुलाम बीरबर को ॥ ६ ॥

देखत के बृच्छन में दीरघ सुभायमान
कीर चल्यो चाखिबे को प्रेम जिय जग्यो है।
लाल फल देखि कै जटान मड़रान लागे
देखत बटोही बहुतेरे डगमग्यो है।

गंग कवि फल फूटे भुआ उधिरान लखि
सबन निरास ह्वै कै निज गृह भग्यो है।
ऐसो फलहीन बृच्छ बसुधा में भयो यारो
सेमर बिसासी बहुतेरन को ठग्यो है॥ ७॥

मृगहू ते सरस बिराजत बिसाल दृग
देखिये न अति दुति कौलहू के दल मैं।
"गंग" घन दुज से लसत तन आभूषन
ठाढ़े द्रुम छाँह देख ह्वै गई बिकल मैं।
चख चित चाय भरे शोभा के समुद्र माँझ
रही ना सँभार दसा और भई पल मैं।
मन मेरो गरुओ गयोरी बूड़ि मैं न पायो
नैन मेरे हरुये तिरत रूप जल मैं॥ ८॥

चकई बिछुरि मिली तू न मिली प्रीतम सों
गंग कवि कहै ये तो कियो मान ठानरी।
अथये नछत्र ससि अथई न तेरी रिस
तू न परसन परसन भयो भान री।
तू न खोली मुख खोलो कंज औ गुलाब मुख
चली सीरी वाय तू न चली भो बिहान री।
राति सब घटी नाहीं करनी ना घटी तेरी
दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री॥ ९॥

अधर मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि
विधि मानो बिधु कीन्हो रूप को उदधि कै।
कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्यो
बदन छपाइ सखियान लीन्हो मधि कै।
मारि गई गंग दृग शर वेधि गिरिधर
आधी चितवनि मैं अधीन कीन्हो अधिकै।

बान बधि बधिक बधे को खोज लेत फेरि
बधिक बधू ना खोज लीन्ही फेरि बधि कै॥१०॥

मालती शकुंतला सी को है कामकंदला सी
हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरै।
ऐल फैल फिरत खवास खास आस पास
चोवन की चहल गुलाबन की गागरै।
ऐसी मजलिस तेरी देखी बीरबर
गंग कहै गूँगी ह्वै के रही है गिरा गरै।
महि रह्यो मागधान गीत रह्यो ग्वालियर
गोरा रह्यो गोर ना अगर रह्यो आगरै॥११॥

राजे भाजे राज छोड़ि रन छोड़ि रजपूत
रौतौ छोडि राउत रनाई छोड़ि रानाजू।
कहैं कवि गंग हूल समुद के चहूं कूल
कियो न करै कबूल तिय खसमाना जू।
पश्चिम पुरतगाल कासमीर अवताल
खक्खर को देस बाढ़यो भक्खर भगाना जू।
रूम साम लोम सोम बलक बदाऊशान
खैल फैल खुरासान खीझे खानखाना जू॥१२॥

कोप कशमीर तें चल्यो है दल साजि बीर
धीर ना धरत गल गाजिबे को भीम है।
सुन्न होत साँझे ते बजत दंत आधीरात
तीसरे पहर में दहल दै असीम है।
कहै कवि गंग चौथे पहर सतावै आनि
निपट निगोरो मोहिं जानि कै यतीम है।
बाढ़ी शीत शंका काँपै कर ह्वै अतङ्का
लघुशंका के लगे ते होत लंकाकी मुहीम है॥१३॥

दलहि चलत हलहलत भूमि थल थल जिमि चल दल।
पल पल खल खलभलत बिकल बाला कर कुल कल।
जब पटहध्वनि युद्ध धुंधु धुद्धुव धुद्धुव ध्रुव।
अरर अरर फटि दरकि गिरत धसमसति धुकन ध्रुव।
भनि गंग प्रबल महि चलत दल जहँगीर शाह तुव भार तल।
फुं फुं फनिन्द फन फुंकरत सहस गाल उगिलत गरल॥१४॥
मृगनैनी की पीठ पै बेनी लसै सुख साज सनेह समोइ रही।
सुचि चीकनी चारु चुभी चित मैं भरि भौन भरी खुशबोइ रही।
कविगंगजूयाउपमाजो कियो लखि सूरति ता श्रुति गोइ रही।
मनो कंचनके कदलीदल पै अति साँवरी साँपिन सोइ रही॥१५॥
नैन घायल पायल मायल ह्वै गढ़ लंकते दूरि निसंक गयो।
तहँ रूप नदी त्रिबली तरि कै करि साहस सागर पार भयो।
कवि गंग भनै बटपार मनोज रुमावलि सों ठग संग लयो।
परि दोऊ सुमेरु के बीच मनोभव मेरो मुसाफिर लूट लयो॥१६॥

अकबर

मुगल सम्राट अकबर का जन्म सं० १५९९ में, अमरकोट में हुआ। १६६२ वि० तक इन्होंने राज किया। यद्यपि ये विशेष पढ़े लिखे न थे, परन्तु कवियों और पंडितों की संगति का इन्हे बड़ा चाव था। सत्संग के प्रभाव से ये स्वयं कविता भी करने लगे थे। इनके दरबार में अच्छे अच्छे कवि और पण्डित रहते थे।

इनका रचा कोई ग्रन्थ नहीं मिलता; कहीं कहीं फुटकर छंद मिलते हैं। इनके कुछ छंद नमूने के तौर पर नीचे लिखे जाते हैं—

जाको जस है जगत में जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि ॥ १ ॥
साहि अकब्बर एक समैं चले कान्ह बिनोद बिलोकन बालहिँ।
आहट ते अबला निरख्यो चकिचौंकि चलीकरिआतुर चालहिँ।
त्यों बलि बेनी सुधारि धरी सु भई छबियों ललना अरु लालहिँ।
चम्पकचारु कमान चढ़ावतकाम ज्यों हाथलियेअहिब्यालहिँ॥२॥
केलि करैं विपरीत रमैं सु अकब्बर क्यों न इतो सुख पावै।
कामिनि का कटि किंकिनि कान किधौं गनि पीतम के गुन गावै।
बिन्दु छुटी मन में सुललाट तें यों लटमें लटको लगि आवै।
साहि मनोज मनो चित मैं छवि चन्द लये चकडोर खिलावै ॥ ३ ॥

दादूदयाल

दादू दयाल का जन्म फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, बृहस्पतिवार संवत् १६०१ वि०में हुआ था। जन्मस्थान कहाँ था, इस विषय में बड़ा मतभेद पाया जाता है। दादूपंथी लोग कहते हैं कि इनका जन्म अहमदाबाद (गुजरात) में हुआ था। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने इनका जन्मस्थान जौनपुर बतलाया है। परन्तु दादू दयाल की कविता की भाषा देखने से गुजरात देश ही उनका जन्मस्थान प्रतीति होता है।

ये किस जाति के थे, इसमें भी बड़ा झगड़ा है। कोई इन्हें गुजराती ब्राह्मण बतलाता है, कोई मोची और कोई धुनिया कहता है। सर्वसाधारण में ये धुनिया ही प्रसिद्ध हैं; परन्तु "जाति पाँति पूछै ना कोई, हरि को भजै सो हरि का

होई" इस कहावत के अनुसार हमें इनका गुण ही देखना चाहिये। गुण की कोई जाति नहीं है। जाति चाहे ऊँच हो या नीच, गुण का आदर सर्वत्र होगा।

दादूदयाल का गुरु कौन था, इसका भी ठीक ठीक पता नहीं। लोग कहते हैं कि कमाल इनके गुरु थे। कमाल कबीर के पुत्र थे। दादू दयाल की पदावली में कबीर का नाम तो कई स्थानों पर आया है परन्तु कमाल का एक स्थान पर भी नहीं। दादू दयाल ने गुरु की महिमा भी बहुत गाई है। ऐसी दशा में यदि कमाल इनके गुरु होते, तो उनका नाम भी कहीं न कहीं आता ही।

दादू पंथियों के कथनानुसार, कबीर साहब की तरह दादू दयाल भी बालक रूप में, लोदीराम नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी (अहमदाबाद) में बहते हुए मिले थे। इनके विषय में भी बहुत सी चमत्कार की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। ये बड़े क्षमाशील थे, इसी से लोगों ने इन्हें "दयाल" की पदवी दी थी। और ये सब को दादा कहा करते थे इसी से लोग इन्हें ,'दादू' कहने लगे।

दादूदयाल, आमेर में जो जयपुर की पुरानी राजधानी है, १४ वर्ष तक रहे। वहाँ से जयपुर, मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानों में घूमते हुये सं० १६५६ में नराना में, जो जयपुर से २० कोस पर है, आकर ठहर गये। वहाँ से तीन चार कोस पर भराने की पहाड़ी है वहाँ भी ये कुछ समय तक रहे, और सं० १६६० में वहीं इन्होंने शरीर छोड़ा। इसी कारण से वह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है। समस्त दादू पंथियों के मुखिया वहीं रहते हैं। वहाँ दादूदयाल का एक मन्दिर है। उसमें उनके कपड़े और पोथियाँ अब तक हैं।

वहाँ प्रति वर्ष फागुन सुदी ४ से द्वादशी तक, नौ दिन बड़ा भारी मेला लगता है। इस पंथ में दो प्रकार के साधू पाये जाते हैं, एक भेसधारी विरक्त, दूसरे नागा। भेसधारी विरक्त गेरुआ वस्त्र पहनते हैं और कथा कीर्तन में अपना समय बिताते हैं। नागा सफेद सादे कपड़े पहनते हैं और खेती, फौज की नौकरी तथा वैद्यक आदि करके जीविका चलाते हैं। जयपुर राज्य की नागों की सेना प्रसिद्ध ही है। दोनों प्रकार के साधू विवाह नहीं करते। गृहस्थों के लड़कों को चेला मूँड़ कर अपना पंथ चलाते हैं। ये लोग न तो तिलक लगाते हैं और न गले में कंठी पहनते हैं। प्रायः हाथ में एक सुमिरनी रखते हैं। सिर पर टोपी या पगड़ी पहनते हैं, और आते जाते समय एक दूसरे से "सत्त राम" कहते हैं।

दादू दयाल निरञ्जन निराकार परब्रह्म के उपासक थे। और उसी को सब में रमने वाला राम कह कर सुमिरन करते कराते थे।

ये हिन्दी, फ़ारसी, गुजराती, मारवाड़ी और मराठी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। गुजराती और हिन्दी भाषा में इनकी कविताएँ बड़ी ही हृदय-वेधक हुई हैं। जब मैं इनकी कविता का अध्ययन कर रहा था तब कई स्थानों पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि संसार-प्रसिद्ध महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के भावों से उनमें विशेष महीन और प्रेमाभिसिक्त भाव हैं। दोनों के भाव और कहने के ढंग में कहीं कहीं बड़ी समता पाई जाती है।

दादू दयाल की साखी में वह रस नहीं है जो कबीर साहब की साखी में पाया जाता है। परन्तु दादू दयाल के पदों में प्रेम का जो मनोहर रूप प्रकट हुआ है वह कबीर साहब

के थोड़े ही भजनों में पाया जाता है। कबीर साहब की तरह दादू दयाल भी हिन्दू मुसलमानो में भेद नहीं मानते थे। यह उनके पदों से साफ़ साफ़ प्रकट होता है।

यहाँ हम दादू दयाल के कुछ चुने हुये दोहे और पद प्रकाशित करते हैं—

घीव दूध में रमि रह्या व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं मथि काढ़ैं ते और ॥ १ ॥
दादू दीया है भला दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये जो कर दिया न होय ॥ २ ॥
यह मसीत यह देहरा सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदगी बाहिर काहे जाइ ॥ ३ ॥
कहि कहि मेरी जीभ रहि सुणि सुणि तेरे कान।
सतगुरु बपुरा क्या करै जो चेला मूढ़ अजान ॥ ४ ॥
सुख का साथी जगत सब दुख का नाहीं कोइ।
दुख का साथी साइयाँ दादू सतगुरु होइ ॥ ५ ॥
दादू देख दयाल कौ सकल रहा भरपूर।
रोम रोम में रमि रह्यो तू जिनि जानै दूर ॥ ६ ॥
मिसरी माँहैं मेल करि माल बिकाना वंस।
यों दादू महिँगा भया पारब्रह्म मिलि हंस ॥ ७ ॥
केते पारिख पचि मुये कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं गूँगे का गुड़ खाइ ॥ ८ ॥
जब मन लागै राम सों तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों ऐसे रहै समाइ ॥ ९ ॥
क्या मुँह ले हँसि बोलिये दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा चले अकारथ खोइ ॥१०॥

एक देस हम देखिया जहँ सत नहि पलटै कोइ।
हम दादू उस देस के जहँ सदा एक रस होइ ॥११॥
सुरग नरक संसय नहीं जिवण मरण भय नाहिँ।
राम बिमुख जे दिन गये सो सालैं मन माँहिँ ॥१२॥
मैं ही मेरे पोट सर मरिये ताके भार।
दादू गुरु परसाद सों सिर थैं धरी उतार ॥१३॥
दादू मारग कठिन है जीवत चलै न कोइ।
सोई चलि है बापुरा जे जीवत मिरतक होइ ॥१४॥
काया कठिन कमान है खींचै विरला कोइ।
मारे पाँचो मिरगला दादू सूरा सोइ ॥ १५ ॥
जे सिर सौंप्या राम कौं सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया जिसका तिसके हाथ ॥ १६॥
कहताँ सुनताँ देखताँ लेताँ देताँ प्राण।
दादू सो कतहूँ गया माटी धरी मसाण ॥ १७ ॥
जिहि घर निंदा साधु की सो घर गये समूल।
तिन की नीव न पाइये नाँव न ठाँव न धूल ॥ १८ ॥

पद

हुसियार रहो मन मारैगा साईं सतगुरु तारैगा ॥
माया का सुख भावै मूरिख मन बौरावे रे ॥
झूठ साच करि जाना इन्द्री स्वाद भुलाना रे ॥
दुख कौं सुख करि मानै काल झाल नहि जानै रे ॥
दादू कहि समझावै यहअवसरबहुरि न पावैरे ॥१॥

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।

द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा अबरण एक अधारा ॥
बाद विवाद काहू सौं नाहीं माहिं जगत थैं न्यारा।
सम दृष्टी सूँ भाई सहज में आपहि आप विचारा ॥

मैं, तैं, मेरी, यहु मत नाहीं निरबैरी निरविकारा।
पूरण सबै देखि आपा पर निरालंभ निरधारा॥
काहू के संगी मोह न ममिता सङ्गी सिरजनहारा।
मन ही मनसूँ समझि सयाना आनँद एक अपारा॥
काम कलपना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
इहि पँथ पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहजि सँभारा॥ २॥

आव रे सजणाँ आव, सिर पर धरि पाँव।
जानी मैंडा जिंद असाड़े।
तू रावैं दा राव वे सजणाँ आव।
इत्थाँ उत्थाँ जित्थाँ कित्थाँ, हैं जीवाँ तो नाल वे।
मीयाँ मैंडा आव असाड़े।
तू लालों सिर लाल वे सजणाँ आव॥
तन भी डेवाँ मन भी डेवाँ, डेवाँ प्यंड पराण वे।
सच्चा साईं मिलि इत्थाईं।
जिन्दा कराँ कुरबाण वे सजणाँ आव।
तूँ पाकौं सिर पाक वे सजणाँ तू खूबौं सिर खूब।
दादू भावै सजणाँ आवै।
तू मीठा महबूब वे सजणाँ आव॥ ३॥

(पंजाबी भाषा)

म्हारा रे व्हाला ने काजे रिदै जोवा ने हूँ ध्यान धरूँ।
आकुल थाये प्राण म्हारा कोने कही पर करूँ॥
सँभार्यो आवे रे व्हाला व्हेला एहों जोइ ठरूँ।
साथी जी साथै थइनि पेली तीरे पार तरूँ॥
पीव पाखे दिन दुहेला जाये घड़ी बरसाँ सौं केम भरूँ।
दादू रे जन हरि गुण गाताँ पूरण स्वामी ते वरूँ॥ ४॥

(गुजराती भाषा)

बटाऊ रे चलना आजि कि कालि।
समझि न देखै कहा।सुख सोवै रे मन राम सँभालि॥
जैसे तरवर बिरस बसेरा पंखी बैठे आइ।
ऐसे यहु सब हाट पसारा आप आप कौं जाइ॥
कोइ नहिं तेरा सजन सँगाती जिनि खोवे मन भूल।
यहु संसार देखि जिनि भूलै सब ही सेंवल फूल॥
तन नहिं तेरा धन नहि तेरा कहा रह्यो इहि लागि।
दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै काहे न देखै जागि॥ ५॥
जागि रे सब रैणि बिहाणी जाइ जनम अँजुली कौ पाणी
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै जे दिन जाइ से बहुरि न आवै
सूरज चंद कहैं समझाइ दिन दिन आयू घटनी जाइ
सरवर पाणी तरवर छाया निसदिन काल गरासै काया
हंस बटाऊ प्राण पयाना दादू आतमराम न जाना॥६॥

बातैं बादि जाहिंगी भइये।
तुम जिनि जानौ बातनि पइये॥

जब लग अपना आप न जाणै तब लग कथनी काची।
आपा जाणि साईं कूँ जाणै तब कथनी सब साची॥
करणी बिना कंत नहिं पावै कहे सुने का होई।
जैसी कहै करै जे तैसी पावेगा जन सोई॥
बातनिहीं जे निरमल होवै तौ काहे कूँ कसि लीजै।
सोना अगिनि दहै दस बारा तब यहु प्राण पतीजै।
यों हम जाणा मन पतियाना करनी कठिन अपारा।
दादू तन का आपा जारै तौ तिरत न लागै बारा॥७॥

नरोत्तमदास

न रोत्तमदास कस्बा बाड़ी जिला सीतापुर के रहने वाले ब्राह्मण थे। शिवसिंह सरोज में सं० १६०२ में इनका होना लिखा है। ये अच्छे कवि थे। इनके लिखे "सुदामा चरित" के कुछ उत्तम पद्य हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल श्रवणन कुंडल मुकुट धरे माथ हैं। ओढ़े पीत बसन गले में बैजयंती माल शंख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं। कहत नरोत्तम संदीपन गुरू के पास तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं। द्वारका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं१॥

शिक्षक हैं सिगरे जगको तिय ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सिधारत संपति की तिनके नहि इच्छा।
मेरे हिये हरिको पद पंकज बार हजारलौं देख परिच्छा।
औरन के धन चाहिये बावरी ब्राह्मण के धन केवल भिच्छा॥२॥

दानी बड़े तिहुँ लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली विधि सिद्ध करो पिय मेरो मतोलै।
दीन दयालु के द्वार न जातसो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्री यदुनाथ से जाके हितूसो तिहूँपन क्यों कन माँगत डोलै३॥

क्षत्रिन के प्रण युद्ध ज्यौं बादल साजि चढ़े गज बाजनहीं।
वैश्य को बानिज और कृषीपन शूद्र के सेवन नीति यही।
विप्रन के प्रण है जु यही सुख संपति सों कुछ काज नहीं।
कै पढ़िवो कै तपोधन है कन माँगत ब्राह्मणै लाज नहीं॥४॥

कोदों समा जुरतौ भरिपेट न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
शीत व्यतीत गयो सिसिआतहि हौं हठती पै तुम्हैं न हठौती।
जौ जनती न हितू हरि से तौ मैं काहे को द्वारका ठेल पठौती।
या घरसे कबहूँ न गयो पिय टूटौ तवा अरु फूटी कठौती ॥५॥
छाँड़ि सबै झख तोहि लगी बक आठहुँ याम यही ठक ठानी।
जातहि देहैं लदाय लढ़ा भरि लैहौं लदाय यही जिय जानी।
पैये अटारी अटा कहँते जिन को विधि दीनी है टूटी सी छानी।
जोपै दरिद्र ललाट लिख्यो तोपै काहु के मेटे न जात अजानी६॥

फाटे पट टूटी छानि खायो भीख माँगि आनि बिना गये विमुख रहत देव पित्रई। वे हैं दीनबन्धु दुखी देखके दयालु ह्वै हैं दै हैं कछु भलो सो हौं जानत अगत्रई। द्वारका लौं जात पिय केतौ अलसात तुम काहे को लजात भई कौन सी विचित्रई। जोपै सब जन्म ये दरिद्र ही सतायो तोपै कौन काज आय है कृपानिधि की मित्रई ॥ ७ ॥

तैं तो कही नीकी सुन बात हित ही की यह रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइये। चित्त के मिलेते वित्त चाहिये परसपर मित्र के जो जेंइये तो आप हू जिमाइये। वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप तहाँ यह रूप जाय कहा सकुचाइये। दुख सुख सब दिन काटे ही बनेगो भूल विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ॥ ८ ॥

विप्र के भगत हरि जगत विदित बन्धु लेत सब ही की सुधि ऐसे महादानि हैं। पढ़े एक चटसार कही तुम कैयो बार लोचन अपार वे तुम्हें न पहिचानिहैं। एक दीनबन्धु कृपासिंधु फेर गुरुबन्धु तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहैं। नाम लेत चौगुनी गये ते द्वार सौगुनी बिलोकत सहसगुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ॥ ९ ॥

द्वारका जाहु जू द्वारका जाहु जू आठहु याम यही झक तेरे।
जौ न कह्यो करिये तौ बड़ो दुख पैहों कहाँ अपनी गति हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छड़िया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी तौ देखु विचारि के भेट को चारि न चामर मेरे॥१०॥

यह सुनि के तब ब्राह्मणी गई परोसिन पास।
सेर पाव चामर लिये आई सहित हुलास॥११॥
सिद्धि करौ गणपति सुमिरि बाँधि दुपटिया खूट।
चले जाहु तेहि मारगहि माँगत बाली बूट॥१२॥

मंगल संगीत धाम धाम में पुनीत जहाँ नाचें वारवधू देवनारि अनुहारिका। घंटन के नाद कहूँ बाजन के छाय रहे कहूँ कीर केकी पढ़ैं सुक और सारिका। रतनन ठाट हाट बाटन में देखियत घूमें गज अश्व रथ पत्ति नर नारिका। दशो-दिशा भीर द्विज धरत न धीर मन उठत है पीर लखि बलवीर द्वारिका॥ १३॥

दृष्टि चकचौंधि गयी देखत सुवरनमयी एकते सरस एक द्वारका के भौन हैं। पूछे बिन कोऊ काहू से न करे बात जहाँ देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं। देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय कृपा करि कहो कहाँ कीने विप्र गौन हैं। धीरज अधीर के हरण परपीर के बताओ बलवीर के महल यहाँ कौन हैं॥ १४॥

द्वारपाल चलि तहँ गयो जहाँ कृष्ण यदुराय।
हाथ जोरि ठाड़ो भयो बोल्यो शीश नवाय॥१५॥

शीश पगा न झँगा तन में प्रभु जानें को आहि बसै किहिग्रामा।
धोती फटी सी फटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
दीनदयालु को पूछत नाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥१६॥

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरते देखतही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक के कलपद्रुम के हिय माँझ खखेट्यो॥
काँपि कुबेर हिये सर से पग जात सुमेरहु रंक से सेट्यो।
राज भयो तबही जबही भरि अंग रमापति सों द्विज भेंट्यो॥१७॥
ऐसे बिहाल बिवायन सों भये कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोये॥१८॥

तंदुल त्रिय दीने हुते आगे धरियो जाय।
देखि राजसंपति विभव दै नहि सकत लजाय॥१९॥
अंतरयामी आप हरि जानि भक्ति की रीति।
सुहृद सुदामा विप्रसों प्रकट जनाई प्रीति॥२०॥
कछु भाभी हमको दियो सो तुम काहे न देत।
चाँपि गाँठरी काँख में रहे कहो किहि हेत॥२१॥

आगे चना गुरु मात दिये ते लिये तुम चाबि हमैं नहिं दीने।
श्याम कही मुसकाय सुदामासों चोरिकी बानि में हौजुप्रवीने॥
गाँठरी काँख में चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम वैसे ही भाभीके तंदुलकीने॥२२॥

खोलत सकुचत गाँठरी चितवत हरिकी ओर।
जीरण पट फट छुटि परे बिखरि गये तेहि ठोर॥२३॥

तंदुल माँगत मोहन विप्र सकोच ते देत नहीं अभिलाखे।
है नहिं पास कछू कहिके तहि गोपि घनी विधि काँखमें राखे॥
सो लखि दीनदयालु तहाँ यह चोरी करी तुम यों हँसि भाखे।
खोलके पोट अछोट मुठी गिरिधारण चामर चावसों चाखे॥२४॥
काँपि उठी कमला मन सोचत मों सों कहा हरि को मन ओंको।
ऋद्धि कँपी नवनिद्ध कँपी सब सिद्धि कँपी ब्रह्मनायक धोंको॥

शोक भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लयो भरि झोंको।
मेरु डरै बकसै जिन मोहि कुबेर चबावत चामर चोंको ॥२५॥

हूल हियरामें कान कानन परी है टेर भेटत सुदामैं श्याम बनै न अघातहीं। कहै नरोत्तम ऋद्धि सिद्धिन में शोर भयो ठाढ़ी थरहरे और सोचे कमला तहीं॥ नाग लोक लोक सब ओक ओक थोक थोक ठाढ़े थरहरैं मुख से कहैं न बातहीं। हालो पर्‍यो लोकन में लालो पर्‍यो चक्रिन में चालो पर्‍यो लोगन में चामर चबातहीं॥ २६॥

भौन भरे पकवान मिठाइन लोग कहैं निधि हैं सुखमाके।
साँझ सबेरे पिता अभिलाषत दाखन प्राखत सिंधु रमाके॥
ब्राह्मण एक कोऊ दुखिया सेर पावक चामर लायो समाके।
प्रीत्ति की रीति कहा कहिये तिहि बैठे चबावत कंत रमाके॥२७॥

मूठी दुसरी भरत ही रुक्मिनि पकरी बाँह।
ऐसी तुम्हें कहा भई संपति की अनचाह॥२८॥
कही रुक्मिनी कान में यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामहि आपसो होत सुदामा आप॥२९॥

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुइ दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहा निज बास की आस बिसारी।
रङ्कहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी३०॥

रूपे के रुचिर थार पायस सहित शोभा, सब जीत लीनी शोभा शरद के चंदकी। दूसरे परोस्यो भात सान्यो है सुरभि घृत, फूलेफूले फुलके प्रफुल्लिदुति मंदकी॥ पापर मुँगौरी बरा बेसन अनेक भाँति, देवता विलोकि शोभा भोजन अनंदकी। या विधि सुदामा जी को अच्छकै जिमाय फिर पाछेकै पछा-वरि परोसी आनि कंद की॥ ३१॥

कह्यो विश्वकर्मा को हरि तुम जाय करि नगर सुदामा जी को रचौ वेग अबही। रतन जटित धाम सुवरणमयी सब, कोट औ बजार बाग फूलनके तबही॥ कल्पवृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे कीजिये अपार दास दासी देव छबहीं॥ इन्द्र औ कुबेर आदि देव बधू अपसरा। गंधरब गुणी जहाँ ठाढ़े रहैं सबही॥ ३२॥

नित नित सब द्वारावती दिखलाई प्रभु आप।
भरे बाग अनुराग सब जहाँ न व्यापहिं ताप॥३३॥
परम कृपा दिन दिन करी कृपानाथ यदुराय।
मित्र भावना विस्तरी दूनों आदर भाय॥ ३४॥

दाहिने वेद पढ़ैं चतुरानन सामुहें ध्यान महेश धर्‌यो है।
बायें दोऊ करजोर सुसेवक देवन साथ सुरेश खरयो है॥
रतन बीच अनेक लिये धन पायन आय कुबेर पर्‌यो है।
देखि विभो अपनो सपनो बपुरो वह ब्राह्मण चौंकि पर्‌यो है३५॥

देनो हुतो सो देचुके विप्र न जानी गाथ।
चलती बेर गुपाल जी कछु न दीनो हाथ॥३६॥
गोपुर लौं पहुँचाय के फिरे सकल दरबार।
मित्र वियोगी कृष्ण के नेत्र चली जल धार॥३७॥
हौं आवत नाहीं हुतौ बामहि पठयो ठेल।
अब कहिहौं समझाय के बहु धन धरौ सकेल॥३८॥
बालापन के मित्र हैं कहा देउँ मैं शाप।
जैसो हरि हमको दियो तैसो पइयो आप॥ ३९॥
और कहा कहिये जहाँ कञ्चन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियो मोको दियो न दाम॥४०॥
इमि सोचत सोचत झकत आये निज पुर तीर।
दृष्टि परी इक बारहीं हय गयंद की भीर॥४१॥

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन में, वेई सुरवर हंस बोलन हिलन को। वेई हेम हिरन दिशान दहलीजन में, वेई गजराज हय गरज गिलन को॥ द्वार द्वार छड़ी लिये द्वार पौरिया जो खड़े, बोलत मरोर बरजोर ज्यों झिलन को। द्वारका ते चल्यो भूलि द्वारका ही आयो नाथ, माँगिहैं न मोपै चार चामर मिलन को॥ ४२॥

जगर मगर ज्योति छाय रही चहुँ दिशि, अगर बगर हाथी घोड़न को शोर है। चौपड़ को बन्यो है बजार पुनि सोनन के, महल दुकान की कतार चहुँ ओर है॥ भीड़भाड़ धकापेल चहुँ दिशि देखियत, द्वारकाते दूनों यहाँ प्यादेन को जोर है। रहिबो को ठाम है न काहू सों पिछान मेरी, बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है॥ ४३॥

फूटी एक थारी बिन टोंटनीकी झारी हुती, बाँस की पिटारी औ पथारी हुती टाटकी। बेंटे बिन छुरी औ कमंडलु हौ टोकवो हौ, टूटो हतो पोपौ पाटी टूटी एक खाटकी। पथरौटा काठको कठौता कहूँ दीसै नाहिं, पीतर को लोटो हो कटोरो है न बाटकी। कामरी फटी सी हुती डोड़न की माला नाक, गोमती की माटी की न सुध कहूँ माटकी॥ ४४॥

बलभद्र मिश्र

बलभद्र मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण ओड़छा निवासी पंडित काशीनाथ के पुत्र और प्रसिद्ध कवि केशवदास के बड़े भाई थे। केशवदास ने अपनी कवि प्रिया में इनका नाम लिखा है। इनका जन्मकाल सं० १६०० वि० के लगभग माना जाता है। इनके रचे हुये नखशिख, भागवत भाष्य, बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक टीका, गोबर्द्धन सतसई टीका और दूषण विचार आदि ग्रंथ कहे जाते हैं। इनमें से नखशिख और दूषण विचार आदि दो तीन ग्रंथों के सिवाय अन्य ग्रंथ अभी तक नहीं मिले हैं। अब तक इनकी जितनी कविताएँ मिलीं, उनके देखने से ये बड़े अच्छे कवि जान पड़ते हैं। नमूने के तौर पर इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं :—

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ
बलभद्र बासर उनीदी लखी बाल मैं।
शोभा के सरोवर में बाड़व की आभा कैधौं
देवधुनि भारती मिली है पुन्य काल मैं॥
काम कैबरत कैधौं नासिका उडुप बैठ्यो
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल मैं।
लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानो
बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं॥ १॥

मरकत सूत कैधौं पन्नग के पूत अति
राजत अभूत तमराज कैसे तार हैं।
मखतूल गुन ग्राम सोभित सरस श्याम
काम मृग कानन कै कोहू के कुमार हैं॥

कोप की किरनि कै जलज नल नील तंत
उपमा अनंत चारु चँवर शृँगार हैं।
कारे सटकारे भीजे सोंधे सों सुगंध बास
ऐसे बलभद्र नवबाला मेरे बार हैं ॥ २ ॥

रहीम

रहीम का पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। इनके बाप का नाम बैरमखाँ था। इनका जन्म सं० १६१० में हुआ था। अकबर बादशाह इनको बहुत मानते थे। ये अकबर के प्रधान सेनापति और मंत्री थे।

ये अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और हिन्दी के पूर्ण विद्वान् थे। इनकी सभा सदा पण्डितों से भरी रहती थी। ये कृष्ण भगवान के उपासक थे। ये बड़े दानी, परोपकारी और सज्जन थे। कहते हैं कि अपने जीवन भर में इन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। गङ्ग कवि को एक ही छन्द पर इन्होंने ३६ लाख रुपये दिये थे। अकबर के मरने पर जहाँगीर ने किसी कारण वश इन्हें कैद कर दिया। कैद से छूटने पर इनकी आर्थिक दशा ख़राब हो गई। इस हालत में भी याचक लोग इन्हें घेरे रहते थे। दान शक्ति की क्षीणता से इनको बड़ा मानसिक कष्ट होता था। उस दशा में इन्होंने कहा—

ये रहीम दर दर फिरैं माँगि मधुकरी खाँहि।
यारो यारी छोड़ दो वे रहीम अब नाहिं॥

इतने पर भी एक याचक ने इनको बहुत विवश किया, तब इन्होंने रीवाँ नरेश से एक लाख रुपये मङ्गवा कर उसे

दिये। इस अवसर पर इन्होंने यह दोहा रीवाँ नरेश को सुनाया था—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवधनरेश।
जापर विपदा परति है सो आवत यहि देश॥

गोसाईं तुलसीदास जी से भी इनका परिचय था। एक बार एक याचक ब्राह्मण को तुलसीदास जी ने इनके पास भेजा, उसे अपनी कन्या का विवाह करने के लिये कुछ धन चाहिये था। तुलसीदास जी ने यह आधा दोहा भी लिख-भेजा था—

"सुरतिय नरतिय नागतिय, यह चाहत सब कोय"

रहीम ने उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर उस दोहे को इस तरह पूरा करके तुलसीदास जी के पास भेज दिया:—

"गोद लिये हुलसी* फिरें तुलसी से सुत होय"

* * *

रहीम बड़े सहृदय कवि थे। इनको संसार का बहुत अनुभव था। सं० १६८२ में इनका देहान्त हुआ। अकबर के आजीवन शत्रु महाराणा प्रतापसिंह पर इनकी बड़ी श्रद्धा थी। इनके दोहों में नीति और ज्ञान की बातें भरी हैं। इनकी उपमाएँ हृदय को मुग्ध कर लेती हैं। इन्होंने कई पुस्तकें लिखी थीं। परन्तु उनमें सब अब नहीं मिलतीं।

ये महाराणा प्रतापसिंह की देश भक्ति और स्वाभिमान की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। एक बार इनके घर की बेगमें राजपूतों के हाथ पड़ गईं। राणा जी ने बड़े ही आदर के साथ उनको रहीम के पास भेज दिया। तब से रहीम की

---

* हुलसी, तुलसीदास जी की माता का नाम था।

राणा जी पर बड़ी श्रद्धा रहने लगी। इसका बदला चुकाने के लिये इन्होंने एक बार अकबर को मेवाड़ पर एक बड़ी चढ़ाई करने से रोका था। राणा जी के विषय में इन्होंने राजपूतानी बोली में बहुत से दोहे बनाये थे। उनमें से एक यह है—

ध्रम रहसी रहसी धरा खिसजासे खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरे रखियौ नहचौ राण॥

रहीम ने संस्कृत, हिन्दी और फारसी आदि भाषाओं में बड़ी विलक्षण कविता की है। इनके रचे हुये निम्नलिखित ग्रन्थों का नाम प्रसिद्ध है:—रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पंचाध्यायी, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक, दीवान फारसी और वाक़यात बाबरी का फारसी अनुवाद। इनमें द्वितीय ग्रंथ छपा हुआ मिलता है। शेष ग्रन्थों का पता नहीं चलता। रहीम सतसई के २१२ दोहे मिश्रबंधुओं के पास हैं। इनकी कविता का कुछ नमूना हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

(रहीम सतसई)

कहि रहीम इक दीपतें प्रगट सबै द्युति होय।
तनु सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोय॥ १॥
तरुवर फल नहि खात हैं सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम परकाज हित सम्पति सुचहि सुजान॥ २॥
जिहि रहीम चित आपनों कीन्हों चतुर चकोर।
निशि वासर लागो रहै कृष्णचन्द्र की ओर॥ ३॥
रीति प्रीति सबसों भली बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की बहुरि न सङ्गति होत॥ ४॥
कहि रहीम धन बढ़ि घटे जात धनिन की बात।
घटे बढ़े उनको कहा घास बेंचि जे खात॥ ५॥

दुरदिन परे रहीम कहि भूलत सब पहचानि।
सोच नहीं वित हानि को जो न होय हित हानि ॥ ६ ॥
को रहीम पर द्वार पर जात न जिय पछितात।
संपति के सब जात हैं विपति सबहिं लै जात ॥ ७ ॥
जो रहीम होती कहूँ प्रभु गति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो आप बड़ाई साथ ॥ ८ ॥
जो रहीम मन हाथ है मनसा कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परी काया भीजति नाहिं ॥ ९ ॥
तेहि प्रमाण चलिबो भलो जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पारतें जो रहीम बढ़ि जाय ॥ १० ॥
यों रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सह शांति।
उवत चन्द्र जिहि भाँति सों अथवत वाही भाँति ॥ ११ ॥
माह मास लहि टेसुआ मीन परे थल भौर।
त्यों रहीम जग जानिए छुटे आपनो ठौर ॥ १२ ॥
कहि रहीम संपति सगे बनत बहुत बहुरीत।
बिपति कसौटी जे कसे तेई साँचे मीत ॥ १३ ॥
तबहीं लग जीबो भलो दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत हमहिं न रुचै रहीम ॥ १४ ॥
रहिमन दानि दरिद्र तर तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे कुवाँ खनावत लोग ॥ १५ ॥
रहिमन देखि बड़ेन को लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवै सुई कहा करे तरवारि ॥ १६ ॥
बड़ माया को दोष यह जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो दुख सहि जिये बलाय ॥ १७ ॥
धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अंत बसि कहा भौंर को भाय ॥ १८ ॥

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक रटनि सरबर को कोउ नाहिं ॥१६॥
अमर बेलि बिन मूल की प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि खोजत फिरिये काहि ॥ २० ॥
रहिमन अत्ति न कीजिये गहि रहिये निज कानि।
सहिजन अति फूले तऊ डार पात की हानि ॥ २१ ॥
सरवर के खग एक से बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर एकै ठौर रहीम ॥ २२ ॥
कहु रहीम केतिक रही केती गई बिहाय।
माया ममता मोह परि अंत चले पछिताय ॥ २३ ॥
जो रहीम करियो हुतो ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहि दुख दियो गिरिवर धर गोपाल ॥२४॥
दीरघ दोहा अर्थ के आखर थोरे आहि।
ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिटकूदि कढ़ि जाहिं॥२५॥
जे रहीम विधि बड़ किए को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखत तैं बाढ़ि ॥ २६ ॥
रहिमन याचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूँ को भयो बावन आँगुर गात ॥ २७ ॥
ए रहीम घर घर फिरैं माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो अब रहीम वे नाहिं ॥ २८ ॥
हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर।
खैंच आपनी ओर को डार दियो पुनि दूर ॥ २६ ॥
संतत संपति जानके सबको सब कुछ देइ।
दीनबन्धु बिन दीन की को रहीम सुधि लेइ ॥ ३० ॥
समय दशा कुल देखि के लोग करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को तुम बिन को भगवान ॥३१॥

सर सूखे पंछो उड़ैं औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के कहु रहीम कहँ जाहिं ॥३२॥
धूर धरत नित शीश पर कहु रहीम किहि काज।
जिह रज मुनि पत्नी तरी सो ढूँढ़त गजराज ॥ ३३ ॥
दीन सबन को लखत है दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै दीनबन्धु सम होय ॥ ३४ ॥
राम न जाते हरिन सँग सीय न रावण साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ होति आपने हाथ ॥ ३५ ॥
कहु रहीम कैसे निभै बेर केरु को संग।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग ॥ ३६ ॥
जो रहीम ओछो बढ़ै तौ तितही इतराय।
प्यादे से फरज़ी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥ ३७ ॥
खीरा को मुँह काटिके मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुये मुखन की चहिये यही सजाय ॥ ३८ ॥
नैन सलोने अधर मधु कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर अरु मीठे पर लौन ॥ ३९ ॥
जो विषया संतन तजी मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर श्वान स्वाद सों खात ॥४० ॥
जो रहीम दीपक दशा तिय राखत पट ओट।
समै परेते होति है वाही पटकी चोट ॥ ४१ ॥
रहिमन राज सराहिये शशि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है तप्यौ तरैयन खोय ॥ ४२ ॥
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय ॥ ४३ ॥
रहिमन कहत सुपेट सों क्यों न भयो तू पीठ।
रीतें अनरीतें करत भरे बिगारत दीठ ॥ ४४ ॥

जे गरीब सों हित करैं धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई योग ॥ ४५ ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग ॥ ४६ ॥
यह न रहीम सराहिये देन लेन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिये हारि होय कै जीति ॥ ४७ ॥
आप न काहू काम के डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरैं रहिमन पेड़ बबूल ॥ ४८ ॥
रहिमन सूधी चाल सों प्यादा होत वज़ीर।
फरज़ी मीर न हो सकै टेढ़े की तासीर ॥ ४९ ॥
बड़े पेटके भरन में है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि के दये दाँत द्वै काढ़ि ॥ ५० ॥
यों रहीम सुख होत हैं बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखिया निरखि आँखिन को सुख होत ॥५१ ॥
ओछो काम बड़े करैं तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को गिरिधर कहै न कोय ॥ ५२॥
जो बड़ेन को लघु कहौ नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे कछु दुख मानत नाहिं ॥५३ ॥
शशि सकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है घटत घटत घटि सीम ॥५४ ॥
यह रहीम निज संगले जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास यश होत होत ही होय ॥ ५५ ॥
बड़े दीन को दुख सुने लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती कहु रहीम पहिचानि ॥ ५६ ॥
रहिमन राम न उर धरै रहत विषय लपिटाय।
पशु खर खात सवाद सों गुर गुळियाये खाय ॥ ५७ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर जब घर लागत आगि॥५८॥
प्रीतम छवि नैनन बसी पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय॥५९॥
गुरुता फबै रहीम कहि फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं अनत बतौरी आहि॥ ६०॥
कुटिलन संग रहीम कहि साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैननि करैं उरज उमेठे जाहिं॥ ६१॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि गंग नाम भौ धीम
केहि की प्रभुता नहिं घटी पर घर गये रहीम॥ ६२॥
मान सरोवर ही मिले हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर बक बालकनहिं योग॥६३॥
रहिमन बिगरी आदि की बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं तऊ बावनै नाम॥ ६४॥
रहिमन रिस सहि तजत नहिं बड़े प्रीति की पौरि।
मूँकन मारत आवई नींद बिचारी दौरि॥ ६५॥
मनसिज माली की उपज कही रहीम न जाय।
फूल श्याम के उर लगे फल श्यामा उर आय॥ ६६॥
जेहि रहीम तन मन दियो कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन को रहो बात अब कौन॥ ६७॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर तपत रसोई भीम॥ ६८॥
सब कोऊ सब सों करै राम जुहार सलाम।
हित रहीम तब जानिये, जा दिन अटकै काम॥ ६९॥
ज्यों रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै बढ़े अँधेरो होय॥ ७०॥

छोटेन सों सोहैं बड़े कहि रहीम यहि लेख।
सहसन को हय बाँधियत ले दमरी की मेख ॥ ७१ ॥
सम्पति भरम गवाँइ के हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम शशि रहत हैं दिवस अकासहि माहि ॥७२॥
अनुचित उचित रहीम लघु करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों शशि के संयोग ते पचवत आगि चकोर ॥ ७३ ॥
काम कछू आवै नहीं मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को साहब चारा देइ ॥ ७४ ॥
धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय ॥ ७५ ॥
माँगे घटत रहीम पद कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी तऊ बावनैं नाम ॥ ७६ ॥
नाद रीझि तन देत मृग नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक रीझेहु कछू न देत ॥ ७७ ॥
रहिमन कबहुँ बड़ेन के नाहि गर्व को लेश।
भार धरें संसार को तऊ कहावत शेष ॥ ७८ ॥
रहिमन नीचन संग बसि लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझहिं सब ताहि ॥७९॥
रहिमन अब वे बिरछ कहँ जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखियत सेंहुँड़ कंज करीर ॥ ८० ॥
मुकता करै कपूर करि चातक जीवन जोय।
येतो बड़ो रहीम जल व्याल बदन बिष होय ॥८१॥
शशि की शीतल चाँदनी सुन्दर सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी घटि रहीम मन आय ॥ ८२ ॥
अमृत ऐसे बचन में रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली निरस बाँस की फाँस ॥८३॥

रहिमन मनहि लगाय के देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय ॥ ८४ ॥
रहिमन अँसुवा नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ ॥ ८५ ॥
गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहुँ ते कहुँ होत है मन काहू को बाढ़ि ॥ ८६ ॥
रहिमन मन महराज के दृग सो नहीं दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन मन तेहि हाथ बिकान ॥ ८७ ॥
बिरह रूप घन तम भयो अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निशा चमकि जात खद्योत ॥ ८८ ॥
रहिमन लाख भली करौ अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ साँप सहज धरि खाय ॥ ८९ ॥
जैसी परै सो सहि रहै कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब शीत घाम औ मेह ॥ ९० ॥
शीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा जो घटि लखै उलूक ॥ ९१ ॥
नहि रहीम कुछ रूप गुण नहि मृगया अनुराग।
देशी श्वान जो राखिए भ्रमत भूखही लाग ॥ ९२ ॥
कागज को सो पूतरा सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खैंचत बाय ॥ ९३ ॥
बिगरी बात बनै नहीं लाख करौ किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को मथै न माखन होय ॥ ९४ ॥
मथत मथत माँखन रहै दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय ॥ ९५ ॥
होय न जाकी छाँह ढिग फल रहीम अति दूर।
बाढ़ेहु सो बिन काज ही जैसे तार खजूर ॥ ९६ ॥

यों रहीम गति बड़ेन की ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिखावत आपु तन सही होत असवार ॥ ९७ ॥
रहिमन निज मन की व्यथा मनहीं राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय ॥ ९८ ॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ हैं बनत न लगि हैं देर ॥ ९९ ॥
गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव ॥ १०० ॥
रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मुए जिन मुखनिकसतिनाहिं ॥१०१॥
जाल परे जलजात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाँड़ति छोह ॥१०२॥
धन दारा अरु सुतन में रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं गाढ़े दिन को मित्त ॥ १०३ ॥
अमी हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकिझुकि परत जिहि चितवत इक बार॥१०४॥
कमला थिर न रहीम कहि लखत अधम जे कोइ।
प्रभु की सो अपनी कहै क्यों न फजीहत होइ ॥ १०५ ॥
रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै मोती मानुस चून ॥ १०६ ॥
जाय समानी उदधि में गंग नाम भयो धीम।
काकी महिमा ना घटी पर गर गये रहीम ॥ १०७ ॥
मान सरोवर ही मिले हंसन मुक्ता भोग।
सफरी भरे रहीम ए विपुल बिलोकन योग ॥१०८॥
बढ़त रहीम धनाढ्य धन धनै धनी को जाइ।
घटे बढ़े तिन को कहा भीख माँगि जो खाइ ॥१०९॥

रहिमन रहिला की भली जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे सो मैदा जरि जाय ॥११०॥
खैर खून खाँसी खुशी बैर प्रीति मधु पान।
रहिमन दाबे ना दबे जानत सकल जहान ॥१११॥
गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै रहिमन बहरी बाज।
फेरि आइ बंधन परै पेट अधम के काज ॥११२॥
काज परे कछु और है काज सरे कछु और।
रहिमन भाँवर के भये नदी सेरावत मौर ॥ ११३॥
रहिमन चाक कुम्हार को माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि के चहै नाँद लइ लेइ ॥ ११४ ॥
अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं झूठे मिलैं न राम ॥ ११५ ॥
रहिमन कोऊ का करै ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखनहार है माखन चाखनहार ॥ ११६ ॥
रहिमन विपदा तू भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानिपरत सबकोय ॥११७॥
साधु सराहै साधुता जती जोखिता जान।
रहिमन साँचे सूर को बैरी करै बखान ॥ ११८ ॥
करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
मानो टेरत बिटप चढ़ि मोहिं समान को कूर ॥११९॥
यों रहीम सुख होत है उपकारी के अँग।
बाँटनवारे के लगै ज्यों मेहँदी को रंग ॥१२०॥
भूप गनत लघु गुनिन को गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि ते भूमि लौं लखो तो एकै रूप ॥१२१॥
तैं रहीम मन आपनो कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै कृष्णचन्द्र की ओर ॥ १२२ ॥

मांगे मुकुरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ।
मांगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ ॥ १२३ ॥
छिमा बड़ेन को चाहिये छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात ॥१२४॥

सोरठा

रहिमन मोहि न सुहाय अमी पियावत मान बिन।
जो विष देय बुलाय प्रेम सहित मरिबो भलो ॥१२५॥

बरवै नायिका भेद

लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार ॥ १ ॥
लागेउ आनि नबेलियहि मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा दृग तिरछान ॥ २ ॥
कवन रोग दुहुँ छतियाँ उपजेउ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा लगि जनु जाय ॥ ३ ॥
औचक आय जोबनवाँ मोहिं दुख दीन।
छुटि गो संग गोइयवाँ नहिं भल कीन ॥ ४ ॥
भोरहिं बोलि कोइलिया बढ़वत ताप।
घरि घरि एक घरिअवा रहु चुप चाप ॥ ५ ॥
बाहर लैके दियवा बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुँचत देति बुझाय ॥ ६ ॥
होइ कत आइ बदरिया बरखहिं पाथ।
जैहौं घन अमरैया सुगना साथ ॥ ७ ॥
जैहौं चुनन कुसुमिआँ खेत बड़ि दूर।
नौवा केरि छाहरिया मुहिं सँग कूर ॥ ८ ॥

जस मदमातल हथिया हुमकत जाति।
चितवति जात तरुनियाँ मन मुसुकाति ॥ ६ ॥
खीन मलिन बिषभैया औगुन तीन।
मोहिं कहत बिधुबदनी पिय मतिहीन ॥ १० ॥
ते अब जासि बेइलिया बरु जरि मूल।
बिन पिय सूल करेजवा लखि तुव फूल ॥ ११ ॥
का तुम जुगल तिरियवा झगरत आय।
पिय बिन मनहुँ अटरिया मुहि न सुहाय ॥ १२ ॥
कासों कहों सँदेसवा पिय परदेसु।
लगेहु चहत नहिं फूले तेहि बन टेसु ॥ १३ ॥
पिय आवत अँगनैया उठि कै लीन।
साथे चतुरु तिरियवा बैठक दीन ॥ १४ ॥
कठिन नींद भिनुसरवा आलस पाय।
धन दै मूरख मितवा रहल लोभाय ॥ १५ ॥
सुभग बिछाइ पलँगिया अंग सिँगार।
चितवति चौंकि तरुनियाँ दै दृग द्वार ॥ १६ ॥
बन घन फूलहि टेसुआ बगियनि बेलि।
चले बिदेश पियरवा फगुआ खेलि ॥ १७ ॥
पीतम इक सुमिरिनियाँ मुहि देइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा करब निबाहु ॥ १८ ॥
लखि अपराध पियरवा नहिं रिस कीन।
बिहँसत चंदन चउकिया बैठक दीन ॥ १६ ॥
करत न हिय अपरधवा सपनेहु पीय।
मान करन की बिरियाँ रहिगो हीय ॥ २० ॥
लै कर सुघर खुरुपिया पिय के साथ।
छइबे एक छतरिया बरसत पाथ ॥ २१ ॥

सघन कुंज अमरैया सीतल छाँह।
झगरति आइ कोइलिया पुनि उड़ि जाइ ॥ २२ ॥
खेलत जानिसि टोलवा नन्द किसोर।
छुइ वृषभानु कुँअरिया होइ गइ चोर ॥ २३ ॥
पीतम मिले सपनवाँ भो सुख खानि।
आनि जगायेसि चेरिया भइ दुख दानि ॥ २४ ॥
पिय मूरति चितसरिया चितवति बाल।
चितवत अवध सबेरवा जपि जपि माल ॥ २५ ॥
बिरहिन और बिदेसिया भौ इक ठौर।
पिय मुख तकत तिरियवा चन्द चकार ॥ २६ ॥
सखियन कीन सिँगरवा रचि बहु भाँति।
हेरति नैन अरसिया मुरि मुसुकाति ॥ २७ ॥
छाकहु बइठ दुअरिया मीजहु पाय।
पिय तन पेखि गरमियाँ बिजन डोलाय ॥ २८ ॥
टूटि खाट घर टपकत टटिऔ टूटि।
पिय कै बाँह सिरहनवाँ सुख कै लूटि ॥ २६ ॥
ढीलि आँखि जल अँचवनि तरुनि सुगानि।
धरि खसकाइ घइलना मुरि मुसुकानि ॥ ३० ॥
बालम अस मन मिलयउँ जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया लइ बिलगानि ॥ ३१ ॥
पथिक आइ पनिघटवाँ कहत "पियाव"।
पैयाँ परउँ ननदिया फेरि कहाव ॥ ३२ ॥

शृंगार सोरठ

पलटि चली मुसुकाय दुति रहीम उजियाय अति।
बाती सी उसकाय मानो दीनी दीप की ॥ १ ॥

दीपक हिये छपाय नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय कुच लखिनिज सीसै धुनै २
गई आगि उर लाय आगि लेन आई जो तिय।
लागी नहीं बुझाय भभकि २ बरि बरि उठै ॥३॥

मदनाष्टक

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था।
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला ॥

केशवदास

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम काशीनाथ था। इनका जन्म सं० १६१२ के लगभग हुआ। ओड़छा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह इनका विशेष आदर करते थे। महाराजा बीरबल ने इनको केवल एक छंद पर छः लाख रुपये दिये थे। वह छंद यह हैः—

केसवदास के भाल लिख्यो बिधि रंक को अंक बनाय संवारयो।
धोये धुवै नहिँ छूटो छुटै बहु तीरथ जाय कै नीर पखारयो।
ह्वै गयो रंकते राव तबै जब बीरबली नृपनाथ निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रहयो मुख चारयो॥

केशवदास ने महाराज बीरबल के द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना अकबर से माफ़ करा दिया था। इनका शरीरांत सं० १६७४ के लगभग हुआ।

ये संस्कृत के भारी पंडित थे। इनकी कविता बहुत गूढ़ होती थी। इसी से प्रसिद्ध देव कवि ने इन्हे "कठिन काव्य का प्रेत" कहा है। और इनकी कविता के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि "कवि का दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई"।

इनके रचे हुये आठ ग्रंथ कहे जाते हैं। परंतु उनमें से चार बहुत प्रसिद्ध हैं—रामचन्द्रिका, कवि प्रिया, रसिक प्रिया और विज्ञान गीता। लोग कहते हैं कि रामचन्द्रिका इन्होंने तुलसी-दास जी के कहने से लिखी। रामचन्द्रिका महाकाव्य है। कविप्रिया अलंकार प्रधान ग्रंथ है, यह प्रवीणराय वेश्या के लिये लिखा गया था। प्रवीणराय काव्यकला में इनकी शिष्या थी॥ रसिकप्रिया शृंगार-प्रधान ग्रन्थ है, इसमें रसों का वर्णन है। विज्ञान गीता एक साधारण ग्रंथ है।

केशवदास महाकवि थे, इसमें संदेह नहीं। इनकी कोई कोई कविता अन्य कवियों की कविता की तरह सुनते ही समझ में नहीं आ जाती। उसके लिये कुछ विचार की आव-श्यकता पड़ती है। परंतु जितना ही उसे अधिक विचारिये, उतनी ही मिठास भी बढ़ती जाती है।

केशवदास रसिक भी एक ही थे। वृद्धावस्था में इन्होंने केशों की सफ़ेदी देखकर कहा—

केशव केसनि अस करी जस अरिहू न कराहिँ।
चंद्रबदनि मृग लोचनी बाबा कहि कहि जाहिँ॥

इससे प्रकट होता है कि वृद्ध होने पर भी इनका मन वृद्ध नहीं हुआ था।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

१

विप्र न नेगी कीजिये मूढ़ न कीजे मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कवित्त॥

२

धीरज मोचन लोचन लोल विलोकि कै लोककी लीकति छूटी।
फूट गये श्रुति ज्ञान के केशव आँख अनेक विवेक की फूटी॥
छोड़ि दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति छूटी।
त्यों न करै करतार उबारक जो चितवै वह बारवधूटी॥

३

तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाइ सुधाधर पान कै पाइ गहे तस हौं न गहौंगी॥
केसव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह तो न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहि कै आपनी धाय सों जाय कहौंगी॥

४

भूषण सकल घनसारही के घनश्याम, कुसुम कलित केशरही छवि छाई सी। मोतिन की लरी सिर कंठ कंठ माल हार, और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी॥ चंदन चढ़ाये चारु सुन्दर शरीर सब, राखी जनु सुभ्र शोभा बसन बनाई सी। शारदा सी देखियतु देखो जाइ केशोराइ ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाई में अन्हाई सी॥

५

मन ऐसो मन मृदु मृदुल मृणालिका के, सूत कैसो सुर ध्वनि मननि हरति है। दारयो कैसो बीज दाँत पाँत से अरुण ओठ, केशोदास देखि दृग आनँद भरति है॥ येरी मेरी तेरी मोहि भावत भलाई तातें, बूझति हौं तोहिं और बूझत डरति है। माखन सी जीभ मुख कंज सी कोमलता में काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है॥

६

'डित पुत्र, सुधी पतिनी जु पतिव्रत प्रेम परायण भारी।
जानै सबै गुण, मानै सबै जग, दान विधान दया उर धारी।
केशव रोगनहीं सो वियोग, संयोग सुभोगन सों सुखकारी।
साँच कहे, जग माँह लहे यश, मुक्ति यहै चहुँ वेद विचारी॥

७

बाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित, मित्र मति हीन, सूम स्वामी उर आनिये॥ पर वश भोजन, निवास वास कुकुरन, वरषा प्रवास, केशोदास दुखदानि ये। पापिन के अंग संग, अंगना अनंग वश अपयश युत सुत, चित हित हानि ये। मूढ़ता बुढ़ाई, व्याधि, दारिद, झुठाई, आधि, यहई नरक नरलोकनि बखानिये॥

८

कैटभसों नरकासुरसों पल में मधुसों मुरसों जिन मार्‌यो।
लोक चतुर्दश केशव रक्षक पूरण वेद पुरान विचार्‌यो।
श्री कमला कुच कुंकुम मंडित पंडित देव अदेव निहार्‌यो।
सो कर माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसार्‌यो॥

९

जौं हौं कहौं रहिये तो प्रभुता प्रकट होत चलन कहौं तौ हित हानि नाहीं सहनो। भावै सो करहु, तौ उदास भाव प्राणनाथ साथ लै चलहु कैसे लोक लाज बहनो॥ केशोदास की सौं तुम सुनहु छबीले लाल चलेही बनत जो पै नाहीं राज रहनो। जैसियै सिखाओ सीख तुमहीं सुजान प्रिय तुमहीं चलत मोहिं जैसो कछु कहनो॥

१०

धिक मंगन बिन गुणहिं गुण सु धिक सुनत न रीझिय।
रीझ सु धिक बिन मौज मौज धिक देत सु खीझिय॥

दीबो धिक बिन साँच साँच धिक धर्म न भावै।
धर्म सु धिक बिन दया दया धिक अरि कहँ आवै॥
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहँ न उदार मति।
मति धिक केशव ज्ञान बिनु, ज्ञान सु धिक बिनु हरिभगति॥

११

पातक हानि पिता सँग हारिबो गर्व के शूलनि तें डरिये जू।
तालनि को बँधिबो बध रोर को नाथ के साथ चिता जरियेजू॥
पत्र फटें ते कटे रिन केसव कैसहू तीरथ में मरियेजू।
नीकी लगै ससुरारि की गारि औ डाँड़ भलोजो गया भरिये जू॥

१२

पाप की सिद्धि सदा ऋण वृद्धि सुकीरति आपनी आप कही की।
दुःख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की संतति संतत फीकी॥
बेटी को भोजन भूषन राँड़ को केशव प्रीति सदा परनी की।
युद्धमें लाज दया अरि को अरु ब्राह्मण जाति सों जीति न नीकी॥

१३

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनों सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै॥
फूलि सरोज रहे तिन ऊपर रूप निरूपन चित चले च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै॥

१४

दुरिहै क्यों भूषण बसन दुति यौवन की देह हूँ की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति हैं। नाहक सुवास लागे ह्वै है कैसी केशव सुभावती की वास भौंर भीर फारे खाति हैं॥ देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हूं, लालनि के दृग देखिबे को ललचाति हैं। चालि है क्यों चंद मुखी कुचन के भार भये कचन के भार ही लचकि लङ्क जाति हैं॥

१५

भूत की मिठाई कैसी साधु की झुठाई जैसी स्यार की ढिठाई ऐसी छीण छहू ऋतु है। धीरा कैसो हास केसोदास दासी कैसो सुख सूर की सी सङ्क अङ्क रङ्क कैसो वितु है॥ सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान गोरी गोरा कैसो मान मेरे जान समुदितु है। कौने है सँवारी वृषभानु की कुमारी यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है॥

१६

किधौं मुख कमल ये कमला की ज्योति होति किधौं चारु मुख चन्द्र चन्द्रिका चुराई है। किधौं मृग लोचनि मरीचिका मरीचि कैधों रूप की रुचिर रुचि सुन्त्रि सों दुराई है॥ सौरभ की सोभा की दसन घन दामिनी की केसव चतुर चित ही की चतुराई है। एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हाँसी मेरी मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है॥

१७

बन में वृषभानु कुमारि मुरारि रमे रुचि सों रस रूप पिये।
कल कूजत पूजन काम कला विपरीति रची रति केलि हिये॥
मणि सोहत श्याम जराई जरी अति चौकी चलै चल चार हिये।
मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शनि अङ्क लिये॥

१८

चंचल न हूजै नाथ अंचल न खैंचो हाथ, सोवै नेक सारि-कऊ शुक तौ सुवायो जू। मन्द करो दीप द्युति चन्द मुख देखियत, दौर के दुराय आऊँ द्वार तो दिखायो जू॥ मृगज मराल बाल बाहिरे बिड़ार देऊँ, भायो तुम्हैं केशव सु मोहूँ मन भायो जू। छल के निवास ऐसे बचन विलास सुनि, सौगुनो सुरत हूँ तें श्याम सुख पायो जू॥

१९

पाँइ परै मनुहार करै पलका पर पाँइ धरै भय भीने।
सोइ गई कहि केशव कैसहू कोर करोरहूँ सौंहन कीने॥
साहस कै मुख सों मुख द्वै छिन में हरिमान महा सुख लीनें।
एक उसाँसही के उससे सिगरेई सुगन्ध बिदा करि दीनें॥

२०

प्रथम सकल शुचि मज्जन अमल वास, जावक सुदेश केश पाश को सम्हारिबो। अङ्गराग भूषण विविध मुख वास राग, कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो॥ बोलनि हँसनि मृदु चलनि चितौनि चारु, पल पल प्रति पतिव्रत परि पारिबो। केशव दास सो बिलास करहु कुँवरि राधे, इहि बिधि सोरह शृँगारनि शृँगारिबो॥

२१

भाव जहाँ व्यभिचारी वे पै रमै पर नारी, द्विजैगन दंड धारी चोरी पर पीर की। मानिनीनहीं के मन मानियत मान भंग, सिन्धुहि उलाँघि जाति कीरति शरीर की॥ भूलै तो अधोगति न पावत है केशव दास, मीचही सोँ है वियोग इच्छा गंग नीर की॥ बन्ध्या बासनानि जानु बिधिना सो बाटि-मिकी, ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की॥

२२

कवि कुल ही के श्रीफलन उर अभिलाष समाज।
तिथिही को छय होत है रामचन्द्र के राज॥

२३

लूट्रिबे के नाते पाप पट्टनै तो लूटियत, तोरिबे को मोह तरु तोरि डारियतु है। घालिबे के नाते गर्ब घालियत देवन के, जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है॥ बाँधिबे के नाते ताल

बाँधियत केशौदास, मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है। राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु, हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है॥

२४

कुटिल कटाक्ष कठोर कुच एकै दुःख अदेय।
छिस्वभाव अश्लेष में ब्राह्मण जाति अजेय॥

रसखान

रसखान दिल्ली के पठान थे। इनका जन्म सं० १६४० और मरण १६८५ के लगभग कहा जाता है।

युवावस्था में ये एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। रात दिन उसके साथ फिरा करते थे, यहाँ तक कि उसका जूठा भी खाते थे। लोग इनकी हँसी उड़ाते थे, परन्तु ये किसी की परवाह न करते थे। एकबार चार वैष्णव आपस में बातचीत करते समय कहते थे कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगाना चाहिये, जैसा रस-खान ने बनिये के लड़के में लगाया है। रसखान ने इसे सुन लिया। ये वैष्णवों से मिले। वैष्णवों ने इनके सामने ही कृष्ण का गुण कीर्तन किया। उसी समय से ये कृष्ण के उपासक हो गये। मुसलमान होने पर भी गोस्वामी बिट्ठल-नाथ जी ने इनको अपना शिष्य कर लिया। और इनकी गिनती गोसाईं जी के २५२ मुख्य शिष्यों में होने लगी। २५२ वैष्णवों की वार्ता में इनका भी चरित्र लिखा है।

ये बड़े प्रेमी।जीव थे। इश्क का लुत्फ तो इन्होंने नौजवानी ही से उठाया था इससे प्रेम की महिमा ये भलीभाँति समझत थे। इन्होने सं० १६७१ में प्रेम बाटिका नामक दोहों का एक ग्रन्थ बनाया। उसके कुछ दोहे सुनिये—

दम्पति सुख अरु विषय रस पूजा निष्ठा ध्यान।
इनतें परे बखानिये शुद्ध प्रेम रसखान ॥ १ ॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत इन में सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं अकथ कथा सविसेह ॥ २ ॥
इक अंगी बिनु कारनहिं इकरस सदा समान।
गनै प्रियहिं सरवस्व जो सोई प्रेम प्रमान ॥ ३ ॥
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानौं सोय ॥ ४ ॥
अति पतरो अति दूर प्रेम कठिन सब तें सदा।
नित इकरस भरपूर जग में सब जान्यो परै ॥५॥

अपने विषय में इन्होंने यह लिखा है :—

देखि ग़दर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की ठसक छोड़ि रसखान ॥ १ ॥
प्रेम निकेतन श्री बनहिं आय गोवर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहिकै जुगल सरूप ललाम ॥ २ ॥

इनकी कविता में प्रेम की प्रधानता है। भक्त और प्रेमी होकर शृंगार रस पर भी इन्होंने बड़ी ललित कविता की है। इनके रचे हुये सुजान रसखान में से कुछ छन्द चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

मानस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥

पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौखगहौंतौबसेरो करौंमिलि कालिंदी कूलकदम्बकीडारन॥१॥
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौनिधि को सुखनन्द की गायचराइबिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बागतड़ाग निहारौं।
कोटिनहूँ कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं॥२॥
आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहूँ तू न गई वहि ठैंया।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥३॥
सोहत हैं चंदवा सिर मैार के जैसियै सुन्दर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल बिराजति जैसी हिये बनमाल लसी है॥
रसखानिबिलोकतबौरीभई दृगमूँदिकै ग्वालिपुकारि हँसी है।
खोलिरी घूँघट खोलौं कहा वह मूरति नैनन माँझबसी है॥४॥
सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
जाहि हिये लखि आनँद ह्वै जड़ मूढ़ हिये रसखानि कहावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥५॥
तेरी गलीन में जा दिन तें निकसे मन मोहन गोधन गावत।
ये ब्रजलोग सों कौनसी बात चलाइ कै जो नहिँ नैन चलावत॥
वे रसखानि जो रीझिहैं नेकुतौरीझिकै क्यों बनवारिरिझावत।
बावरीजोपैकलङ्कलग्योतौनिसङ्क ह्वै क्योंनहीं अंकलगावत॥६॥
दानी भये नए माँगत दान हो जानि हैं कंस तौ बंधन जै हो।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहो॥
रोकत हो बन में रसखानि चलावत हाथ घनो दुख पैहो।
जैहै जो भूषन काहू तियाको तो मोल छलाके लला न बिकैहो॥७॥

पृथ्वीराज और चम्पादे

पृथ्वीराज बीकानेर के राजा राजसिंह के भाई थे, और अकबर के दरबार में रहा करते थे। कहा जाता है कि इन्हीं की रानी किरणमयी अत्यंत सुन्दरी थी, जिसे नवरोज के अवसर पर अकबर ने एक दूती के द्वारा बहका कर एक कोठरी में बन्द कर दिया, और स्वयं उस कोठरी में घुस कर वह बलात्कार किया चाहता था। पर किरणमयी ने उस भारत के शाहंशाह को उठा कर पृथ्वी पर दे मारा और कटार निकाल कर उसके गले पर रख दी। अकबर ने जब माता कह कर क्षमा माँगी तब कहीं उसके प्राण बचे।

प्रसिद्ध देशभक्त महाराणा प्रतापसिंह जब अकबर से विद्रोह कर के राज्य छोड़ कर बनों में घूमते थे, तब एक दिन उनकी कन्या के हाथ से एक जङ्गली बिलाव घास की रोटी, जो वह खा रही थी, छीन कर ले गया। कन्या रोने लगी। इस घटना का राणाजी के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अकबर के पास संधि का प्रस्ताव लिख भेजा।

टाड साहब लिखते हैं—"प्रताप का पत्र पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा दी कि राज्य भर में नाच गान हो, और आनन्द मनाया जावे। मारे हर्ष के उसने वह पत्र पृथ्वीराज को दिखलाया। पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश राजसिंह के छोटे भाई थे, जो दुर्भाग्य से मुगलों के यहाँ कैद थे। वे बड़े वीर साहसी और स्वदेश प्रेमी थे। वीर ही नहीं बल्कि वे एक अच्छे कवि भी थे। वे अपनी कवित्व-शक्ति से मनुष्य का मन मोह सकते थे, और आवश्यकता पड़ने पर

तलवार लेकर युद्ध में भी विजय प्राप्त कर सकते थे। लड़कपन से ही वे प्रतापसिंह की वीरता, उदारता और स्वदेश-भक्ति पर मोहित होकर उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनको विश्वास नहीं था, कि प्रतापसिंह ने अकबर को ऐसा पत्र लिखा होगा। अतएव स्वाभाविक निडरता से उन्होंने अकबर से कहा—"मैं प्रताप को भलीभाँति जानता हूँ। यह पत्र उनका नहीं है। और तो क्या, यदि आप अपना ताज भी दे दें तो भी तेजस्वी प्रताप आपके वश में नहीं होंगे।" इसके पश्चात् उन्होंने अकबर की अनुमति से प्रतापसिंह को एक पत्र लिखा। पत्र कविता में था। उस कविता को अब भी कभी कभी राजपूत लोग बड़े आनंद से गाते हैं।"

पत्र की मूल प्रति कहीं नहीं मिलती। उसके कुछ दोहे प्रसिद्ध हैं, उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

> धर बाँकी दिन पाधरा मरद न मूकै माण।
> घणां नरिन्द्रा घेरियो रहै गिरन्दाँ राण॥ १॥

जिसकी भूमि अत्यंत विकट है, और दिन अनुकूल है। जो वीर अभिमान को नहीं छोड़ता, वह महाराणा बहुत राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ी में निवास करता है।

> पातल राण प्रवाड़ मल बाँकी घड़ा बिभाड़।
> खूँदाड़ै कुण है खुराँ तो ऊभाँ मेवाड़॥ २॥

हे विकट सेनाओं के विध्वंस करने वाले और युद्ध में मल्ल महाराणा प्रतापसिंह! तेरे खड़े रहते मेवाड़ को घोड़ों के खुरों से खुँदाने वाला कौन है?

> माई एहा पूत जण जेहा राण प्रताप।
> अकबर सूतो ओधकै जाण सिराणै साँप॥ ३॥

हे माता ! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा राणा प्रताप है। जिसको अकबर, सिरहानेका साँप जानकर सोता हुआ चौंक उठता है।

अहरे अकबरियाह तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह राण बिना सह राजवी ॥४॥

ऐ अकबर, तेरा तेज देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, जिसके सामने महाराणा के सिवाय सब राजा लोग झुक गये।

सह गावड़ियो साथ एकण बाड़ै बाड़ियो।
राण न मानी नाथ ताँड़ै साँड़ प्रतापसी ॥५॥

हे अकबर ! तू ने गाय रूपी सब राजाओं को एक बाड़े में इकट्ठा कर लिया; परन्तु साँड़ रूपी प्रतापसिंह तेरी नाथ को नहीं मानकर गरज रहा है।

पातल पाघ प्रमाण साँची साँगा हर तणी।
रही सदा लग राण अकबर सूँ ऊभी अणी ॥६॥

महाराणा संग्रामसिंह के पोते प्रतापसिंह की पगड़ी ही गिनती में सच्ची है, जो अकबर के सामने अनम्र होकर उच्च रही।

चोथो चीतोड़ाह बाँटो बाजंती तणो।
माथै मेवाड़ाह थारै राण प्रतापसी ॥ ७ ॥

हे चित्तौड़ के स्वामी महाराणा, प्रतापसिंह ! हे मेवाड़-पति ! पगड़ी तेरे ही सिर पर है।

अकबर समद अथाह तिहँ डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिण माहँ पोयण फूल प्रतापसी ॥८॥

अकबर रूपी अथाह समुद्र में हिन्दू तुरुक सब डूब गये। परन्तु मेवाड़ के स्वामी महाराणा प्रताप उसमें कमल के फूल के समान रहे।

अकबरिये इक बार दागल को सारो दुनी।
अणदागल असवार चेटक राण प्रतापसी ॥९॥

अकबर ने एक ही बार में सारी दुनिया को कलंकित कर दिया। परन्तु चेटक घोड़े के असवार राणा प्रताप निष्कलंक रहे।

अकबर घोर अँधार ऊँघाणाँ हिन्दू अवर।
जागै जगदातार पोहरेराण प्रतापसी ॥१०॥

अकबर रूपी घोर अंधकार में सब हिन्दू सो गये। परन्तु जगत् का दाता राणा प्रताप (धर्म-धन की रक्षा केलिये) पहरे पर खड़ा है।

हिन्दू पति परताप पत राखो हिन्दुआणरी।
सहो विपत संताप सत्यसपथ करि आपनी ॥११॥

हे हिन्दू पति प्रताप! हिन्दुओं की लज्जा रक्खो। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने केलिये सब कष्टों को सहो।

चम्पो चीतोड़ाह पोरस तणो प्रतापसी।
सौरभ अकबर साह अलियल आभड़िया नहीं १२॥

चित्तौड़ चम्पा है, प्रताप उसकी सुगंध हैं। अकबर रूपी भारा उसके पास नहीं फटकता। (चम्पा के फूल पर भौंरा नहीं बैठता)।

पातल जो पतसाह बोलै मुख हूता बयण।
मिहर पछम दिस माँह ऊगै कासप रावबत ॥१३॥

महाराणा प्रतापसिंह यदि बादशाह को अपने मुख से बादशाह कहें, तो कश्यप जी के संतान भगवान् सूर्य पश्चिम दिशा में उगें।

पटकूँ मूछाँ पाण कै पटकूँ निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण इण दो महली बात इक ॥१४॥

हे दीवान ! मैं अपनी मूँछ पर हाथ फेरूँ, या अपने शरीर को तलवार से काट डालूँ; इन दोनों में से एक बात लिख दीजिए।

राठौर-वीर पृथ्वीराज की कविता पढ़ कर प्रताप को इतना साहस हुआ कि मानों उन्हे दश हजार राजपूतों की सहायता मिल गई। वे अपनी प्रतिज्ञा * पर दृढ़ हुए। पत्र के उत्तर में महाराणा प्रताप ने नीचे लिखे दोहे भेजे थे :—

तुरुक कहासी मुख पतो इण तनसूँ इकलिंग।
ऊगै जाहीं ऊगसी प्राची बीच पतंग ॥ १ ॥

भगवान् एकलिंग की शपथ है, इस शरीर से अर्थात् प्रताप के मुख से बादशाह तुरुक ही कहलावेगा। और सूर्य का उदय जहाँ से होता है वहीं पूर्व ही में होगा।

खुसी हूँत पीथल कमध पटको मूछाँ पाण।
पछटण है जेतै पतो कमला सिर केवाण ॥२॥

हे वीर पृथ्वीराज, आप प्रसन्न होकर मूछों पर हाथ फेरिये। जब तक प्रतापसिंह है, तलवार को यवनों के सिर पर ही जानिये।

साँग मूँड़ सहसी सको सम जस जहर सवाद।
भड़ पीथल जीतो भलाँ बैण तुरक सूँ बाद ॥३॥

---

* प्रतापसिंह की प्रतिज्ञा यह थी कि वे कभी किसी यवन को सिर न झुकावेंगे। एक बार एक भाट अकबर के सामने मुजरा करने गया। सामने पहुँच कर उसने पगड़ी उतार ली। उसको नंगे सिर देख कर अकबर ने कारण पूछा, तब उसने कहा—यह पगड़ी महाराणा प्रतापसिंहजी ने अपने हाथ से दी है। मैं इसे आप के सामने झुकाना नहीं चाहता। यह सुन कर अकबर ने प्रतापसिंह की बड़ी प्रशंसा की।

राणा प्रताप सिर पर भाला सहेगा, क्योंकि बराबर वाले का यश विष के समान होता है। हे भट पृथ्वीराज, आप तुरुक से बातों के युद्ध में विजय पावें।

अकबर के साथ विवाद होने का पता जब पृथ्वीराज की रानी को लगा, तब उसने यह दोहा लिखकर पृथ्वीराज के पास भेजा—

पति जिद की पतसाह सूँ यहै सुणी मैं आज।
कहाँ पातल अकबर कहाँ करियो बड़ो अकाज॥

हे प्राणपति! मैंने आज यह सुना कि आपने महाराणा के सम्बंध में अकबर से विवाद किया है। कहाँ अकबर और कहाँ प्रताप! आपने बड़ा अनर्थ किया।

इसके उत्तर में पृथ्वीराज ने यह कवित्त लिख भेजा :—

जब तें सुनेहैं बैन तब तें न मोको चैन
पाती पढ़ि नैक सो बिलंब न लगावेगो।
लेकै जमदूत से समस्त राजपूत आज
आगरे में आठों याम ऊधम मचावेगो॥
कहै पृथिराज प्रिया नैंक उर धीर धरो
चिरजीवी राना श्री मलेच्छन भगावेगो।
मन को मरद मानी प्रबल प्रतापसिंह
बब्बर ज्यों तड़प अकब्बर पै आवेगो॥

अर्थ स्पष्ट है।

पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप के विषय में और भी बहुत से पद्य रचे थे, उनमें से एक गीत नीचे दिया जाता है :—

गीत

नर तेथ निमाणा निलजी नारी अकबर गाहक बट अबट।
चौहटै तिण जायर चीतोड़ो बेचै किम रजपूत बट॥

रोजायताँ तणैं नवरोजै जेथ मुसाणा जणो जण।
हिन्दू नाथ दिलीचे हाटे पतो न खरचै खत्री पण॥
परपँच लाज दीठ नह व्यापण खोटो लाभ अलाभ खरो।
रज बेचवाँ न आवे राणो हाटे मीर हमीर हरो॥
पेखे आपतणा पुरुषोत्तम रह अणियाल तणैं बल राण।
खत्र बेचियाँ अनेक खत्रियाँ खत्रवट थिर राखी खुमाण॥
जासी हाट बात रहसी जग अकबर ठग जासी एकार।
रह राखियो खत्री ध्रम राणै साराले बरतो संसार॥

जहाँ पर मानहीन पुरुष और लज्जाहीन स्त्रियाँ हैं, और अकबर जैसा ग्राहक है, उस चौपड़ के बाजार में जाकर चित्तौड़ का स्वामी राजपूती का भाग कैसे बेंचेगा ?

मुसलमानों के नवरोज के समय प्रत्येक व्यक्ति लुट गया। परंतु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह उस दिल्ली के बाजार में अपना क्षत्रियपन क्यों खरचे ?

वंशलज्जा से भरी दृष्टि पर अन्य का प्रपंच नहीं व्यापता। इसी से पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा और अलाभ को अच्छा समझ कर बादशाही दूकान पर रज बेचने के लिये हमीर का पोता राणा प्रतापसिंह कदापि नहीं आता।

अपने पुरुषाओं का उत्तम कर्तव्य देखते हुये महाराणा ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रक्खा और अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को विक्रय कर डाला।

ठग रूपी अकबर भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और हाट भी उठ जायगी। परंतु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रिय धर्म में रह कर उस धर्म को केवल राणा प्रताप ही ने रक्खा; अब सब उसे काम में लाओ।

पृथ्वीराज बड़े रसज्ञ कवि थे। उनकी पहली रानी लालादे भी कविता करती थी। ऐसी रसमयी रमणी के साथ कवि पृथ्वीराज का दिन बड़े चैन से कटता था। परन्तु दुर्भाग्य से लालादे का भरी जवानी में स्वर्गवास हो गया। जब उसकी देह चिता पर जल रही थी तब पृथ्वीराज ने कहा :—

तो राँध्यों नहि खावस्याँ रे ! बासदे निसड्ड।
म्हो देखत तू बालिया लाल रहंदा हड्ड॥

अर्थात्, ऐ आग ! मैं तेरा राँधा हुआ कोई पदार्थ नहीं खाऊँगा। तूने मेरे देखते ही लालादे को जला दिया। और उसका हाड़ ही शेष रहा।

उस दिन से वे आग की पकी हुई कोई चीज नहीं खाते थे। जब वे बहुत दुर्बल हो गये, तब लोगों ने समझा कर उनका विवाह जैसलमेर के राव लहरराज की बेटी चम्पादे से कराया। चम्पादे बड़ी ही सुन्दरी और प्रसन्न मुख थी। लालादे से भी वह गुण और रूप में बढ़ कर थी। पृथ्वीराज उसको बहुत प्यार करते थे। पति की संगति से चम्पादे ने भी कविता करनी सीख ली थी।

एक दिन पृथ्वीराज बालों में कंघो कर रहे थे। चम्पादे उनके पीछे खड़ी थी। पृथ्वीराज ने दाढ़ी में से एक सफ़ेद बाल निकाल कर फेंक दिया। तब चम्पादे मुँह फेर कर हँसने लगी। पृथ्वीराजने दर्पण में उसकी परछाई देखकर पीछे देखा और फिर लज्जित होकर कहा—

पीथल धोला आवियाँ बहुली लागी खोड़।
पूरे जोबन पदमणी ऊभी मूँह मरोड़॥
पीथल पली टमुकियाँ बहुली लग गई खोड़।
स्वामीनी हाँसा करे ताली दे मुख मोड़॥

पीथल पली टमुक्कियाँ बहुली लागी खोड़।
मरवण मत्त गयंद ज्यों ऊभी मुक्ख मरोड़॥

यह सुना कर चम्पादे ने पृथ्वीराज के मन की ग्लानि मिटाने के लिये कहा—

प्यारी कहे पीथल सुनो धोलाँ दिस मत जोय।
नराँ, नाहराँ, डिगमराँ पाकाँही रस होय॥
खेड़ज पक्काँ धोरियाँ पंथज गउघाँ पाव।
नराँ तुरंगा बन फलाँ पक्काँ पक्काँ साव॥

इसी प्रकार इन दोनों, राजा रानी, का जीवन बड़े आनंद से बीता।

उसमान

उसमान गाजीपुर के रहने वाले थे। इन के पिता का नाम शेख हसन था। ये जहाँगीर बादशाह के समय में हुये। संवत् १६७० में इन्होंने चित्रावली नाम की एक प्रेम-कहानी लिखी, जो दोहा चौपाइयों में है। सुनते हैं, इन्होंने और भी कुछ ग्रन्थ लिखे हैं। इनके जन्म मरण के समय का ठीक ठीक पता नहीं चलता। चित्रावली की कथा बड़ी मनोहर है। उस में चित्रावली की वाटिका का वर्णन, उसका नखसिख, विरह, षटऋतु और बारह मासा आदि देखने योग्य है। कुँवर ढूँढ़न खंड में कवि ने कितने ही देशों और प्रदेशों का वर्णन किया है। सब से अचम्भे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अँगरेजों का भी वर्णन किया है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन १६१२ में सूरत में अपना

गुदाम बनाया था, और सन् १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है। गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रहकर अँगरेजों के विषय में इतनी जानकारी रखना कवि के लिये साधारण बात नहीं है। हम यहाँ का० ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित चित्रावली से कुँवर ढूँढ़न खंड का कुछ अंश उद्धृत करते हैं और उसी पुस्तक से कुछ उत्तम दोहे भी प्रस्तुत करते हैं :—

चित्रावली

जिन पच्छूँ दिस कीन्ह पयाना पहिलहिँ गा सो देस मुलताना।
देखेसि सिंधी लोग सबाईं महिरावन सब सेवहिं साईं॥
हेरेसि ठट्ठा नगर सुहावा बिहँग हरिन सेवैं गंजावा।
काबुल हेरि मोगल कर देसा जहाँ पुहमि पति होइ नरेसा॥
देखेसि रूम सिकंदर केरा स्याम रहा होइ सकल अँधेरा।
देखेसि मक्का विधि अस्थाना हीय अंध तें पाहन जाना।
हाजी सँग मिलि गयउ मदीना का भा गये जो साफ न सीना॥
गा बगदाद पीर के तीरा जेहि निहचै तेहि सँग हमीरा।
इस्ताम्बोल मिसर पुनि हेरा गा लदाख लहु कीन्हेसि फेरा॥
दखिन देस को जे पगु धारा चला ताकि सो लंक पहारा।
पहिलेहि गै हेरेसि गुजराता सुन्दर धनी लोग सुख राता॥
गयो जाम जहँ कच्छी होई लोग सुरूप सुखी सब कोई।
बलंदीप देखा अँगरेजा जहाँ जाइ नहिं कठिन करेजा॥
ऊँच नीच धन संपति हेरा मद बराह भोजन जिन केरा।
जहाँ जाइ उहँ बन्दर साजा लगा संग चढ़ि गयउ जहाजा॥

दोहे

"मान" करहु जो करि सकहु कथनी अकथ अपार।
कथै न कर कछु आवई करनी करतब सार॥ १॥

कौन भरोसा देह का छाड़हु जतन उपाइ।
कागद की जस पूतरी पानि परे घुलि जाइ ॥ २ ॥
तब लहु सहिये बिरह दुख जब लगि आव सो बार।
दुःख गये तब सुक्ख है जानै सब संसार ॥ ३ ॥
सब कहँ अमिरित पाँच है बंगाली कहँ सात।
केला, काँजी, पान, रस साग, माछरी, भात ॥ ४ ॥
छत्री सुनि जो ना करे तिय अरु गाय जोहारि।
पुहुमी कुल गारी चढ़ै सरग होइ मुख कारि ॥ ५ ॥
लोयन जाहि कटाच्छ सर मारि प्रान हरि लीन्ह।
अधर बचन ततखिन दोऊ अमिय सींचि जिउ दीन्ह ॥६॥
कहाँ सो विक्रम सकबँधी कहाँ सो राजा भोज।
हम हम करत हेराइगे मिला न खोजे खोज ॥ ७ ॥

मुबारक

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म सं० १६४० में हुआ। ये अरबी फ़ारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनकी कविता बड़ी सरस है। इनका रचा हुआ अलक शतक और तिल शतक प्रकाशित हो चुका है। और भी बहुत से स्फुट छंद मिलते हैं।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

कान्हको बाँकी चितौनि चुभी झुकि काल्हिही झाँकी हैं ग्वालि गवाछनि। देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि ओछे फिरै उभरै चित जा छनि॥ मारयो सँभार हिये में मुबारक यै सहजै कजरारे मृगाछनि। सींक लै काजर देरी गँवारिनि आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि ॥ १ ॥

पानिप के पुंज सुघराई के सदनसुख
सोभा के समूह और सावधान मौज के।
लाजन के बोहित प्रमोहित प्रमोदन के
नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के॥
दया के दिवान पतिव्रता के प्रधान
पूरे नैन ये मुबारक विधान नवरोज के।
सफर के सिरताज मृगन के महाराज
साहब सरोज के मुसाहब मनोज के॥ २॥
कनक बरन बाल नगन लसत माल
मोतिन के माल उर सोहैं भली भाँति है।
चन्दन चढ़ाइ चारु चंदमुखी मोहिनी सी
प्रात ही अन्हाइ पगु धारे मुसुकाति है।
चूनरी विचित्र स्याम सजि कै मुबारक जू
ढाँकि नख सिख तें निपट सकुचाति है।
चन्द्रमैं लपेटि कै समेटि के नखत मानो
दिन को प्रणाम किये राति चली जाति है॥३॥

अलक वर्णन

अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ़।
खुस नवीस मुनसी मदन लिख्यो काँच पर क़ाफ़॥१॥
अलक डोर मुख छवि नदी बेसरि बंसी लाइ।
दै चारा मुकतानि को मो चित चली फँदाइ॥ २॥
जगी मुबारक तिय बदन अलक ओप अति होइ।
मनो चंद के गोद में रही निसा सी सोइ॥ ३॥
लगि द्रुग अंजन ढिग अलक देत मुबारक मोद।
जनु साँपिनि सुत आपनो भेंटति भरि भरि गोद॥ ४॥

चिबुक कूप में मन पस्यो छवि जल तृषा विचारि।
कढ़त मुबारक ताहि तिय अलक डोर सी डारि ॥ ५ ॥

तिल वर्णन

सब जग पेरत तिलन को थक्यो चित्त यह हेरि।
तव कपोल को एक तिल सब जग डास्यो पेरि ॥ १ ॥
चिबुक कूप रसरी अलक तिल सु चरस दृग बैल।
बारी बैस शृंगार की सींचत मनमथ छैल ॥ २ ॥
मन जोगी आसन कियो चिबुक गुफा में जाय।
रह्यो समाधि लगाय कै तिल सिल द्वारे लाय ॥ ३ ॥
चिबुक सरूप समुद्र में मन जान्यो तिल नाव।
तरन गयो बूड्यो तहाँ रूप कहर दरियाव ॥ ४ ॥
गोरी के मुख एक तिल सो मोहिं खरो सुहाय।
मानहु पंकज की कली भौंर विलंब्यो आय ॥ ५ ॥

हरिनाथ

हरिनाथ नरहरि के पुत्र थे। शाहजहाँ बादशाह की इन पर बड़ी कृपा रहती थी। शाहजहाँ के सिवाय अन्य राजा महाराजाओं के यहाँ भी इनका अच्छा मान था, और इनको विदाई में घोड़े, हाथी, रथ, पालकी और गाँव आदि मिलते थे।

एक बार आमेर के राजा सवाई मानसिंह की प्रशंसा में इन्होंने नीचे लिखे दोहे पढ़कर एक लाख रुपया दान पाया—

बलि बोई कीरति लता कर्ण करी द्वै पात।
सींची मान महीपने जब देखी कुम्हिलात ॥ १ ॥
जाति जाति ते गुन अधिक सुन्यो न कबहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुबर तरे हेला दे नृप मान ॥ २ ॥

जब रुपया लेकर हरिनाथ दरबार से घर की ओर चले, मार्ग में एक ब्राह्मण मिला। उसने यह दोहा कहा—

दान पाय दोई बढ़े की हरि की हरिनाथ।
उन बढ़ि ऊँचे पग किये इन बढ़ि ऊँचे हाथ ॥

इस दोहे से प्रसन्न हो हरिनाथ ने सब धन धान्य जो कुछ पाया था, उस ब्राह्मण को दे दिया। और आप खाली हाथ घर चले गये। एक बार हरिनाथ बाँधव गढ़ के बघेला रामचन्द्र के दरबार में गये। वहाँ राजा से दान सम्मान पाकर उन्होंने अपनी विपत्ति को संबोधन करके यह सवैया पढ़ा—

अजलौं तासों औ मोसों बिपत्ति बढ़ी रही प्रीतिकी रीति सहेली।
तो हित भार पहार मझाय कै आयके देखो है भूमि बघेली।
श्री हरिनाथ सो मान करै मति मेरी कही यह मानिलै हेली।
भेंटत हौं राजा राम नरेसहिँ भेंटि लै री फिर भेंट दुहेली ॥

इस सवैया से प्रसन्न होकर राजा ने हरिनाथ को एक लाख रुपया पुरस्कार दिया।

अब जरा हरिनाथ के चिड़ी खानेका वर्णन सुनिये—

बाजपेयी बाज सम पाँड़े पच्छिराज सम,
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के।
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी,
जुर्रा सम मिसिर नवैया नहीं माथ के।

नीलकंठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु,
चक्रवाक दुबे गुरु सुख शुभ साथ के।
येते द्विज जाने रङ्क रङ्क के मैं आने,
देस देस में बखाने चिरोखाने हरिनाथ के॥

प्रवीणराय

प्रवीणराय, वेश्या थी। यह ओड़छा के महाराज इन्द्रजीतसिंह के यहाँ रहती थी। केशवदास जी ने इसी के लिये "कवि-प्रिया" बनाई। यह उनकी शिष्या थी।

यह बड़ी सुन्दरी थी। वेश्या होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पढ़ी लिखी थी। कविता भी अच्छी करती थी। इसके गुणों की प्रशंसा सुन कर अकबर बादशाह ने इसे बुला भेजा। तब इसने इन्द्रजीतसिंह के पास जाकर यह सवैया कहा—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें निज स्वासनसों सिगरी मति गोई।
देह तजौं की तजौं कुलकानि हिये न लजौं लजिहैं सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामें रहे प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

इन्द्रजीतसिंह ने प्रवीणराय को अकबर के पास नहीं जाने दिया। इससे रुष्ट होकर अकबर ने इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया और प्रवीणराय को ज़बरदस्ती बुला भेजा। तब प्रवीणराय अकबर के दरबार में गई। वहाँ उसने अकबर से इस प्रकार प्रार्थना की—

बिनती राय प्रबीन की सुनिये शाह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं बारी बायस स्वान॥

अंग अनंग तहीं कुछ संभु सु केहरि लंक गयंदहि घेरे।
भौंह कमान तहीं मृग लोचन खंजनक्यों न चुगै तिल नेरे॥
है कच राहु तहीं उदै इन्दु सु कीर के बिंबन चोंचन मेरे।
कोऊ न काहू सो रोस करै सु डरै डर साह अकब्बर तेरे॥

प्रवीणराय की प्रवीणता देख कर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे इन्द्रजीत ही के पास रहने दिया। केशवदास के उद्योग और महाराजा बीरबल की प्रेरणा से इन्द्रजीत का एक करोड़ का जुरमाना भी माफ़ कर दिया।

कवि-प्रिया में केसवदास ने प्रवीणराय की प्रशंसा लक्ष्मी के समान की है। प्रवीणराय का लिखा कोई ग्रंथ नहीं मिलता। कुछ फुटकर छंद मिलते हैं। उनमें से कुछ यहाँ लिखे जाते हैं :—

१

सीतल समीर ढार, मंजन कै घनसार
अमल अंगौछे आछे मनसे सुधारिहौं।
दैहौं ना पलक एक लागन पलक पर
मिलि अभिराम आछी तपनि उतारिहौं॥
कहत "प्रवीनराय" आपनी न ठौर पाय
सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौं।
जबहीं मिलेंगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान प्यारे
दाहिनो नयन मूँदि तोहीं सौं निहारिहौं॥

२

ऊँचे ह्वै सुर बस किये सम ह्वै नर बस कीन।
अब पताल बस करन को ढरकि पयानो कीन॥

३

कमल कोक श्रीफल मँजीर कलधौत कलश हर।
उच मिलन अति कठिन दमक कछु स्वरस नील घर॥

सरवर शरवन हेम मेरु कैलाश प्रकाशन।
निशि वासर तरुवरहिँ काँस कुंदन दृढ़ आसन॥
इमि कहि प्रवीन जल थलअपक अविध भजित तियगौरिसँगो
कलि खलित उरज उलटे सलिल इंदु शीश इमि उरज ढँग॥

४

क्रूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौं चुनि दै चिरैयन को मूँदि राखों जलियों। सारँग में सारँग सुनाइ के "प्रवीन" वीना सारँग दै सारँग की जोनि करों थलियों॥ बैठी परयंक पै निसंक ह्वै के अंक भरौं करोंगी अधर पान मैन मत्त मिलियो। मोहिं मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय एहो चंद आज नेकु मंद गति चलियो॥

मलूकदास

बाबा मलूकदास जी का जन्म, लाला सुंदरदास कक्कड़ खत्री के घर में, बैसाख बदी ५, सं० १६३१ में, गाँव कड़ा, जिला इलाहाबाद में हुआ।

संवत् १७३९ में, १०८ वर्ष की अवस्था में मलूकदास जी ने चोला छोड़ा। शरीर छोड़ने से पहले ही इन्हों ने अपनी मृत्यु का ठीक ठीक समय अपने चेलों को बतला दिया था।

मलूकदास जी के पंथ की मुख्य गद्दियाँ कड़ा (प्रयाग) जैपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, फलापुर, नैपाल और काबुल में हैं।

मलूकदास जी की कविता ज्ञान से भरी है। उनके कुछ चुने हुये पद और साखियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

दर्द दिवाने बावरे अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे ऐसे मन धीरा॥
प्रेम पियाला पीवते बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते ज्यौं माता हाथी।
उनकी नजर न आवते कोइ राजा रंका।
बंधन तोड़े मोह के फिरते निहसंका॥
साहब मिल साहब भये कछु रही न तमाई।
कह मलूक तिस घर गये जहँ पवन न जाई॥ १॥

दीनदयाल सुनी जब तैं तब तें हिय में कछु ऐसी बसी है
तेरो कहाय के जाउँ कहाँ मैं तेरे हित की पट खैंच कसी है॥
तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी है।
एहो मुरारि पुकारि कहौं अब मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥२॥

भील कब करी थी भलाई जिय आप जान फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका?। गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ व्याध और बधिक निसाफ कहु तिसका?। नाग कब माला लैके बंदगी करी थी बैठ मुझको भी लगा था अजामिलका हिसका। एते बदराहों की बदी करी थी माफ जन मलूक अजाती पर एती करी रिस का?॥ ३॥

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहैं मलूक जहँ संतजन तहाँ रमैया जाय॥ ४॥
अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै सब के दाता राम॥५॥
गर्व भुलाने देह के रचि रचि बाँधे पाग।
सो देही नित देखि के चोंच सँवारे काग॥६॥

सेनापति

सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये अनूपशहर जिला बुलन्दशहर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम गंगाधर, पितामह का परशुराम और गुरु का नाम हीरामणि था। इनका जन्मकाल सं० १६४६ के आस पास माना जाता है। इनके मृत्युकाल का ठीक ठीक पता नहीं चलता। सेनापति ने स्वयं अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम
जिन कीने यज्ञ जाकी जग में बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाके
गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है॥
महाजान मनि विद्या दानहू ते चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित तें पाई पंडिताई है।
सेनापनि सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

सेनापति ने "काव्य कल्पद्रुम" और "कवित्त रत्नाकर" नामक दो ग्रन्थ रचे थे। इन्होंने अपनी कविता की स्वयं अपने मुँह से बड़ी प्रशंसा की है। वास्तव में इनकी कविता बड़ी चमत्कार पूर्ण होती थी। इनका षट् ऋतु वर्णन तो बड़ा ही अद्भुत हुआ है। हम इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत करते हैं—

केतो करो कोय पैये करम लिखोय ताते दूसरी न होय उर सोय ठहराइये। आधी ते सरस बीति गई है बरस अब दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये। चिन्ता अनुचित धरु धीरज

उचित सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये। चारि बर-दानि तजि पाय कमलेच्छन के पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये ॥ १ ॥

महा मोह कंदनि मैं जगत जकंदनि मैं दिन दुख दंदनि मैं जात है बिहाय कै। सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को सेनापति याही तें कहत अकुलाय कै। आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौ डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै। हरि जन पुंजनि मैं वृन्दावन कुंजनि मैं रहौं बैठि कहुँ तरवर तर जाय कै ॥ २ ॥

पान चरनामृत को गान गुन गानन को हरि कथा सुनै सदा हिये को हुलसिबो। प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की भाल भुज कंठ उर छापन को लसिबो। सेनापति चाहत है सकल जनम भरि वृन्दावन सीमा तें न बाहर निक-सिबो। राधा मन रंजन की सोभा नैन कंजन की माल गरे गुंजन की कुंजन को बसिबो ॥ ३ ॥

धातु सिलदारु निरधारु प्रतिमा को सार सो न करतार है बिचार बीच गेह रे॥ राखि दीठि अंतर जहाँ न कुछु अंतर है जीभ को निरंतर जपावत हरे हरे ॥ अंजन विमल सेनापति मन रंजन दै जपि कै निरंजन परम पद लेहरे। करि न संदेह रे वही है मन देहरे कहा है बीच देहरे कहा है बीच देहरे ॥ ४॥

नाहीं नाहीं करै थोरे माँगे सब देन कहै मंगन को देखि पट देत बार बार है। जिनके लखत भली प्रापति की घरी होत सदा सब जन मन भाय निरधार है। भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य कन कन जोरे दान पाट परिवार है। सेना-पति बचन की रचना बिचारि देखो दाता और सूम दोऊ कीन्हे एक सार है ॥ ५ ॥

नूतन जोवन वारी मिली ही जोवन वारी, सेनापति बन-बारी मन में विचारिये। तेरी चितवनि ताके चुभी चित वनिता के उचित वनि ताके भया के पग धारिये॥ सुधि ना निकेतन की चढ़ी उन के तन की पीर मीन केतन की जाइ कै निवारिये। तो तजि अनवरत वाके और न वरत कीजै लाल नव रत बाल न बिसारिये॥ ६॥

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है। अंग अंग भूषन बनाइ वृज भूषन जू बीरी निज कर कै खवाई अति हित है॥ ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है। चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सों कही प्रान पति! यह अति अनुचित है॥ ७॥

जो पै प्रानप्यारे परदेस को पधारे तातें विरह तें भई ऐसी ता तिय की गति है। करि कर ऊपर कपोलहि कमल नैनी सेनापति अनमनि बैठियै रहति है॥ कागहि उड़ावै कबौं कबौं करै सगुनौती कबौं बैठि अवधि के वासर गिनति है। पढ़ी पढ़ी पाती कबौं फेरि कै पढ़ति कबौं प्रीतम के चित्र में स्वरूप निरखति है॥ ८॥

जनक नरिन्द नन्दिनी को बदनारविन्द सुन्दर बखानो सेनापति बेद चारि कै। बरनी न जाइ जाकी नेकहू निकाइ लोनुराई करि पंकज निसंक डारे मारिकै॥ बार बार जाकी बराबरि को विधाता अब रचि पचि विधु को बनावत सुधारि कै। पूनो को बनाय जब जानत न वैसो भयो कुहू के कपट तब डारत बिगारि कै॥ ९॥

चल्यो हनुमान रामबान के समान जान सीता सोध काज दसकंधर नगर को। राम को जुहारि बाहु बल को सँभारि

करि सब ही के संसै निरवारि डारि डर को। लागी है न बार फाँदि पस्यो पारावार कौन सेनापति कविता बखाने वेग-धर को। खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच दूगनि को तारो दौरि मिलै दिनकर को॥ १०॥

रावन को बीर सेनापति रघुबीर जू की आयो है सरन छाँड़ि ताही मद अंध को। मिलत ही ताको राम कोप कै करी है ओप नाम जोय दुर्जन दलन दीनबंध को। देखो दान वीरता निदान एक दान ही में कीन्हे दोऊ दान को बखाने सत्य संध को। लंका दसकंधर की दीनी है विभीषन को संका विभीषन की सो दीनो दसकंध को॥ ११॥

बसंत

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं विलास संग श्याम रंग भई मानो मसि में मिलाये हैं। तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंज मलय पवन उपवन वन धाये हैं। सेनापति माधव महीना में पलास तरु देखि देखि भाव कविता के मन आये है। आधे अंग सुलगि सुलगि रहे आधे मानो विरही दहन काम कैला परचाये हैं॥ १२॥

केतक असोक नव चंपक बकुल कुल कौन धौं वियोगिन को ऐसो विकरालु है। सेनापति साँवरे की सूरत की सुरति की सुरति कराय करि डारतु विहालु है। दच्छिन पवन एती ताहू की दवन जऊ सूनो है भवन परदेश प्यारो लालु है। लाल हैं प्रवाल फूले देखत बिसाल जऊ फूले और साल पै रसाल उर सालु है॥ १३॥

ग्रीष्म

वृष को तरनि तेज सहसौ किरनि कर ज्वालन के आल

विकरालु बरसतु हैं। तचति धरनि जग जरत धरनि सीरी छाँह को पकरि पथी पंछी विरमतु हैं। सेनापति नेक दुपहरी के ढरत होतु धमका विषम ज्यों न पातु खरकतु हैं। मेरे जान पौनो सीरी ठौर को पकरि कोनो घरी एकु बैठि कहूँ घा मैं बितवतु हैं ॥१४॥

सेनापति तपन तपत उतपति तैसो छायो रति पति तातें विरह बरतु है। लुवन को लपटैं तें चहुँ ओर लपटैं पै ओढ़े सलिल पटै न चैन उपजतु है। गगन गरद धूँधि दसौ दिसा रही रूँधि मानो नभ भारको भसम बरसतु है। बरनि बताई छिति व्योम की तताई जेठ आयो आततताई पुटपाक सो करतु है ॥१५॥

पावस

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियाँ। धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी है दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ। आई सुधि बर की हिये में आनि खरकी तूँ मेरे प्रान प्यारी यह प्रीतम की बतियाँ। बीती औधि आवन की लाल मन भावन की डग भई बावन की सावन की रतियाँ ॥ १६ ॥

सेनापति उनये नये जलद सावन के चारिहूँ दिसान घुमरत भरे तोइ के। सोभा सरसाने न बखाने जात कहुँ भाँति आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ के। घन सो गगन छयो तिमिर सघन भयो देखि न परत गयो मानो रवि खोइ के। चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि मेरे जान याही तें रहत हरि सोइ के ॥ १७ ॥

शरद

विविध बरन सुर चाप से न दखियत मानो मनि भूषन उतरि धरे भेस हैं। उन्नत पयोधर बरसि रसु गिरि रहे नीके

न लगत फीके सोभा के न लेस हैं । सेनापति आये तें सरद रितु फूलि रहे आस पास कास खेत खेत चहूँ देस हैं । जीवन हरन कुंभजोनि के उदै ते भए बरषा विरिधता के सेत मानो केस हैं ॥ १८ ॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन हैं । फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन वन फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं ॥ उदित विमल चंद चाँदनी छिटकि रही राम कैसो जस अध ऊरध गगन है । तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब मानहुँ जगत छीर सागर मगन है १९ ॥

हेमंत

सूरे तजि भाजी बात कातिक में जब सुनी हिम की हिमाचल ते चमू उतरति है । आये अगहन कीनो गहन दहन हू को नितहुँ ते चली कहूँ धीर न धरति है । हिय में परी हैं हूल दौरि गहि तजी तूल अब निज मूल सेनापति सुमिरति है । पूस में तिया के ऊँचे कुच कनकाचल में गढ़ वै गरम भई सीत सों लरति है ॥ २० ॥

आयो सखी पूसौ भूलि कंत सो न रूसौ केलिही सौं मन मूसौ जीउ ज्यों सुख लहतु है । दिन की घटाई रजनी की अघ- टाई सीतताई हू को सेनापति बरनि कहतु है । याही ते निदान प्रात वेगि उदै होत नाहिं द्रोपदी के चीर कैसो राति को महतु है । मेरे जान सूरज पताल तपताले माँझ सीत को सतायो कहलाइ कै रहतु है ॥ २१ ॥

शिशिर

सिसिर में ससि को सरूप पावे सविताऊ घाम हुँ में चाँदनी की दुति दमकति है । सेनापति होति सीतलता है सहस

गुनी रजनी की झाँई बासर में झमकति है। चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि चकवा की छाती तजि धीर धसकति है। चंद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को ससि संक पंकजनी फूलि न सकति है॥ २२॥

सिसिर तुषार के बुखार से उखारतु है पूस बीते होत सून हाथ पाइ ठिरिकै। द्योस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ सेनापति गाई कछू सोचि कै सुमिरि कै। सीत ते सहस कर सहस चरन ह्वै के ऐसे जातु भाजि तम आवत है घिरि कै। जौलों कोक कोकी को मिलत तौलों होत राति कोक अध बीचही तें आवतु है फिरिकै॥ २३॥

सुन्दरदास

सुन्दरदास जाति के "बूसर" गोती खंडेलवाल बनिये थे। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का सती था। इनका जन्म चैत्र सुदी ९ सं० १६५३ वि० को द्यौसा (जयपुर राज्य) में हुआ।

जब सुन्दरदास छः बरस के हुये, तब दादूदयाल द्योसा में पधारे। ये उसी समय से दादूदयाल के शिष्य हो गये और उनके साथ रहने लगे। संवत् १६६० में दादूदयाल का शरीरान्त होने तक ये नाराणा में रहे। फिर जगजीवन साधु के साथ अपने माता पिता के घर द्योसा में आ गये। वहाँ सं० १६६३ तक रह कर फिर जगजीवन के साथ काशी चले आये। काशी में ये उन्नीस बरस अर्थात् तीस बरस की अवस्था तक संस्कृत, वेदान्त, दर्शन और पुराण आदि पढ़ते

रहे। संस्कृत के अतिरिक्त सुन्दरदास जी हिन्दी फारसी गुजराती और मारवाड़ी आदि भाषायें भी अच्छी तरह जानते थे।

सं० १६८२ में सुन्दरदास जी काशी से लौटे। उस समय इनके साथ और भी साधू थे। उनमें एक फतहपुर (शेखावाटी) का भी था। ये उसी के साथ फतहपुर चले गये। फतहपुर में इनके गुरु भाई प्रागदास पहले ही से मौजूद थे। अतएव फतहपुर के साधु भक्त महाजनों की प्रार्थना से ये भी वहीं ठहर गये। फतहपुर के नवाब अलिफ़ खाँ दौलत खाँ और ताहिर खाँ के साथ भी इनका बड़ा मेल हो गया था। अलिफ़ खाँ भी भाषा के कवि थे।

सं० १६८८ में प्रागदास का देहान्त हो जाने पर इनका चित्त फतहपुर में बहुत कम लगता था। इससे ये प्रायः देशाटन के लिये चले जाया करते थे।

सुन्दरदास जी डीलडौल में बड़े सुन्दर, गोरे रङ्ग के, तेजस्वी और लम्बे थे। आँखे बड़ी सुन्दर और चमकदार थीं। बोलते बहुत मधुर थे। स्वभाव ऐसा अच्छा था कि जो इनसे मिलता, बस, वह इनका भक्त ही हो जाता। बालकों से ये बड़ा प्रेम रखते थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे। स्त्री चर्चा से इनको बड़ी घृणा थी। ये स्वच्छता को बहुत पसंद करते थे। इसी से देश देश के मलिन व्यवहार की इन्होंने खूब ही दिल्लगी उड़ाई है। गुजरात के लिये—"आभड़ छोत अतीत सों कीजिये, बिलाईरु कूकुर चाटत हाँड़ी" मारवाड़ के लिये—"वृच्छन नीर न उत्तम चीर सुदेशन में गत देश है मारू" दक्षिण के लिये—राँधत प्याज बिगारत नाज न आतत लाज करैं सब भच्छन" पूर्व के लिये—"ब्राह्मण

क्षत्रिय वैसरु सूदर चारोहि वर्न के मच्छ बघारत ;" फतहपुर की स्त्रियों के लिये—"फूहड़ नार फतेपुर की" आदि वाक्यों से इनका मनोभाव प्रगट होता है। मालवा और उत्तरा खंड इन्हें बहुत प्रिय थे।

सुन्दरदास बाल कवि थे। इनकी कविता से प्रगट होता है कि ये अच्छे ज्ञानी और काव्य-कला-मर्मज्ञ थे। अन्य संतों की बानी की अपेक्षा मुझे इनकी कविता में अधिक भाव समझ पड़ा है। इन्होंने वेदान्त पर अच्छी कविता की है। इनके रचे छोटे मोटे ग्रंथों की संख्या ४० से अधिक है। इनमें सुन्दर-विलास विशेष प्रसिद्ध है।

सुन्दरदास ने कार्तिक सुदी ८ वृहस्पति वार संवत् १७४६ को साँगानेर (जयपुर के पास) में शरीर छोड़ा। शरीर छोड़ते समय इन्हों ने ये दोहे कहे थे—

मान लिये अंतःकरण जे इन्द्रिन के भोग।
सुन्दर न्यारो आतमा लगो देह को रोग॥
वैद्य हमारे राम जी औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब सुमिरण आठों जाम॥
सुन्दर संसय को नहीं बड़ो महुच्छव एह।
आतम परमातम मिलो रहो कि बिनसो देह॥
सात बरस सौ में घटै इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है देह खेह की खेह॥

सुन्दरदासजी की जहाँ दाह-क्रिया की गई थी, वहाँ एक गुमटी बनी है, उसमें सफ़ेद पत्थर पर यह लिखा है—

संबत सत्रह सै छीयाला। कार्तिक सुदि अष्ठमी उजाला।
तीजे पहर भरस्पति बार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

फतहपुर के आश्रम में अब भी सुन्दरदास के कपड़े और उनके हाथ की लिखी पुस्तकें आदि चीजें रक्खी है। जब मैं फतहपुर में था, तब एक दिन मेरे सहृदय मित्र बाबू केशवदेवजी नेवटिया मुझे सुन्दरदास का आश्रम और इनके वस्त्र आदि दिखाने ले गये थे।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं :—

काहू सोँ न रोष तोष काहू सों न राग द्वेष
काहू सोँ न बैर भाव काहू सोँ न घात है॥
काहू सोँ न बकवाद काहू सों नहीं विषाद
काहू सोँ न संग न तौ काहू पच्छपात है॥
काहू सोँ न दुष्ट बैन काहू सोँ न लेन देन
ब्रह्म को बिचार कछू और न सुहात है॥
सुन्दर कहत सोई ईसन को महाईस
सोई गुरुदेव जाके दूसरी न बात है॥१॥

कौन कुबुद्धि भई घट अंतर तू अपने प्रभुसूँ मन चौरे।
भूलि गयो बिषया सुख में सठ लालच लागि रह्यो अति थोरे॥
ज्यूँ कोउ कंचन छार मिलावत लेकरि पत्थर सूँ नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमूलक तीर लगी नवका कित बोरै॥२॥

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी।
मेघ सहे सिर सीत सहे तन धूप समै जु पँचागिनि बारी॥
भूख सहे रहि रूख तरे पर सुन्दरदास सभै दुख भारी।
डासन छाड़िके कासन ऊपर आसन मारिपै आस न मारी॥३॥

बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ
न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिये।
जोरिये तौ तब जब जोरिबे की जानि परै
तुक छंद अरथ अनूप जामें लहिये॥

गाइये तौ तब जब गाइबे को कंठ होइ
श्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये ॥
तुक भंग छंद भंग अरथ मिलै न कछु
सुन्दर कहत ऐसी बानी नहीं कहिये ॥ ४ ॥
पतिही सूँ प्रेम होइ पतिही सूँ नेम होइ
पतिहीँ सूँ छेम होइ पति ही सूँ रत है ।
पतिही है जज्ञ जोग पतिही है रस भोग
पतिही सूँ मिटै सोग पतिही को जत है ॥
पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुन्य दान
पतिही है तीर्थ न्हान पतिही को मत है ॥
पति बिनु पति नाहि पति बिनु गति नाहि
सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है ॥ ५ ॥
ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई
प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहंकार है ॥
अहंकारहू तें तीन गुण सत रज तम
तमहू तें महाभूत विषय पसार है ॥
रजहू तें इन्द्री दस पृथक पृथक भई
सत्तहू तें मन आदि देवता बिचार है ॥
ऐसे अनुक्रम करि सिष्य सूँ कहत गुरु
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है ॥६ ॥
सुनत नगारे चोट बिकसै कमल मुख
अधिक उछाह फूल्यो मायहू न तन में ॥
फेरे जब साँग तब कोई नहि धीर धरै
कायर कँपायमान होत देखि मन में ॥
कूद के पतंग जैसे परत पावक माहिं
ऐसे टूटि परै बहु सावँत के घन में ॥

मारि घमसान करि सुन्दर जुहारे स्याम
सोई सूरबीर रोपि रहै आइ रन में ॥७॥
पाँव रोपि रहै रण माहि रजपूत कोऊ
हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है।
बाजत जुझाऊ सहनाई सिंधु राग पुनि
सुनतहि कायर की छूटि जात कल है।
झलकत बरछी तिरछी तरवार बहै
मार मार करत परत खलभल है।
ऐसे जुद्ध में अडिग्ग सुन्दर सुभट सोई
घर माहिं सूरमा कहावत सकल है॥ ८॥
आसन बसन बहु भूषण सकल अंग
सम्पति विविध भाँति भर्‌यो सब घर है।
श्रवण नगारो सुनि छिनन में छाँड़ि जात
ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहाँ मर है।
तन में उछाह रण माहिं टूक टूक होइ
निर्भय निसंक वाके रंचहु न डर है।
सुन्दर कहत कोउ देह को ममत्व नाहिं
सूरमा को देखियत सीस बिनु धर है॥ ९॥
कामिनी की देह अति कहिये सघन बन
उहाँ सु तौ जाय कोऊ भूलि कै परत है।
कुंजर है गति कटि केहरि को भय यामें
बेनी कारी नागिन सी फन को धरत है।
कुच है पहार जहाँ काम चोर बैठो तहाँ
साधि कै कटाच्छ बान प्रान को हरत है।
सुन्दर कहत एक और अति भय तामें
राछसी बदन खाँव खाँव ही करत है॥१०॥

देखहु दुरमति या संसार की।
हरि सों हीरा छाँड़ि हाथ तें बाँधत मोट बिकार की॥
नाना विधि के करम कमावत खबरि नहीं सिर भार की।
झूठे सुख में भूलि रहे हैं फूटी आँख गँवार की॥
कोइ खेती कोइ बनजी लागै कोई आस हथ्यार की।
अंध धुंध में चहुँ दिसि ध्याये सुधि बिसरी करतार की॥
नरक जानि कै मारग चालै सुनि सुनि बात लबार की।
अपने हाथ गले में बाही पासी माया जार की॥
बारम्बार पुकार कहत हौं सौंहैं सिरजनहार की।
सुन्दरदास बिनस करि जैहै देह छिनक में छार की॥ ११॥

पुरुष प्रकृति संयोग जगत् उपजत है ऐसे।
रवि दर्पण दृष्टान्त अग्नि उपजत है तैसे॥
सुई होहिं चैतन्य यथा चुम्बक के संगा।
यथा पवन संयोग उदधि में उठहिँ तरंगा॥
अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्ष रूप कौं गहत है।
यों जड़ चेतन संयोग तें सृष्टि उपजती कहत है॥ १२॥

गज क्रीड़त अपने रंगा बन में मदमत्त अनंगा।
बलवन्त महा अधिकारी गहि तरवर लेइ उपारी।
इक मनुष तहाँ कोउ आवा तिहि कुञ्जर देखन पावा।
उन ऐसी बुद्धि विचारी फिरि आवा नग्र मझारी।
तब कह्यो नृपति सौं जाई इक गज बन माँझ रहाई।
जौ लै आवै गज भाई देहौं तब बहुत बधाई।
तब बिदा होइ घर आवा मन में कछु फिकिर उपावा।
तब बुद्धि बिधाता दीनी कागद की हथिनी कीनी।
तब दूत तहाँ लै जाहीं गज रहत जहाँ बन माहीं।
तहँ खंदक कीना जाई पतरे तृन दीन छवाई।

तृन ऊपर मृतिका नाखी तब ऊपर हथिनी राखी।
हथिनी को देखि स्वरूपा सठ धाइ परयो अँधकूपा।
धाइ परयो गज कूप में देखा नहीं बिचारि।
काम-अंध जानै नहीं कालबूत की नारि॥ १३॥

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेजरी
जिनके संग न पीव बिरहिनी सेजरी॥
बिरहै संकल वाहि विचारी सेजरी
सुन्दर दुःख अपार न पाऊँ सेजरी॥ १४॥

तौ सही चतुर तूँ जान परबीन अति
परै जनि पिंजरे मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन
गाइ गोविन्द गुन जीति जूवा।
आपही आपु अज्ञान नलिनी बँध्यो
बिना प्रभु विमुख कै बेर मूवा।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै
राम हरि राम हरि बोल सूवा॥ १५॥

सुन्दर जो गाफिल हुआ तौ वह साइँ दूर।
जो बंदा हाजिर हुआ तौ हाजराँ हजूर॥ १६॥
रसु सोई अमृत पिवै रन सोई जिहि ज्ञान।
सुप सोई जो बुद्धि बिन तीनौं उलटे जान॥ १७॥
लालन मेरा लाड़ला रूप बहुत तुझ माहिँ।
सुन्दर राखै नैन में पलक उघारै नाहिँ॥ १८॥
सुन्दर पंछी बिरछ पर लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यों कुटुम्ब सब जानि॥१६॥
लौन पूतरी उदधि में थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचही गई बिलाइ॥ २०॥

बिहारीलाल

क विवर बिहारीलाल ककोर कुल के चौबे ब्राह्मण थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १६६० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्द पुर में हुआ। ऐसा अनुमान किया जाताहै कि सं० १७२० में इनकी मृत्यु हुई।

बिहारीलाल जयपुर के महाराज जयसिंह के यहाँ रहा करते थे। एकबार जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने अनुरक्त हो गये कि उन्होंने बाहर निकलना ही बन्द कर दिया। इससे दरबारियों में बड़ी व्याकुलता फैली। तब बिहारीलाल ने यह दोहा लिखकर किसी तरह महाराज के पास भिजवाया:—

नहि पराग नहि मधुर मधु नहि विकास यहि काल।
अली कली ही में विंध्यो आगे कवन हवाल॥

दोहे का गूढ़ अभिप्राय समझ कर महाराजा बाहर चले आये। उस दिन से दरबार में बिहारीलाल का सम्मान बढ़ चला। इनको एक अशर्फी प्रतिदिन मिला करती थी। जयपुर में ही इन्होंने सतसई बनाई, जो अपने ढंगकी एक ही पुस्तक है। शृंगार रस का ऐसा मनोहर ग्रंथ अभी तक हिन्दी-साहित्य में दूसरा नहीं है। इसकी लगभग तीस टीकाएँ हो चुकी हैं। इतने पर भी रसिकों की तृप्ति नहीं हुई है। अब इसकी एक और टीका पंडित पद्मसिंह शर्म्मा की लिखी हुई प्रकाशित हुई है। यह टीका सब टीकाओं से उत्तम है। कहा नहीं जा सकता कि शर्म्मा जी की इस टीका से रसिकों की प्यास बुझेगी या बढ़ेगी।

सतसई में कुल ७१६ दोहे हैं। एक एक दोहे में बिहारीलाल ने इतना चमत्कार भर दिया है कि उसमें कवियों की कल्पना-शक्ति की ख़ासी झलक दिखाई पड़ती है। यों तो बिहारीलाल के सभी दोहे अशर्फ़ियों के मोल के हैं, परन्तु स्थानाभाव से हम उन सब को प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। उनमें से कुछ चुने हुए दोहे नीचे लिखे जाते हैं.—

मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तनुकी झाँई परे श्याम हरित द्युति होय ॥१॥
मकराकृत गोपाल के कुंडल सोहत कान।
धस्यो मनो हिय घर समर ड्योढ़ी लसत निसान ॥२॥
अधर धरत हरि के परत ओठ दीठ पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र धनुष रँग होति ॥३॥
अपने अँग के जानिके यौवन नृपति प्रवीन।
स्तन मन नयन नितम्ब को बड़ो इजाफा कीन ॥४॥
बिहँसि बुलाय बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूतको पिय चूम्यो मुख चूमि ॥५॥
कंजनयनि। मञ्जन किये बैठी ब्योरति बार।
कच अँगुरिन बिच दीठि दै चितवति नन्दकुमार ॥ ६ ॥
पहुँचति डटि रन सुभट लौं रोकि सके सब नाहिं।
लाखनहूँ की भीरमें आँखि वहीं चलि जाहिं ॥७॥
छिनकु उघारति छिन छुवति राखति छिनकु छिपाय।
सब दिन पिय खंडित अधर दर्पन देखति जाय ॥८॥
चाह भरी अति रिस भरी विरह भरी सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुन के चले पौरि लौं जात ॥९॥
युवति जोन्ह में मिल गई नैकु न होति लखाइ।
सौंधे के डोरे लगी अली चली सँग जाइ ॥१०॥

तू रहि सखि हौंहीं लखौं चढ़ि न अटावलि बाल।
बिनही ऊगे ससि समुझि देहैं अर्घ अकाल ॥११॥
नाक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि उहै गहै पिय कँकरीली गैल ॥१२॥
अलि इन लोयन को कछु उपजी बड़ी बलाय।
नीरभरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय ॥१३॥
इन दुखिया अँखियान को सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलाहिं ॥१४॥
लरिका लेबे के मिसुनि लंगर मों ढिग आय।
गयो अचानक आँगुरी छाती छैल छुवाय ॥१५॥
डग कुडगति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि।
लिये जात चित चोरटी वहै गोरटी नारि ॥१६॥
फेर कछु करि पौरते फिर चितई मुसक्याय।
आई जामन लेन को नेहै चली जमाय ॥ १७ ॥
यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितो भरिये जितो सनेह ॥१८॥
जो चाहत चटक न घटै मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त ॥१९॥
अनियारे दीरघ नयनि किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछू जिहि बस होत सुजान ॥२०॥
बर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानतें हरि नीके ये नैन ॥२१॥
बेसर मोती धनि तुही को पूछै कुल जाति।
पीबो कर तिय अधर को रस निधरक दिनराति ॥२२॥
तो लखि मो मन जो गही सो गति कही न जात।
ठोड़ी गाड़ गड़्यो तऊ उड़्यो रहत दिनरात ॥२३॥

पत्राही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास।
नितप्रति पून्यो ही रहत आनन ओप उजास ॥२४॥
पाँय महावर देन को नायन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एँड़ी मीड़त जाय ॥२५॥
मानहुँ विधि तनु अच्छ छवि स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोंछन को कियो भूषन पायनदाज ॥२६॥
बाल छबीली तियन में बैठी आप छिपाय।
अरगटही फानूससी परगट होत लखाय ॥२७॥
पहिर न भूषन कनक के कहि आवत यहि हेत।
दर्पन केसे मोरचे देह दिखाई देत ॥२८॥
कागज पर लिखत न बनत कहत सँदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो मेरे हिय की बात ॥ २६ ॥
जब जब वे सुधि कीजिये तब तब सब सुधि जाहिँ।
आँखिन आँख लगी रहै आँखै लागति नाहि ॥३०॥
सघन कुञ्ज छाया सुखद शीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वही वा जमुना के तीर ॥३१॥
इत आवत चलि जात उत चली छ सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै लगी उसासनि साथ ॥३२॥
करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़त नीच।
दीन्हे हू चसमा चखनि चाहै लखै न मीच ॥३३॥
नासा मोरि नचाय दृग करी ककाकी सौंह।
काँटेसी कसकत हिये गड़ी कटीली भौंह ॥३४॥
रस सिँगार मञ्जन किये कंजन भंजन दैन।
अँजन रंजन हू बिना खंजन गंजन नैन ॥३५॥
भूषन भार सँभारहीं क्यों यह तनु सुकुमार।
सूधो पाँय न परत महि सोभा ही के भार ॥३६॥

मैं बरजी कै बार तूँ उत कत लेत करोंट।
पँखुरी लगे गुलाब की परिहैं गात खरोंट ॥३७॥
गोरी गदकारी परत हँसत कपोलन गाड़।
कैसी लसत गँवारि यह सुनकिरवा की आड़ ॥३८॥
फिर घर को नूतन पथिक चले चकित चित भागि।
फूल्यो देखि पलास बन समुहे समुझि दवागि ॥३९॥
कहलाने एकत रहत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवनसौं कियो दीरघ दाघ निदाघ ॥४०॥
प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि।
मरुधर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि ॥ ४१ ॥
बिखम वृखादित की तृखा जियत मतीरनि सोधि।
अमित अपार अगाध जल मारौ मूँड़ पयोधि ॥ ४२ ॥
पावस घन अँधियार में रहो भेद नहिं आन।
राति दिवस जान्यो परे लखि चकई चकवान ॥४३॥
अरुन सरोरुह कर चरन दृग खंजन मुखचंद।
समय आय सुन्दर शरद काहि न करत अनंद ॥४४॥
जेती सम्पति कृपन की तेती तू मति जोर।
बढ़त जाय ज्यों ज्यों उरज त्यों त्यों हियो कठोर ॥४५॥
कोटि यतन कोऊ करै परै न प्रकृतिहि बीच।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै अन्त नीच को नीच ॥४६॥
तन्त्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग ॥४७॥
कैसे छोटे नरन तें सरत बड़नि के काम।
मढ़ो दमामो जात है कहिं चूहे के चाम ॥४८॥
अति अगाध अति ऊथरो नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय ॥४९॥

मीत न नीति गलीत ह्वै जो धरिये धन जोरि।
खाये खरचे जो बचै तौ जोरियै करोरि ॥५०॥
दुसह दुराज प्रजान मैं क्यों न करै दुख द्वंद।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंद ॥५१॥
घर घर डोलत दीन ह्वै जन जन याचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनि लघु पुनि बड़ो लखाय ॥५२॥
बसै बुराई जासु मन ताही को सन्मान।
भलो भलो कहि छाँड़िये खोटे ग्रह जपदान ॥५३॥
कहैं यहै श्रुति स्मृतिहूँ सबै सयाने लोग।
तीन दबावत निकट ही राजा पातक रोग ॥५४॥
इक भीजे चहले परे बूड़े बहे हजार।
कितने अवगुण जग करत नै वै चढ़ती बार ॥५५॥
बुरौ बुराई जो तजै तौ मन खरो सकात।
ज्यों निकलंक मयंक लखि गनैं लोग उतपात ॥५६॥
सीतलताऽरु सुगंध की महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो सोरा जानि कपूर ॥५७॥
बढ़त बढ़त संपति सलिल मन सरोज बढ़ि जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥५८॥
संगति सुमति न पावई परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर में हींग न होय सुगंध ॥५९॥
सबै हँसत करतार दै नागरता के नाँव।
गयो गरब गुन को सबै बसे गमेले गाँव ॥६०॥
को कहि सकै बड़ेनसों लखे बड़ीयो भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारन ये फूल ॥६१॥
चले जाहु ह्याँ को करै हाथिन को व्योपार।
नहिं जानत यहि पुर बसै धोबी औंड़ कुम्हार ॥६२॥

नर की अरु नल नीर की एकै मति करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै तेतो ऊँचो होय ॥६३॥
गिरिते ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन को प्रेम पयोधि पगार ॥६४॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में अपत कटीली डार ॥६५॥
इहि आशा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
हुइ हैं बहुरि बसन्त ऋतु इन डारन वे फूल ॥६६॥
पट पाँखें भख काँकरें सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में एकै तुही बिहंग ॥६७॥
मरत प्यास पिंजरा पर्यो सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियतु बायस बलि की बेर ॥६८॥
नहिं पावस ऋतु राज यह तज तरुवर मति भूल।
अपत भये बिन पाइ है क्यों नव दल फल फूल ॥६९॥
वे न यहाँ नागर बड़े जिन आदर तौ आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब ॥७०॥
कर ले सूँघि सराहि कै रहै सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को गँवई गाहक कौन ॥७१॥
करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
चुप करि रे गंधी चतुर अतर दिखावत काहि ॥७२॥
कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
वहि खाये बौराय जग यहि पाये बौराय ॥७३॥
बड़े न हूजैं गुनन बिन बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़ो न जाय ॥७४॥
कन देब्यो सौंप्यो ससुर बहू थुरहती जानि।
रूप रहिचटे लखि लग्यो माँगन सब जग आनि ॥७५॥

परतिय दोष पुरान सुनि हँसि मुलकी सुखदानि।
कसकरि राखी मिश्रहू मुँह आई मुसुकानि ॥७६॥
बहुधन लै अहसान के पारो देत सराहि।
वैदबधू हँसि भेद सों रही नाह मुख चाहि ॥७७॥
या अनुरागी चित्त की गति समझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रँग त्यों त्यों उज्जल होय ॥७८॥
दीरघ साँस न लेइ दुख सुख साईं मति भूल।
दई दई क्यों करत है दई दई सु कबूल ॥७९॥
थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहू कान्ह मनो भये आज काल के दानि ॥८०॥
अरे हंस या नगर में जैयो आप बिचारि।
कागन सों जिन प्रीति कर कोयल दई बिड़ारि ॥८१॥
यदपि पुराने बक तऊ सरवर निकट कुचाल।
नये भये तो का भये ये मनहरन मराल ॥८२॥
संगति दोष लगे सबन कहे जु साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रूसंग में कुटिल बंक गति नैन ॥८३॥
सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत के छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर ॥८४॥
ब्रज भाषा बरनी कविन बहुबिधि बुद्धि बिलास।
सब की भूषन सतसई करी बिहारी दास ॥८५॥
संवत ग्रह ससि जलधि क्षिति छठ तिथि वासर चंद।
चैत मास पख कृष्ण में पूरन आनँद कंद ॥८६॥
जन्म लियो द्विजराज कुल प्रगट बसे ब्रज आय।
मेरो हरो कलेस सब केसव केसवराय ॥८७॥
मोहू दीजे मोष ज्यों अनेक अधमनि दियो।
जो बाँधे ही तोष तौ बाँधो अपने गुनन ॥८८॥

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसो सदा बिहारीलाल ॥८९॥

चिन्तामणि

चिन्तामणि महाकवि भूषण के बड़े भाई थे। इनका जन्म-काल सं० १६६६ के लगभग अनुमान किया जाता है। ठाकुर शिवसिंह ने इनके बनाये पाँच ग्रंथ लिखे हैं—छन्द विचार, काव्य विवेक, कवि कुल कल्पतरु, काव्य प्रकाश, और रामायण। ये कुछ दिनों तक नागपुर के सूर्यवंशी भोंसला मकरंदशाह के यहाँ रहे। राजा महाराजाओं के यहाँ इनका अच्छा मान था।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये :—

चोखी चरचा ज्ञान की आछी मन की जीति।
संगति सज्जन की भली नीकी हरि की प्रीति ॥१॥

सरद तें जल की ज्यों दिन तें कमल की ज्यों, धन तें ज्यों थलकी निपट सरसाई है। घन तें सावन की ज्यों आप तें रतन की ज्यों, गुन तें सुजन की ज्यों परम सुहाई है॥ चिंतामनि कहै आछे अच्छरन छंद की ज्यों, निसागम चन्द्र की ज्यों दृग सुखदाई है। नग तें ज्यों कंचन बसंत तें ज्यों वन की, यों जोबन तें तनकी निकाई अधिकाई है॥ २॥

कोटि बिलास कटाक्ष कलोल बढ़ावै हुलास न प्रीतम हीतर।
यों मनि यामे अनूपम रूप जो मैनका मैन बधू कहि हीतर॥
सुन्दरि सारी सुफेद ये सोहत यों छबि ऊँचे उरोजन की तर।
जोबन मत्त गयंद के कुंभ लसै जनु गंग तरंगनि भीतर॥ ३॥

आँखिन मूँदिबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
केहूँ कहूँ मुसुकाइ चितै अँगराइ अनूपम अङ्ग दिखावै॥
नाह छुई छल सों छतियाँ हँसि भौंह चढ़ाइ अनन्द बढ़ावै।
जोबन के मद मत्त तिया हित सों पति को नित चित्त चुरावै॥४॥

भूषण

का नपुर जिले में यमुना नदी के बाएँ किनारे पर तिकवाँपुर एक गाँव है। उस गाँव के पास ही "अकबरपुर बीरबल" नाम का एक अच्छा सा मौज़ा है। जहाँ अकबर शाह के सुप्रसिद्ध मंत्री बीरबल का जन्म हुआ था। उसी तिकवाँपुर गाँव में रत्नाकर त्रिपाठी नाम के एक कान्यकुब्ज कश्यपगोत्री ब्राह्मण रहते थे। उनके चार पुत्र हुये—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, और नीलकंठ (उपनाम जटाशङ्कर)। चारो भाई कवि थे। उनमें भूषण वीर रस के बड़े प्रतिभा शाली कवि हुये। इनके रचे हुये चार ग्रंथ सुने जाते हैं :- शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास। परन्तु अब केवल शिवराज भूषण और कुछ स्फुट छंद ही मिलते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने, भूषण की जितनी कवितायें मिल सकी हैं, सब को "भूषण-ग्रंथावली" के नाम से टीका सहित प्रकाशित किया है।

भूषण बड़े प्रतिभा शाली और वीर कवि थे। ये हिन्दुओं के जातीय कवि थे। हिन्दू जाति की उन्नति और ऐश्वर्य के ये

उत्कट अभिलाषी थे। इनके समान अपनी कविता में जातीयता का ध्यान रखने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में कोई नहीं हुआ और इनके समान वीर कवि तो अब तक कोई न हुआ। यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि भूषण पहले बहुत निकम्मे थे। इनके बड़े भाई चिन्तामणि कमाते थे और ये घर बैठे मौज उड़ाया करते थे। एक दिन भोजन करने के समय इन्होंने अपनी भावज से नमक माँगा। भावज ने ताना मार कर कहा-क्या नमक कमाकर लाये हो, जो उठा करके दूँ? यह बात इनको ऐसी लगी कि ये उसी समय भोजन छोड़कर घर से निकल गये। चलते समय इन्होंने भावज से कहा-अच्छा, अब नमक कमाकर लावेंगे, तभी भोजन करेंगे। कहा जाता है कि, इसके पश्चात साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने में इन्होंने बड़ा परिश्रम किया। और जब अच्छी कविता करने लगे तब ये चित्रकूटाधिपति हृदय राम सोलंकी के पुत्र रुद्रराम के पास गये। ये प्रतिभावान् थे ही, रुद्रराम ने इनकी कविता का चमत्कार देख इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी। इस नाम से ये इतने प्रसिद्ध हुये कि अब इनके मुख्य नाम का पता ही नहीं चलता। वहाँ से ये औरंगजेब के दरबार में गये। जहाँ इनके बड़े भाई चिनामणि रहते थे। चिंतामणि ने बादशाह से इनका परिचय कराया। औरङ्गजेब ने इनकी कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। इस पर इन्होंने कहा-आप हाथ धोकर बैठिये तब मैं कविता सुनाऊँगा; क्योंकि शृंगार रस की कविता सुनकर आप का हाथ ठौर कुठौर पड़ा होगा; इससे वह अपवित्र हो गया है। मेरी कविता सुनकर आप का हाथ मोछों पर चला जायगा। हाथ न धोने से मोछ अपवित्र हो जायगी। औरंग-ज़ेब ने यह सुनकर क्रोध से कहा-यदि हाथ मोछ पर न गया

तो तेरा सिर कटवा लूँगा। भूषण ने निभयता से कहा–हाँ। निदान औरंगजेब हाथ धोकर बैठा और भूषण ने कविता पढ़नी प्रारंभ की। भूषण की वीर रस मयी ओजस्विनी कविता सुन कर औरंगजेब को सचमुच जोश आया और वह मोछ पर ताव देने लगा। बस, भूषण की प्रतिज्ञा पूरी हुई। औरंगजेब ने भूषण को बहुत पुरस्कार दिया। उस दिन से दरबार में इनकी प्रतिष्ठा बढ़ चली। सं० १७२३ में शिवाजी दिल्ली गये। उस समय भूषण दिल्ली ही में थे। औरंगजेब का हिन्दू–द्वेष देख कर उनका चित्त उससे बहुत विरक्त था। परन्तु शिवाजी को हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा के लिये खड़ा देखकर उनको बड़ी आशा हुई। शिवाजी के दिल्ली से चले जाने पर एक दिन औरंगजेब ने कवियों से कहा–तुम लोग मेरी झूठी बड़ाई किया करते हो, सच्ची बात कहो। अन्य कवि तो चुप रहे, परन्तु भूषण से चुप न रहा गया। इन्होंने दो कवित्त में उसकी खासी निन्दा की। इससे औरंगजेब बहुत ही बिगड़ा और वह भूषण को मारने उठा। परन्तु दरबारियों के समझाने से रुक गया। भूषण उसी समय से दिल्ली छोड़कर शिवाजी के दरबार में चले गये। वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। लाखों रुपये, घोड़े हाथी और गाँव इनको मिले। ये शिवाजी के साथ कई लड़ाइयों में भी उपस्थित थे। ऐसी कहावत है कि वहाँ से इन्होंने एक लाख रुपये का नमक खरीद कर अपनी भावज के पास भेजा था।

शिवाजी के यहाँ से भूषण सं० १७३१ में घर लौटे। राह में आते समय महाराज छत्रसाल बुंदेल के यहाँ भी गये थे। छत्रसाल ने चलते समय इनकी पालकी का डंडा अपने कंधे पर रखकर इनका सम्मान बढ़ाया था। शिवाजी और छत्रसाल

जैसे स्वाभाविक वीर थे, वैसे भूषण भी सोने में सुगंध हो गये। कविता द्वारा जितना सम्मान भूषण को मिला, उतना हिन्दी के किसी कवि को नहीं मिला।

भूषण का जन्म अनुमान से सं० १६७० में और मरण १७७२ में हुआ। भूषण अब इस संसार में नहीं हैं। सैकड़ों वर्ष पहले ही के विधि विधान से विवश हो चले गये। परन्तु उनके हृदय का चित्र कविता रूप में अब भी हमारे सम्मुख है। भूषण अजर और अमर की भाँति हमारे साथ चल रहे हैं। वे एक पुष्प की तरह विकसित होकर अनंत काल के लिये सुगंध छोड़ गये। भगवान् फिर इस देश में शिवाजी ऐसे वीर और भूषण ऐसे सुकवि उत्पन्न करें।

हिन्दी में भूषण ही वीररस के सर्वोत्तम कवि हैं, इससे हमने इनकी कुछ अधिक कविताएँ उद्धृत की हैं। भूषण की कुछ चुनी हुई कविताएँ नीचे दी जाती हैं:—

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहार नेकहूँ न मनके। भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े बाजे भए उमराय तुजुक करन के॥ साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि और चाहि रह्यो चकि बने ब्योंत अनबन के। ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के॥ १॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है। पौन बारिबाह पर सम्भु रतिनाह पर ज्यों सहस्रबाह पर राम द्विजराज है॥ दावा द्रुम दंड पर चीता मृगझुंड पर भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है। तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥ २॥

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज भूषन जे बाज की समाजै निदरतहैं । पौन पाय हीन, द्दग घूँघट मैं लीन, मीन जल मैं बिलीन क्यों बराबरी करत हैं ।। सब ते चलाक चित्त तेऊ कुलि आलम के रहैं उर अन्तर मैं धीर न धरत हैं । जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर एक भरि तऊ तीर पीछेही परत हैं ॥ ३ ॥

अफ़ज़लखान को जिन्हेंने मयदान मारा बीजापुर गोल-कुंडा मारा जिन आज है । भूषन भनत फरासीस त्यों फिरंगी मार हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है ॥ देखत मैं रुसतमखाँ को जिन खाक किया सालकी सुरति आजु सुनी जो अवाज है । चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँ घाते यारो लेत रही खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥ ४ ॥

पैज प्रतिपाल भूमिभार को हमाल चहुँ चक्क को अमाल भयो दण्डक जहान को । साहिन को साल भयो ज्वाल को जवाल भयो हर को कृपाल भयो हार के बिधान को । वीर रस ख्याल शिवराज भुवपाल तुव हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को । तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो हिन्दु को दिवाल भयो काल तुरकान को ॥ ५ ॥

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द तें । भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दते । बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द ते । दृगजल कज्जल कलित बढ़्यो कढ़्यो मानो दूजा सोत तरनि तनूजा को कलिन्द तें ॥ ६ ॥

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही । नैनन ते नीर धीर छूट्यो

एक संग छूट्यो सुख रुचि मुख रुचि त्योंही बिन रंग ही। भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललानै न गहत बल अंगही। दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं उत्तर की आस जीव आस एक संगही ॥ ७ ॥

बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा। तुझते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा ॥ साहिन के साहि उसी औरँग के लीन्हें गढ़ जिसका तू चाकर औ जिसकी तू परजा। साहि का ललन दिली दल का दलन अफजल का मलन सिवराज आया सरजा ॥ ८ ॥

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाह हूँ के सब बादशाहन के गढ़ कोट हरते। भूषन कहै यों अवरंग सो वजीर, जीति लीबे को पुरतगाल सागर उतरते। सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे को नाहिँ डरते। चाकर हैं उजुर कियो न जाइ नेक पै कछू दिन उबरते तौ घने काज करते ॥ ९ ॥

बैर कियो सिव चाहत हो तबलौं अरि बाह्यो कटार कठैठो।
योंहीं मलिच्छहिँ छौंड़े नहीं सरजा मन तापर रोस में पैठो ॥
भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव के सिंह को पाँव उमेठो।
बीछू के घाय धुक्योई धरक्क है तौ लगधाय धराधर बैठो ॥१०॥

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि वारिधि को लङ्क रघुनन्दन जराई है। पारथ अकेले द्रोन भीषम सों लाख भट जीति लीन्ही नगरी विराट में बड़ाई है ॥ भूषन भनत है गुसलखाने में खुमान अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है। तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा वीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ॥ ११ ॥

लोमस की ऐसी आयु होय कौन हू उपाय तापर कवच जो करनवारो धरिये। ताहू पर हूजिये सहसबाहु, तापर सहसगुनो साहस जो भीमहु ते करिये॥ भूषन कहैं यों अवरंगजू सों उमराव नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन में मरिये। चलै न कछू इलाज भेजियत बेही काज ऐसो होय साज तौ सिवासों जाय लरिये॥ १२॥

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यंत पुनीत तिहूँ पुर मानी। राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु ब्यास के अंग सोहानी॥ भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी। पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥१३॥

दान समै द्विज देखि मेरहू कुबेरहू की सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है। साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर सिव की कथान में सनेह झलकत है॥ भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को तुरकान मारिबे को बीर बलकत है। साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि सरजा के दूगन उछाह छलकत है॥ १४॥

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहैं ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं। कहे ते कहत बात कहे ते पियत खात भूषन भनत ऊँची साँसन जहत है॥ पौढ़े हैं तो पौढ़े, बैठे बैठे, खरे खरे, हमको है, कहा करत, यों ज्ञान न गहत हैं। साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि साहि सब रातो दिन सोचत रहत हैं॥ १५॥

आजु यहि समै महाराज शिवराज तुही जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सों। भूषन भनत तेरे दान जल जलधि मैं गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो॥ ॥ चंद कर किंजलक, चाँदनी पराग, उड़ वृन्द मकरन्द बुन्द पुंज के सरीक सों।

कन्द सम कयलास, नाक गंग नाल, तेरे जस पुंडरीक को अकास चंचरीक सो ॥ १६ ॥

चित अनचैन आँसू उमगत नैन देखि बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहिनै। भूषन भनत बूझे आये दरबार तें कँपत बार बार क्यों सम्हार तन नाहिनै ॥ सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै। सिवाजी की संक मानि गयेहो सुखाय तुम्हें जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै ॥ १७ ॥

मार करि पातसाही खाकसाही कीन्हीं जिन जेर कीन्हीं जोर सों लै हद्द सब मारे की। खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब हिसि गई हिम्मति हजारों लोग सारे की ॥ बाजत दमामें लाखों धौंसा आगे घहरात गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारि की। दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे दिल्ली दुलहिनि भई सहर सितारे की ॥ १८ ॥

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है। बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है ॥ थर थर काँपत कुतुबशाह गोलकुंडा हहरि हबस-भूप भीर भरकति है। राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते बादसाहन की छाती दरकति है ॥ १६ ॥

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन सहर सिरोज लौं परावने परत हैं। गोंड़वानो तिलँगानो फिरँगानो करनाट रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत है ॥ साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत हैं। बीजापूर गोलकुंडा आगरा दिली के कोट बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ॥ २० ॥

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं। राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं। भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्ठन की देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं। साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी मैं॥ २१॥

सारस से सूबा करवानक से साहजादे मोर से मुगल मीर धीर ही धचैं नहीं। बगुला से बंगस बलूचियो बतक ऐसे काबुली कुलंग याते रन में रचै नहीं॥ भूषन जू खेलत सितारे में शिकार शिवा साहि को सुवन जाते दुवन सँचै नहीं। बाजी सब बाज से चपेटैं चंगु चहूँ ओर तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचै नहीं॥ २२॥

"सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों कहत बार बार" कहि पातसाह गरजा। सुनिये "खुमान हरि तुरुक गुमान महिदेवन जेँवायो" कवि भूषन यों अरजा॥ तुम वाको पाय कै जरूर रन छोरो वह रावरे वजीर छोरि देत करि परजा। मालुम तिहारो होत याहि में निबेरो रन कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा॥ २३॥

फिरगाने फिकिरि औ हद्द सुनि हबसाने भूखन भनत कोऊ सोवत न घरी है। बीजापुर विपति बिडारि सुनि भाज्यो सब दिल्ली दरगाह बीच परी खर भरी है राजन के राज सब साहिन के सिरताज आज सिवराज पातसाही चित धरी है। बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार धाम धाम धूम धाम रूम साम परी है॥ २४॥

दारा की न दौर यह रार नहीं खजुवे की बाँधिबो नहीं है कैधों मीर सहबाल को। मठ विस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल

को देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को। गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलान कीन्हे ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को। बूड़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिल्लीपति धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ॥ २५ ॥

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ। भूषन भनत तिहु लोक में तिहारी धाक दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ। आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै बाँधती न बारन मुखन कुम्हिलानियाँ। कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ ॥ २६ ॥

छूटत कमान और तीर गोली बानन के मुसकिल होत मुरचान हू की ओट में। ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो दावा बाँधि पर हला वीर भट जोट मैं। भूषन भनत तेरी किम्मति कहाँ लौं कहौं हिम्मति यहाँ लगि हैं जाकी भट झोट में। ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै अरि मुख धाव दै दै कूदे परें कोट मैं ॥ २७ ॥

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि सुनि असुरन के सु सीने धरकत हैं। देव लोक नाग लोक नर लोक गावैं जस अजहूँ लौं परे खग्ग दाँत खरकत हैं। कटक कटक काटि कीट से उड़ाय केते भूषन भनत मुख मोरे सरकत हैं। रन भूमि लेटे अध कटे कर लेटे परे रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं ॥ २८ ॥

सबम के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे। जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि उर कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे। भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उड़ाय गये

जियरे। तमकते लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे ॥ २९ ॥

देवल गिरवाते फिरावते निसान अलि ऐसे डूबे राव राने सबे गए लब की। गौरा गनपति आप औरन को देत ताप आपके मकान सब मार गये दबकी। पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी। कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवा जी न हो तो तौ सुनति होत सब की ॥३०॥

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं। कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं। भूषन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती हैं। भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं ॥ ३१ ॥

सोधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अंक लंक चन्द सरमाती हैं। ऐसी अरि नारी सिवराज बीर तेरे त्रास पायन में छाले परे कन्द मूल खाती हैं। ग्रीषम तपनि एती तपती न सुनी कान कंज कैसी कली बिनु पानी मुरझाती हैं। तोरि बोरि आछे से पिछौरा सो निचोरि मुख कहें "अब कहाँ पानी मुकतौ मैं पाती है" ॥ ३२ ॥

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की। कढ़ि गई रैयति के मन की कसक सब मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की। भूषन भनत दिल्ली पति दिल धकधका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की। मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय मुंड खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की ॥ ३३ ॥

वेद राखे विदित पुरान राखे सार युत राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं। हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की काँधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं। मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं। राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म्म राख्यो घर मैं ॥ ३४ ॥

मतिराम

तिराम भूषण के सगे भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग और मरण सं० १७७३ के लगभग हुआ। ये बूँदी के महाराज राव भाऊसिंह के यहाँ रहा करते थे। ये शृँगार रस के अच्छे कवि थे। इनके रचे ललित-ललाम, रसराज, छंद सार पिंगल और साहित्य-सार, आदि ग्रन्थ हैं।

इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं :—

जगत-विदित बूँदी नगर सुख सम्पति को धाम।
कलिजुगहू मैं सत्य जुग तहाँ करत बिश्राम ॥ १ ॥
पढ़त सुनत मन दै निगम आगम सम्रृति पुरान।
गीत कवित्त कलान के जहँ सब लोग सुजान ॥ २ ॥
सरद बारिधर से लसत अमल धौरहर धौल।
चित्रति चित्रित सिखर जहँ इन्द्रधनुष से नौल ॥ ३ ॥
महलनि ऊपर जहँ बने कञ्चन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौं करत हैं गगन पीत अनुरूप ॥ ४ ॥

जहँ बिमान-बनितान के श्रमजल हरत अनूप।
सौंध पताकनि के बसन होइ बिजन अनुरूप ॥ ५ ॥
बीना बेनु निनाद मृग मोहि अचल करि चन्द।
सौध सिखर ऊपर जहाँ दम्पति करत अनन्द ॥ ६ ॥
जहाँ छहौं ऋतु मैं मधुर सुनि मृदङ्ग मृदु सोर।
सङ्ग ललित ललनानि के नृत्य करत गृह मोर ॥ ७ ॥
मरकत लाल प्रवाल मनि मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ मैं जहाँ जरकस बसन बिकात ॥ ८ ॥
मद जल बरषत भूमि के जलधर सम मातङ्ग।
बिना परनि के खग जहाँ सुन्दर तरल तुरङ्ग ॥ ९ ॥
सदा प्रफुल्लित फलित जहँ द्रुम बेलिन के बाग।
अलि कोकिल कलधुनि सुनत लहत श्रवन अनुराग ॥ १० ॥
कमल कुमुद कुवलयन के परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल-पूरे जहाँ वापी कूप तड़ाग ॥ ११ ॥
शुक चकोर चातक चुहिल कोक मत्त कलहंस।
जहँ तरवर सरवरन के लसत ललित अवतंस ॥१२॥
अक्षैबट बालक उदर ज्यौं संसार समाय।
सकल जगत पानिप रह्यौ बूंदी मैं ठहराय ॥ १३ ॥
तामैं प्रतिबिम्बित मनौं सम्पति जुत सुरलोक।
घर घर नर नारी लसैं दिव्य रूप के ओक ॥ १४ ॥
चन्द्रमुखिन के भौंह जुग कुटिल कठोर उरोज।
बाननि सौं मन कौं जहाँ मारत एक मनोज ॥ १५ ॥
जहाँ चित्त चोरी करै मधुर बदन मुसकानि।
रूप ठगत है द्रगन कौं और न दूजो जानि ॥ १६ ॥
ता नगरी को प्रभु बड़ो हाड़ा सुरजनराव।
रच्यो एक सब गुननि को बर विरञ्चि समुदाव ॥ १७॥

बाजत नगारे जहाँ गाजत गयन्द, तहाँ सिंह सम कीनो बीर संगर बिहार है। कहै मतिराम कवि लोगनि कौं रीझि करि, दीने ते दुरद जे चुवत मदधार हैं॥ शत्रुसाल नन्द राव भावसिंह तेग त्याग, तोसे और औनि तल आजु न उदार हैं। हाथिन विदारिबे कों हाथ हैं हथ्यार तेरे, दारिद बिदारिबे को हाथियै हथ्यार हैं॥ १८॥

चरन धरे न भूमि बिहरै तहाँई जहाँ, फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है। भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगनि मैं, करत न अंगराग कुंकुम को पंक है॥ कहै मतिराम देखि बातायन बीच आयो, आतप मलीन होत बदन मयंक है। कैसे वह बाल लाल बाहर बिजन आवै, बिजन-बयार लागे लचकत लङ्क है॥ १६॥

जूथपति बैठ्यो पानी पोषत प्रबलमद कलभ करेनु कानि लीन संग सुखतें। ग्रह गह्यौ गाढ़े बैर पीछले के बाढ़े भयो बलहीन विकल करन दीह दुखतें॥ कहै मतिराम सुमिरत ही समीप लखे ऐसी करतूति भई साहिब सुरुख तें। दोऊ बातैं छूटी गजराज की बराबर ही पाँव ग्राह मुख ते पुकार निज मुखतें॥ २०॥

सोने कैसी बेली अति सुन्दर नवेली बाल, ठाढ़ी ही अकेली अलबेली द्वार महियाँ। मतिराम अँखियाँ सुधा की बरषासी भईं, गई जब दीठि वाके मुखचन्द पहियाँ॥ नेक नीरे जाइ करि बातनि लगाइ करि, कछू मन पाइ हरि वाकी गही बहियाँ। सैननि चरचि लई गौननि थकित भई, नैननि में चाह करै बैननि में नहियाँ॥ २१॥

गुच्छनि के अवतंस लसै सिखिपच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लव में मतिराम सुहायो॥

गुञ्जनि के उर मंजुल हार निकुंजनि ते कढ़ि बाहिर आयो।
आजको रूप लखे ब्रजराजको आजही आँखिनको फल पायो॥२२॥
कुन्दन को रँग फीको लगै झलकै असि अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई॥
कोटिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसुकान मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरेह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सुनिकाई२३
खेलन चोर मिहीचनी आजु गई हुती पाछिले द्यौस की नाई।
आली कहा कहौं एक भई मतिराम नई यह बात तहाँई॥
एकहि भौन दुरे इक संगही अंगसौं अंग छुवायो कन्हाई।
कम्प छुट्यो तन स्वेद बढ़यो तनुरोम उठ्यो अंखियाँभरिआई२४॥
केलि की राति अघाने नहीं दिनही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानी दे जाइयो भीतर बैठि के बात सुनाई॥
जेठि पठाई गई दुलही हँसी हेरे हरै मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल में कान न दीन्हीं सु गेह की देहरि पै धरि आई २५॥
आपने हाथ सों देत महावर आपुहि बार शृँगारत नीके।
आपनहीं पहिरावत आनि कै हार सँवारि कै मौलसिरी के॥
हौं सखि लाजन जात गड़ी मतिराम स्वभाव कहा कहौं पीके।
लोग मिलें घर घेरे कहैं अबहींते ये चेरे भये दुलहीके॥ २६॥
प्यार पगी पगरी पियकी बसि भीतर आपने सीस सँवारी।
एते में आँगनते उठिकै तहँ आइ गये मतिराम बिहारी॥
देखि उतारनि लागि पिया पिय सौंहनि सों बहुरो न उतारी।
नैन नचाइ लजाइ रही मुसुकाइ लला उर लाइ पियारी॥२७॥
पियत रहै अधरानि को रस अति मधुर अमोल।
तातें मीठो कढ़त है बाल बदन तें बोल॥ २८॥
नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाइ।
आग लेन आई हिये मेरे गई लगाय॥ २९॥

प्रीतम को मन भावती मिलत प्रेम उत्कण्ठ।
बाँहि न छूटै कंठते नाहि न छूटै कण्ठ ॥३०॥

कुलपति मिश्र

कुलपति मिश्र आगरे के रहने वाले चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। चतुर्वेदी ब्राह्मण में मिश्र शुक्ल आदि सभी आस्पद होते हैं। इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था। इनका जन्म अनुमान से संवत् १६७७ विक्रम में हुआ। इनका रचा हुआ एक ग्रंथ "रस रहस्य" मिलता है, वह सं १७२७ में समाप्त हुआ था। इनके मरण–काल का कुछ पता नहीं चलता।

कुलपति मिश्र संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। मम्मट के आधार पर रसरहस्य में इन्होंने काव्य के कई अंगों की विद्वत्ता पूर्ण आलोचना की है। काव्य के दोष, गुण, अलंकार, रस आदि का वर्णन रसरहस्य में अच्छा है। यह ग्रंथ इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है, परंतु बहुत अशुद्ध है। इसके सिवाय द्रोण पर्व, गुण रस रहस्य, संग्रह सार, युक्ति तरंगिणी, और नखशिख नामक ग्रंथ भी इनके रचे हुये बतलाये जाते हैं; परंतु अभी तक कहीं से वे प्रकाशित नहीं हुये।

ये जयपुर के महाराजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के यहाँ रहते थे। रसरहस्य में अलंकारों के उदाहरण में रामसिंह की प्रशंसा के ही छंद अधिक हैं। कुलपति ने अपनी कविता में प्राकृत मिश्रित और उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है।

इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

१

उर बेधत पानिप हरत मुक्ता जनि बिलखाय।
नाकि वास लहि है गुनी दे अधरन सिर पाय॥

२

दान बिन धनी सनमान बिन गुनी ऐसे विष बिन फनी अनी सूर न सहत हैं। मंत्र बिन भूप ऐसे जल बिन कूप जैसे लाज बिन कामिनि के गुननि कहत हैं। वेद बिन यज्ञ जप जोग मन बस बिन ज्ञान बिन योगी मन ऐसे निबहत हैं। चंद बिन निशा प्राण प्यारी अनुराग बिन सील बिन लोचन ज्यों सोभा को लहत हैं॥

३

दिसि पूरि प्रभा करिकै दसहू गुन कोकन के अति मोद लहै।
रँगि राखी रसा रँग कुंकुम के अलि गुंजत ते जस पुंज कहै।
निसि एक ह्वै पंकज की पतनीन के वाके हिये अनुराग रहै।
मनो याही ते सूरज प्रात समै नित आवत है अरुनाई लहै॥

४

नीति बिना न बिराजत राज न राजत नीति जु धर्म बिना है।
फीको लगै बिन साहस रूपरु लाज बिना कुल की अबला है।
सूर के हाथ बिना हथियार गयंद बिना दरबार न भा है।
मान बिना कविता की न ओप है दान बिना जस पावै कहा है॥

जसवन्तसिंह

जसवन्तसिंह जोधपुर के महाराज थे। महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र और अमरसिंह के छोटे भाई थे। इनका जन्म सं० १६८२ में हुआ। ये सं० १६९५ में अपने पिता के स्वर्गवासी होने पर सिंहासनासीन हुये। सं० १६९१ में अमरसिंह को गजसिंह ने उद्धत स्वभाव होने के कारण देश से निकाल दिया था। इसी से द्वितीय पुत्र जसवन्तसिंह को राजगद्दी मिली। ये वेही अमरसिंह हैं, जिनकी प्रशंसा में बनवारी कवि ने कविता की है। औरंगज़ेब के इतिहास से जसवन्तसिंह के जीवन का बहुत सम्बन्ध है जो इतिहास पढ़ने वालों से छिपा नहीं है। इनका देहान्त सं० १७३८ में, काबुल में हुआ। कहते हैं, औरंगज़ेब ने उन्हें विष दिला कर मरवा डाला था।

जसवन्तसिंह भाषा के बड़े मर्मज्ञ कवि थे। इन्होंने इन ग्रन्थों की रचना की है—भाषा भूषण, अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव प्रकाश, आनन्द विलास, सिद्धान्त बोध, सिद्धान्त सार, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक। भाषा भूषण के सिवाय इनके शेष ग्रन्थ वेदान्त सम्बन्धी हैं। भाषा भूषण २९१ दोहों का अलंकार का ग्रन्थ है।

जसवन्तसिंह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

मुख शशि वा शशि सों अधिक उदित जोति दिन राति।
सागर तें उपजी न यह कमला अपर सोहाति॥ १॥
नैन कमल ये ऐन हैं और कमल केहि काम।
गमन गरत नीकी लगै कनक लता यह बाम॥ २॥

धरम दुरै आरोप तें सुद्धापन्हुति होय।
उर पर नाहिं उरोज ये कनक लता फल दोय ॥ ३ ॥
परजस्ता गुन और को और विषे आरोप।
होय सुधाधर नाहिं यह बदन सुधाधर ओप ॥ ४ ॥

बनवारी

बनवारी सं० १६९० के लगभग हुये। शाहजहाँ के दरबार में सलाबतखाँ ने अमरसिंह को "गँवार" कह दिया था। इसी पर क्रुद्ध होकर अमरसिंह ने उसे दरबार ही में मार डाला। बनवारी ने उसी समय की घटना लेकर ये ंद कहे हैं :—

१

धन्य अमर छिति छत्रपति अमर निहारो मान।
साहजहाँ की गोद में हत्यो सलाबत खान ॥

२

उत गँकार मुख तें कढ़ी इत निकसी जमधार।
"वार" कहन पायो नहीं कीन्हो जमधर पार ॥

३

आनि कै सलाबत खाँ जोरि कै जनाई बात
तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी।
दिल्लीपति साह को चलन चलिबे को भयो
गाज्यो गजसिंह को सुनी है बात बरकी।
कहै बनवारी बादसाहि के तखत पास
फरकि फरकि लोथ लोथिन सों अरकी।
करकी बड़ाई कै बड़ाई बाहिबे की करौं
बाढ़ि की बड़ाई कै बड़ाई जमधर की ॥

बेनी

बेनी नाम के दो तीन कवि हो गये हैं। एक बेनी असनी के बन्दीजन थे। उनका समय सं० १६९० के आप पास कहा जाता है। वे दिल्लगी की कविताएँ बनाने में बड़े निपुण थे। दूसरे बेनी जि० रायबरेली में बेंती गाँव के बन्दीजन थे। शिवसिंह सरोज में उनका समय सं० १८४४ लिखा है। और तीसरे बेनी लखनऊ के बाजपेयी थे। उनका समय शिवसिंह सरोज में सं० १८७६ लिखा है। तीसरे बेनी कविता में अपना नाम "बेनी प्रवीन" रखते थे। दिल्लगी की कविताएँ प्रायः सब असनी वाले बेनी की बनाई हुई हैं। पहले और दूसरे बेनी की बहुत सी कविताओं में यह निर्णय करना कठिन है कि कौन किसकी बनाई हुई हैं। तीसरे बेनी की कविता "बेनी प्रवीन" नाम से सहज में ही पहचानी जा सकती है। यहाँ हम पहले और दूसरे बेनी की कुछ कविताएँ उद्धृत करते हैं:-

कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो लीनी दाम थोरो जान नई सुघरई है॥ रायजू को रायजू रजाई दीनी राजी ह्वै कै सहर में ठौर ठौर सोहरत भई है॥ बेनी कवि पाय कै अघाय रहे घरी द्वैक कहत न बने कछु ऐसी मति ठई है॥ साँस लेत उड़िगो उपल्ला और भितल्ला सबै दिन द्वै कै बाती हेत रुई रह गई है॥ १॥

आध पाव तेल में तयारी भई रोशनी की आध पाव रूई में पोशाक भई वर की॥ आध पाव छाले को गिनौराँ दियो भाइन को माँगि माँगि लायो है पराई चीज घरकी॥ आधी आधी जोरि बेनी कवि की बिदाई कीनी ब्याहि आयो जबते न

बोले बात थिरकी ॥ देखि देखि कागद तबीअत सुमाव्वी भई साद़ी काह भई बरबादी भई घरकी ॥ २ ॥

सेर चार चाउर पसेरिक पिसान माँग्यो तापै खरे डारे कोऊ खाने बड़ी घानी ना। बहू को बुलाय मसलहत सिखाय कान पैठ जा रसोई कोऊ परसे बेगानी ना। बेनी कवि कहै कहा आये आज याके यहाँ देखि सुनि परे कहूँ अन्न की निसानी ना। कीनी मेहमानी जुग्यो पान औ न पानी बचे आपै बड़ो दानी कोऊ जानी कोऊ जानी ना ॥ ३ ॥

हाव भाव विविध दिखावे भली भाँतिन सों मिलत न रति दान जागे संग जामिनी। सुबरन भूषन सँवारे ते बिफल होत जाहिर किये ते हँसे नर गज गामिनी। रहे मन मारे लाज लागत उघारे बात मन पछतात न कहत कहूँ भामिनी। बेनी कवि कहै बड़े पापन ते होत दोऊ सूमको सुकवि औ नपुंसक को कामिनी ॥ ४ ॥

संभु नैन जाल औ फनी को फूतकार कहा जाके आगे महाकाल दौरत हरौलीतें ॥ साती चिरजीवी पुनि मारकंडे लोमस लों देख कम्पमान होत खोलें जब झोलीतें। गरल अनल औ प्रलै को दावानल भल बेनी कवि छेदि लेत गिरत हथोलीतें। बचन न पावें धनवन्तरि जो आवें हर गोविन्द बचावें हरगोविद की गोली तें ॥ ५ ॥

बार बार लीखें लगीं लाखन जुआ के जोट आँखिन बरौनिन में कीचर छपानो है। कानन कनोई नाक चपटी चुवत रैंट कारे कारे दंतन में कीट लपटानो है। मूड़ पै मकर जारो दौलत अँधारो लगै ओढ़े मेलवारो फटो बसन पुरानो है। बोलत ही थूक के फुहारे चलें फूहरि के पाद पाद पीसत पिसान हू उड़ानो है ॥ ६ ॥

गढ़ि जात बाजी औ गयन्द गन अड़ि जात सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ।की। दावन उठाय पाय धोखे जो धरत होत आप गरकाप रहिजात पाग मऊ की। बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपे गात रथन के पथ ना विपद बरदऊ की। बार बार कहत पुकार करतार तोसों मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की॥ ७॥

चूक सो लगत चाखे लूक सो लगावै कंठ ताप सरसावै है अपूरब अराम के। रस को न लेस चोपी रेसा है बिसेस छाँड़ि दीन्हे सब देस पकसाने परे घाम के। बुरे बदसूरत बिलाने बदबोयदार बेनी कहै बकला बनाये मानो चाम के। कौड़ी के न काम के सु आये बिनदाम के हैं निपट निकाम हैं ये आम दयाराम के॥ ८॥

चींटी की चलावै को मसा के मुख आय जायं साँस की पवन लागे कोसन भगत हैं। ऐनक लगाय मरू मरू कै निहारे परै अनु परमानु की समानता खगत हैं। बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौ बखान करौं मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है। ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगत है॥ ९॥

बियत बिलोकत ही मुनि मन डोलि उठे बोलि उठे बरही बिनोद भरे बन बन। अकल विकल है बिकाने रे पथिक जन ऊर्द्ध मुख चातक अधोमुख मराल गन। बेनी कवि कहत मही के महाभाग भये सुखद सँयोगिन बियोगिन के ताप तन। कंज पुंज गंजन कृषी दल के रंजन सो आये मान भंजन ये अंजन बरन घन॥ १०॥

करि की चुराई चाल सिंह को चुरायो लङ्क शशि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की। पिक को चुरायो बैन मृग

को चुरायो नैन दसन अनार हाँसी बीजरी गम्भीर की। कहै कवि बेनी बेनी ब्याल की चुराइ लीनी रती रती शोभा सब रति के शरीर की। अब तौ कन्हैया जू को चितहू चुराइ लीन्ही छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की ॥ ११ ॥

ऊंची चाली चिक्क मिसी दाँतन में बातन में बार बार हेरि हेरि मन मुसुकाने हैं। मुख के न दरस परस मरदूमिन के लै रहैं मुकुर औ अतर अंग साने हैं। बेनी कवि कहै आहि ऊहि में प्रवीन बड़े निपट निकाम कहूँ काहू के न माने हैं। अजस के खाने जिन्हें कवि न बखाने जिन ऐसे धरे बाने ते जनाने सम जाने हैं ॥ १२ ॥

पृथु नल जनक जजाति मानधाता ऐसे केते भये भूप यश छिति पर छाइगे। काल चक्र परे सक्र सैकरन होत जात कहाँ लौं गनावों विधि बासर बिताइगे। बेनो साज सम्पति समाज साज सेना कहाँ पायन पसारि हाथ खोले मुख बाइगे। छुद्र छितिपालन की गिनती गिनावै कौन रावन से बली तेऊ बुल्ला से बिलाइगे ॥ १३ ॥

बेद मत सोधि सोधि देखि कै पुरान सबै संतन असंतन को भेद को बतावतो। कपटी कपूत कूर कलि के कुचाली लोग कौन रामनामहू की चरचा चलावतो। बेनी कवि कहै मानो मानो रे प्रमान यही पाहन से हिये कौन प्रेम उमगावतो। भारी भवसागर में कैसे जीव होते पार जो पै रामायण ना तुलसी बनावतो ॥ १४ ॥

बदन सुधाकरै उधारत सुधाकरै प्रकास वसुधा करै सुधा-करै मुधा करै। चरन धरा धरै मृणालऊ धराधरै सु ऐसे अधराधरै ये बिम्ब अधराधरै॥ बेनी दृग हा करै निहारत कहा करै सु बेनी कविता करै त्रिबेनी समता करै। सुरत में

सी करै सु मोहनै बसी करै बिरंचिहू वसी करै सु सौतिन मसी करै ॥ १५ ॥

मानव बनाये देव दानव बनाये यक्ष किन्नर बनाये पशु पक्षी नाग कारे हैं। दुरद बनाये लघु दीरघ बनाये केते सागर उजागर बनाये नदी नारे हैं। रचना सकल लोक लोकन बनाये ऐसी जुगुति में बेनी परबीनन के प्यारे हैं। राधे को बनाय विधि धोयो हाथ जाम्यो रंग ताको भयो चन्द्र कर झारे भये तारे हैं ॥ १६ ॥

बाजी के सुपीठ पै चढ़ायो पीठि आपनी दै कवि हरिनाथ को कछोहा मान सादरै। चक्कवै दिली के जे अथक्क अकबर सोऊ नरहरि पालकी को आपने कँधा धरै। बेनी कवि देनी को औ न देनी की न मोको सोच नावै नैन नीचे लखि बीरन को कादरै। राजन को दीबो कविराजन को काज अब राजन को लाज कविराजन को आदरै ॥ १७ ॥

सबलसिंह चौहान

सबलसिंह चौहान का जन्म संवत् १७०२ के लगभग और मरण संवत् १७६२ के लगभग अनुमान किया जाता है। शिवसिंह ने इनको "इटावा के किसी गाँव का ज़मींदार" लिखा है। इन्होंने महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा दोहे चौपाई में लिखी है। उसमें युद्धों का वर्णन अच्छा किया है। चक्रव्यूह युद्ध में अभिमन्यु के अन्तिम प्रयास की कथा का वर्णन सुनिये, ये कैसा करते हैं:—

अभिमनु घेरे आय सब मारत अस्त्र अनेक।
जिमि मृगगण के यूथ महँ डरत न केहरि एक॥

लैके शूल कियो परिहारा बीर अनेक खेत महँ मारा
जूझी अनी भभरि कै भागे हँसिके द्रोण कहन अस लागे
धन्यधन्य अभिमनु गुण आगर सब क्षत्रिन महँ बड़ो उजागर
धन्य सहोद्रा जग में जाई ऐसे बीर जठर जनमाई
धन्य धन्य जग में पितु पारथ अभिमनु धन्य धन्य पुरुषारथ
एक बीर लाखन दल मारे अरु अनेक राजा संहारे
धनु काटे शंका नहि मनमें रुधिर प्रवाह चलत सब तनमें
यहि अनन्तर बोले कुरु राजा धनुष नाहि भाजत केहिकाजा
एक बीर को सबै डरत हैं घेरि क्यों न रथ धाय धरत हैं
बालक देखु करी यह करणी सेना जूझि परी सब धरणी

दुर्योधन या विधि कह्यो कर्ण द्रोण सों बैन।
बालक सब सेना बधी तुम सब देखत नैन॥

यह कहि कै दुर्योधन आये शब्द बीर आगे ह्वै धाये
क्षत्री घेरो अभिमनु रन में मानहुँ रवि आच्छादित घन में
लै के खड्ग फरी गहि हाथा काट्यो बहु क्षत्रिन को माथा
अभिमनु धाइ खड्ग परिहारे सम्मुख ज्योंहि पावै त्यहि मारे
भूरिश्रवा बाण दश छाँटे कुँवर हाथ को खड्गहि काटे
तीन बाण सारथि उर मारै आठ बाण तें अश्व सँहारे
सारथि जूझि गिरे मैदाना अभिमनु बीर चित्त अनुमाना
यहि अन्तर सेना सब धाये मारु मारु कै मारन आये
रथको खैंचि कुँवर कर लीन्हे ताते मारु भयानक कीन्हे
अभिमनु कोपि खम्भ परिहारे यक यक घाव बीर सब मारे

अर्जुन सुत इमि मारु किय महाबीर परचण्ड।
रूप भयानक देखियतु जिमि यम लीन्हे दण्ड॥

क्रोधित होइ चहूँ दिशि धाये मारि सबै सेना बिचलाये
यहि विधि किये भयानक भारत साहस धन्य धन्य पुरुषारथ
ऐसी मारु खम्भ सों कीन्हे दश सहस्त्र राजा बध लीन्हे
मारि सबै राजा बिचलाये करलै गदा कुरुपति धाये
शत बान्धव नृप संगहि आये अरु अनेक राजा मिलि धाये
चहुँ दिशि महारथी सब घेरे क्षत्री सबै वीर बहुतेरे
नाना अस्त्र सबहिं परिहारे निकट न जाहिँ दूरि ते मारे
दुर्योधन कहँ देखन पाये गहे खम्भ अभिमनु तब धाये
जुरे वीर क्षत्री बहुतेरे खम्भ घावते बधेउ घनेरे
जब नरेश के निकटहिं आये द्रोण गुरू दश वाण चलाये

गुरू द्रोण अति क्रोध कै मारे वाण अचूक।
कुँवर हाथ को खम्भ तब काटि कियो दो टूक॥

खम्भ कटे अभिमनु भे कैसे मणिबिनुफणिक विकलजगजैसे
क्रोधित भये सहोद्रा नंदन चरण घात कै तोरेउ स्यंदन
रथते कूदि कुँवर कर लीन्हे चका उठाय रणहिं शुभ कीन्हे
चका कुँवर कर शोभित कैसे हरि कर चक्र सुदर्शन जैसे
रुधिर प्रवाह चलत सब अंगा महा शूर मन नेकु न भंगा
गहि कै चका चहूँ दिशि धावै जेहि पावै तेहि मारि गिरावै
दुर्योधन पर चका चलाये गदा रोपि कुरुनाथ बचाये
छत्री घेरि लगे शर मारन जुरे आइ केते हथियारन
दुस्सासन सुत गदा प्रहारे अभिमनु के शिर ऊपर मारे
जूझे कुँवर परे तब धरणी जग महँ रही सदा यह करणी

धन्य धन्य सब कोउ कहै कुँवर रहौ मैदान।
पै गुरु द्रोण मलीन मुख कहैं बचन परिमान॥

कालिदास त्रिवेदी

कालिदास त्रिवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १७१० के लगभग बनपुरा गाँव (जिला कानपुर) में हुआ। इनकी पुस्तकों से इनके जन्म का कुछ पता नहीं चलता। इनके पुत्र कवीन्द्र और पौत्र दूलह भी बड़े प्रसिद्ध कवि हुये। कालिदास औरङ्गजेब के दल में किसी राजा के साथ सं० १७४५ की बीजापुर-गोलकुंडा वाली लड़ाई में गये थे। इनके लिखे हुये केवल तीन ग्रन्थों का अभी तक पता चला है—बधू विनोद, कालिदास हजारा, जंजीरा। बधू विनोद नायका भेद का ग्रन्थ है। हजारा में हिन्दी के पुराने २१२ कवियों के एकहजार छंद संग्रह किये गये हैं। जंजीरा में ३२ घनाक्षरी छंद बड़े अद्भुत हैं। इनके रचे हुये राधा माधव बुधमिलन विनोद नामक एक और ग्रन्थ का भी नाम सुना जाता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे लिखे जाते हैं—

गढ़न गढ़ी से गढ़ि महल मढ़ी से मढ़ि बीजापुर ओप्यो दलि मलि उजराई में। "कालिदास" कोप्यो वीर औलिया अलमगीर तीर तरवारि गह्यो पुहुमी पराई में। बूँद तें निकसि महिमंडल घमंड मची लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई में। गाड़ि कै सु झंडा आड़ कीन्ही बादशाह तातें डकरी चमुंडा गोलकुण्डा की लड़ाई में ॥ १ ॥

चूमों कर कंज मंजु अमल अनूप तेरो रूप के निधान कान्ह मो तन निहारि दे। कालिदास कहैं मेरे पास हरि हेरि हेरि माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दे। कुँवर कन्हैया मुख

चंद की जुन्हैया चारु लोचन चकोरन की प्यासन निवारि दे। मेरे कर मेहँदी लगी है नंदलाल प्यारे लट उरझी है नकबेसर सँभारि दे ॥ २ ॥

प्रथम समागम के औसर नबेली बाल सकल कलानि पिय प्यारे को रिझायो है। देखि चतुराई मन सोच भयो प्रीतम के लखि परनारि मन संभ्रम भुलायो है। कालिदास ताही समै निपट प्रवीन तिया काजर लै भीतिहूँ मैं चित्रक बनायो है। व्यात लिखी सिंहिनी निकट गजराज लिख्यो योनि ते निकसि छौना मस्तक पै आयो है ॥ ३ ॥

आलम और शेख

ठाकुर शिवसिंह ने आलम को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है, और इनका जन्म-संवत् १७१२ बतलाया है। ये औरङ्गजेब के समय में थे, और औरङ्गजेब के पुत्र शाहज़ादा मुअज्ज़म के पास रहा करते थे।

एक बार आलम ने शेख नामक रँगरेजिन को अपनी पगड़ी रँगने को दी। भूल से एक काग़ज़ का टुकड़ा, जिसमें आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिये बाँध दिया था, बँधा ही रह गया। पगड़ी धोते समय शेख ने उस काग़ज़ के टुकड़े को खोलकर पढ़ा। उसमें यह लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन"

शेख ने उसके नीचे "कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन" लिखकर, पगड़ी धोकर उसी में बाँध दिया। जब आलम को वह पगड़ी मिली और उन्होंने दोहे की पूर्ति हुई

देखी तब उसी समय वे शेख के घर गये, और उन्होंने उसे एक आना पगड़ी की रँगाई और एक हजार रुपये दोहे की पूर्ति कराई दी। उसी दिन से दोनों में प्रेम हो गया। यहाँ तक कि आलम ने मुसलमानी मत ग्रहण करके शेख से विवाह कर लिया। आलम और शेख दोनों की कविताएँ प्रेमके चमत्कार से पूर्ण हैं। शेख के गर्भ से आलम के एक पुत्र भी था, जिसका नाम जहान था। एक दिन मुअज्ज़म ने हँसी में शेख से पूछा-"क्या आलम की औरत आपही हैं?" शेख ने तुरन्त उत्तर दिया-हाँ, जहाँपनाह, जहान की मा मैं हीं हूँ"। मुअज्ज़म इससे बहुत लज्जित हुआ।

कोई कोई ऊपर के दोहे के स्थान पर शेख द्वारा नीचे लिखे कवित्त के चतुर्थ चरण की पूर्ति होनी बतलाते हैं। तीन चरण आलम ने बनाये थे, चौथे चरण की पूर्ति शेख ने की:—

प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के जोबन की जोति जगि जोर उमगत हैं। मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं झूमत हैं झुकि झुकि झँपि उघरत हैं। आलम सो नवल निकाई इन नैननि की पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं। चाहत हैं उड़िबे को देखत मयंक मुख जानत हैं रैनि ताते ताहि में रहत हैं॥

पंडित नकछेदी तिवारीने इसी घटना सम्बंधी एक और ही कवित्त लिखा है। वह यह है :—

घूँघट जमानिका है कारे कारे केश निशि खुटिला जराय जरे दीपक उजारी है। बाजत मधुर मृदबानी सो मृदङ्ग धुनि नैना नटनागर लकुट लट धारी है। आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै श्रम बिन्दु अंजुलि पुहुप भरि डारी है। अधर सु

रङ्गभूमि नृपति अनंग आगे नृत्य करै बेसर की मोती नृत्य कारी है ॥

इनमें से चाहे जिस छन्द की पूर्ति पर आलम रीझे हों, परन्तु इसमें संदेह नहीं, कि दोनों बड़े प्रेमी जीव थे। इन दोनों प्रेमियों की जितनी कविताएँ मिलती हैं, सब में बड़ा चमत्कार है। आलम और शेख के कोई ग्रन्थ नहीं मिलते। इधर उधर पुस्तकों में फुटकर छंद मिलते हैं। पाठकों के विनोदार्थ कुछ छंद हम नीचे प्रकाशित करते हैं :—

रति रन विषे जे रहे हैं पति सनमुख तिन्हैं बकसीस बकसी है मैं बिहँसि कै। करन को कंकन उरोजन को चन्द्र-हार कटि माहिँ किंकिनी रही है अति लसि कै॥ सेख कहै आदर सों आनन को दीन्हों पान नैनन में काजर बिराजै मन बसि कै। एरे बैरी बार ये रहे हैं पीठि पाछे तातें बार बार बाँधति हौं बार बार कसि कै॥

कैधों मोर सोर तजि गये री अनत भाजि कैधों उत दादुर न बोलत हैं ये दई। कैधों पिक चातक वधिक काहू मारि डारयो कैधों बक पाँति उत अंत गति ह्वै गई। आलम कहत आली अजहूँ न आये कंत कैधों उत रीति विपरीति विधि ने ठई। मदन महीप की दोहाई फिरिबे ते रही जूझि गये मेघ कैधों बीजुरी सती भई॥

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

लाल

लाल का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था। भूषण की तरह ये भी बड़े बीर कवि थे। इनका जन्म सं० १७१४ के लगभग माना जाता है। ये महाराज छत्रसाल के दरबार में रहा करते थे। बुंदेलखण्ड में प्रसिद्ध है कि ये महाराज छत्रसाल के साथ किसी लड़ाई में गये थे, और वहीं लड़कर मारे गये। इन्होंने "छत्र प्रकाश" नामक पुस्तक में, दोहा चौपाइयों में, महाराज छत्रसाल की जीवनी बड़ी ही उत्तमता से लिखी है। महाराज छत्रसाल शिवाजी महाराज के समय में बुन्देलखण्ड में हुये थे। ये एक साधारण स्थिति से बढ़ते बढ़ते बुंदेलखंड के राजा हो गये। इन्होंने पाँच सवार और २५ पयादों को लेकर औरङ्गजेब ऐसे कट्टर बादशाह का सामना किया और अपने साहस के बलपर यवनों का बुंदेलखंड से पैर उखाड़ दिया। लाल की कविता के कुछ नमूने देखियेः—

दान दया घमसान में जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिये ज्यों छत्ता छितिनाह॥

जिन में छिति छत्री छवि जाये चारिहुँ युगन होत जे आये।
भूमिभार भुज दंडनि थम्भे पूरन करें जु काज अरम्भे॥
गाय बेद दुजके रखवारे जुद्ध जीति जे देत नगारे।
छत्रिन की यह वृत्ति बनाई सदा जंग की खायँ कमाई॥
गाय वेद विप्रन प्रतिपालैं घाउ ऐंड़धारिन पर घालैं।
उद्यम तें संपति घर आवै उद्यम करै सपूत कहावै॥
उद्यम करै संग सब लागै उद्यम तें जग में जस जागै।
समुद उतरि उद्यम तें जैये उद्यम तें परमेश्वर पैये॥

जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई जंग वृत्ति छत्रिन तब पाई।
यह संसार कठिन रे भाई सबल उमड़ि निरबलको खाई॥
छनिक राज संपति के काजे बंधुन मारत बंधु न लाजै।
कछु काल गति जान न जाई सब में कठिन काल गति भाई॥
सदा प्रबुद्धि बुद्धि है जाकी तासों कैसे चले कज़ाकी।
साहस तजि उर आलस माँड़ै भाग भरोसे उद्यम छाँड़ै॥
ताहि तजै जग संपति ऐसे तरुनी तजै बृद्धपति जैसे।
बिपति माँह हिम्मति ठिक ठाने बढ़ती भये छिमा उर आने॥
बचन सुदेस सभनि में भाखै सुजस जोरिबे में रुचि राखै।
जुद्धनि जुरे अकेले सैसे सहज सुभाय बड़न के ऐसे॥
जाकी धरम रीति जग गावै जो प्रसिद्ध बलवन्त कहावै।
जाहि जोट भैयन की भावै करत अनारबीन बनि आवै॥
लै अवतार बड़े कुल आवै जुद्धन जुरै जगत जस गावै।
सत्य बचन जाके ठिक ठाये प्रीति जोग ये सात गनाये॥

गुरू गोविन्दसिंह

गुरू गोविन्दसिंह सिक्खों के दशवें गुरू थे। इनका जन्म सं० १७२३ ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी, शनिवार, को अर्द्ध रात्रि के समय पटना नगर में हुआ। इनके पिता का नाम गुरू तेगबहादुर और माता का गूजरी जी था। इनका विवाह सात ही वर्ष की अवस्था में लाहौर निवासी हरियश खत्री की कन्या से हुआ था।

किसी समय गुरू गोविन्दसिंह हिन्दू जाति की ढाल हुये थे। इन्होंने पञ्जाब में, हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा के लिये

एक वीर जाति ही उत्पन्न कर दी। विद्वानों का ये बड़ा आदर करते थे। स्वयं भी बड़े मेधावी, देश कालज्ञ और रण निपुण थे। भादों बदी ४ सं० १७६५ की आधी रात में सोते समय अताउल्ला और गूल खाँ नामक दो सगे भाई पठानों ने गोदावरी नदी के किनारे अविचल नामक नगर में इनके पेट में कटार भोंक दी। क्योंकि उन पठानों के पिता को गुरू ने युद्ध में मार डाला था। गुरू साहब चीख कर जाग उठे, और उन्होंने उसी समय तलवार उठाकर, लपक कर ऐसा हाथ मारा कि खाँ के दो टुकड़े हो गये। घाव से अधिक रक्त निकलने के कारण वहीं इनके भी प्राण गये।

गुरू गोविन्दसिंह संस्कृत और फारसी के विद्वान् और हिन्दी के कवि थे। इन्होंने जाप, सुनीति प्रकाश, ज्ञान प्रबोध, प्रेम सुमार्ग, बुद्धि सागर, विचित्र नाटक, और ग्रन्थ साहब के कुछ अंश की रचना की। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो कि भूपन के भूप हो कि दाता महा दान हो। प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महामान हो। विद्या के विचार हो कि अद्वै अवतार हो कि सिद्धता की सूर्त हो कि सिद्धता की सान हो। जोबन के जाल हो कि कालहू के गाल हो कि सत्रुन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो॥ १॥

खूक मलहारी गज गदहा विभूति धारी गिदुआ मसान बास करयोई करत हैं। घूघू मठ बासी लगे डोलत उदासी मृग तरवर सदीव मोन साधेई मरत हैं॥ विन्दु के सिधैया ताहि तीज की बड़ैया देत बन्दरा सदीव पाय नागे

हीं फिरत हैं। अंगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे के तरत हैं॥ २॥
धन्न जियो तिहँ को जग में मुख तें हरि चित्त में युद्ध बिचारैं।
देह अनित्त न नित्त रहैं जसु नाव चढ़े भवसागर तारैं॥
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक ज्यों उजियारैं।
ज्ञानहिं की बढ़ती मनो हाथ लै कायरता कतवार बुहारैं॥ ३॥
का भयो जो सबही जग जीत सु लोगन को बहु त्रास दिखायो।
और कहा जु पै देस बिदेसन माँहि भले गज गाहि बंधायो॥
जो मन जीतत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो।
लाज गई कछु काज सस्यो नहिँ लोकगयो परलोक गमायो॥४॥

घनआनन्द

घन आनन्द जाति के कायस्थ थे, और दिल्ली में रहते थे। सं० १७९६ में जब नादिरशाह ने मथुरा को जीता, ये उसी समय मारे गये। इनके जन्म-संवत् का ठीक ठीक पता नहीं। इनके रचे हुये निम्न लिखित ग्रंथ खोज में मिले हैं:—

सुजान सागर, कोकसार, घनानन्द कवित्त, रस केलि बल्ली, कृपाकाण्ड निबंध।

इनकी कविता में प्रेम और विरह का वर्णन बड़ा मनोहर हुआ है। भक्ति रस की कविता भी इन्होंने अच्छी की है। इनकी कुछ कविताओं का संग्रह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "सुजान-शतक" नाम से किया है। उसमें सौ से अधिक सवैया कवित्त छप्पय और दोहे हैं।

घन आनंद की कविता के कुछ नमूने हम यहाँ लिखते हैं–

१

पहिले अपनाय सुजान सनेही सों क्यों फिरि नेह को तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार मझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनँद आपने चातक को गुन बाँधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्यायकै ज्याय बढ़ायकैआसविसास मैं क्यों विषघोरियै जू।

२

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकी सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौझिझकैंकपटीजोनिसाँकनहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तैं दूसरों आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

३

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य यथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबहीविधिसज्जनता सरसौ।
घन आनँद जीवन दायक हौ कछू मेरियो पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजानके आँगन मोअंसुवानको लै बरसौ।

४

तब तो दुरि दूरहि ते मुसुकाय बचाय के और को दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैनन में सरसे।
अब तो उर माँहि बसाय कै मारत एजू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह निबाहन जानत हे तौ सनेह की धार में काहे धँसे।

५

हमसौं हितकै कित कौ नित ही चित बीच बियोगहिपोइ चले।
सु अखैबट बीज लौं फैलिपर्यो बनमाली कहाँ धौं समोइचले।
घनआनँद छाँह बितान तन्यो हमैं ताप के आतप खोइ चले।
कबहूँ तेहि मूल तौ बैठिये आइ सुजान जो बीजहिं बोइ चले।

६

गुरनि बतायो राधामोहन हू गायो सदा सुखद सुहायो वृंदावन गाढ़े गहुरे। अद्भुत अभूत महि मंडन परे ते परे जीवन को लाहु हाहा क्यों न ताहि लहुरे। आनंद को घन छायो रहत निरंतर ही सरस सुदेय सों पपीहा पन बहुरे। यमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी पावन पुलिन पै पतित परि रहुरे ॥

देव

देव बड़े प्रेमी कवि थे। इनका जन्म सं० १७३० वि० में इटावे में हुआ। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये ७२ ग्रंथों के रचयिता कहे जाते हैं। हिन्दी के पुराने कवियों में इतनी अधिक संख्या में ग्रंथ किसी ने नहीं रचे। अब तक इनके रचे हुये निम्न लिखित ग्रंथों का पता लगा है :—

(१) भाव विलास, (२) अष्टयाम, (३) भवानी विलास, (४) सुंदरी सिंदूर, (५) सुजान विनोद, (६) प्रेम तरंग, (७) राग रत्नाकर, (८) कुशल विलास, (९) देव चरित्र, (१०) प्रेम चन्द्रिका, (११) जाति विलास, (१२) रस विलास, (१३) काव्य रसायन, (१४) सुख सागर तरंग, (१५) देव माया प्रपंच (नाटक), (१६) वृक्ष विलास, (१७) पावस विलास, (१८) ब्रह्म दर्शन पचीसी, (१९) तत्व दर्शन पचीसी, (२०) आत्म दर्शन पचीसी, (२१) जगदर्शन पचीसी, (२२) रसानन्द लहरी, (२३) प्रेम दीपिका, (२४) सुमिल विनोद, (२५) राधिका विलास, (२६) नीति शतक, (२७) नखशिख।

इनके ग्रंथ प्रायः सब शृंगार रस पर हैं। इनकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। इनकी रचना में प्रसाद, माधुर्य, अर्थ व्यक्तता और ओज आदि गुणों का अच्छा चमत्कार देखने में आता है। इनकी कविता में कहीं कहीं बहुत गूढ़-बारीक भाव ऐसे मिलते हैं, जो पढ़ते ही समझ में न आने से कुछ रूखे से जान पड़ते हैं। परंतु कुछ विचार करने से उनमें मनोहर रहस्य भरा हुआ मिलता है। उर्दू कवियों में गालिब की कविता में भी ऐसी ही विलक्षणता पाई जाती है। देव का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार दिखाई पड़ता है।

देव की कविता से ऐसा बोध होता है कि इन्होंने सारे भारतवर्ष की यात्रा की थी। क्योंकि इनकी कविता में भारत की प्रत्येक जाति की-प्रत्येक प्रांत की स्त्रियों का विलास वर्णित है, जो प्रत्यक्ष देखे बिना नहीं हो सकता।

इन्होंने सं० १७४६ के लगभग औरङ्गज़ेब के बड़े पुत्र आजमशाह को भाव विलास और अष्टयाम सुनाया था। आज़मशाह ने इन ग्रन्थों की प्रशंसा भी की थी। फिर ये क्रमशः भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह (फफूँद-इटावा-निवासी) राजा उद्योत सिंह, राजा भोगीलाल, पिहानी के अकबर अली खाँ आदि के आश्रय में रहे। परन्तु किसी आश्रयदाता ने इन का यथोचित सम्मान नहीं किया। मेरी राय में आश्रयदाताओं से सम्मान न पाने का कारण इनकी कविता का जटिल होना ही है।

देव बड़े विलासी और रसिक थे। शोभा और शृंगार के बड़े चाहक थे। इसमें संदेह नहीं कि इनकी प्रतिभा ऊँचे दरजे की थी, परन्तु खेद है कि सिवाय प्यारी और प्यारे के हाव भाव, कटाक्ष, संयोग, वियोग, हास परिहास वर्णन के

लोक-हित-साधन की चर्चा ये बहुत कम कर सके। इसी कारण से इनकी पुस्तकों का आदर और प्रचार भी हिन्दू समाज में कम हुआ। जीवन के अंत समय में इन्होंने वैराग्य पर भी कुछ कविताएँ लिखीं। परन्तु वे इंद्रिय-शैथिल्य के कारण लिखी गईं जान पड़ती हैं, समाज-हित की स्वाभाविक कामना से नहीं। देव की जीवनी का निचोड़ हमें यही जान पड़ता है कि ये विषयी और शृंगारी कवि थे, परन्तु थे सूक्ष्मदर्शी। इनको गाने बजाने का भी बड़ा शौक था। इनका मरण काल सं० १८०२ के लगभग अनुमान किया जाता है। नमूने के तौर पर इनके कुछ छंद यहाँ लिखे जाते हैं:—

कुल को सी करनी कुलीन की सी कोमलता सील की सी संपति सुसील कुल कामिनी। दान को सो आदर उदारताई सूर की सी गुन की लुनाई गज गति गजगामिनी॥ ग्रीषम को सलिल सिसिर कैसो घाम देव हेमंत हँसत जलदागम की दामिनी। पूनो को सो चन्द्रमा प्रभात को सो सूरज सरद को सो बासुर बसंत की सी जामिनी॥ १॥

सूरज मुखी सों चंद्रमुखी को बिराजै मुख कंदकली दंत नाशा किंशुक सुधारी सी। मधुप से लोयन मधूक दल ऐसे ओंठ श्रीफल से कुच कच बेलि तिमिरारी सी। मोती बेल कैसे फूली मोतिन में भूषण सुचीर गुल चाँदनी सों चंपक की डारी सी। केलि के महल फूलि रही फुलवारी "देव" ताही में उज्यारी प्यारी फूली फुलवारी सी॥ २॥

डार द्रुम पालन बिछौना नव पल्लव के सुमन झँगूला सोहै तन छवि भारी दै। पवन झुलावैं केकी कीर बतरावैं "देव' कोकिल हलावैं हुलसावैं करतारी दै। पूरित पराग सों उतारा करै राई नोन कंज कली नाइका लतानि सिर सारी दै। मदन

महीप जू को बालक बसंत ताहि प्रात हिये लावत गुलाब चटकारी दै ॥ ३ ॥

नील पट तन पर घन से घुमाय राखौं दन्तन की चमक छटा सी बिचरति हौं। हीरन की किरन लगाइ राखौं जुगनू सी कोकिला पपीहा पिक बानी सों भरति हौं। कीच अँसुवान के मचाय कवि "देव" कहै बालम बिदेश को पधारिबो हरनि हौं। इन्द्र कैसो धनु साज बेसर कसत आज रहुरे बसंत तोहिँ पावस करति हौं ॥ ४ ॥

आवन सुनो है मन भावन को भावती ने आँखिन अनंद आँसु ढरकि ढरकि उठैं। "देव" दृग दोऊ दौरि जात द्वार देहरी लों केहरी सी साँसैं खरी खरकि खरकि उठैं। टहलै करति टहलै न हाथ पाँय रंग महलै निहारि तनी तरकि तरकि उठैं। सरकि सरकि सारी दरकि दरकि आँगी औचक उचैहैं कुच फरकि फरकि उठैं ॥ ५ ॥

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेमन रचा है चित और अरचा है चित चारीको। छाड़यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरख न सोक ना अलोक नरनारी को। घाम सित मेह न बिचारै सुख देहहु को प्रीति ना सनेह उर बन ना अँध्यारी को। भूलेहु न भोग बड़ी बिपति बियोग व्यथा जोग हू ते कठिन सँजोग परनारी को ॥ ६ ॥

दुहूँ मुख चंद ओर चितवैं चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितैबो ललचात हैं। हाँसनि हँसत बिन हाँसी बिहँसत मिले गातनि सों गात बात बातनि मे बात हैं। प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नेकहूँ न अनखात हैं। देखि ना थकत देखि देखि ना सकत "देव" देखिबे की घान देखि देखि न अघात हैं ॥ ७ ॥

बरुनी बघम्बर मैं गूदरी पलक दोऊ कोये राते बसन भगो-हैं भेख रखियाँ। बूड़ी जलही में दिन जामिनि रहति भौंहें धूम शिर छायो बिरहानल बिलखियाँ। आँसू ज्यौं फटिक माल लाल डोरे सेल्ही सजि भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ। दीजिये दरश देव लीजिये सँजोगिन कै जोगिन ह्वै बैठी वा वियोगिन की अँखिया ॥ ८ ॥

सखी के सकोच गुरु सोच मृग लोचनि रिसानी पियसों जु उन नेकु हँसि छुयो गात। देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गये यहि सिसकि सिसिकि निसि खोई रोय पायो प्रात। को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह बिथा हाय हाय करि पछिताय न कछू सोहात। बड़े बढ़े नैनन सों आँसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो विलानो जात ॥ ९ ॥

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हो। कैसे यह लोक नर लोक बर लोकनि मैं लीन्हीं मैं अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौं। तन जाउ मन जाउ देव गुरुजन जाउ जीव किन जाउ टेक टरति न टारी हौं। वृन्दावन वारी बनवारी की मुकुट वारी पीत पट वारी वहि मूरति पै वारी हौं ॥ १० ॥

जब तें कुँवर कान्ह रावरी कला निधान कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी। तब ही तें देव देखी देवता सी हँसति सी रीझति सी खीझति सी रूठति रिसानी सी। छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी छिन सी जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी। बाँधी सी बँधी सी विष बूड़ति बिमोहित सी बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी सी ॥११॥

बालम बिरह जिन जान्यो न जनम भरि बरि बरि उठै ज्यौं ज्यौं बरसै बरफ राति। बीजनौं डुरावती सखी जन त्यौं सीतहूँ

मैं सौति के सराप तन तायनि तरफराति। देव कहै स्वासन ही अंसुवा सुखात मुख निकसे न बात ऐसी सिसकी सरफराति। लोटि लोटि परत करोट पट पाटी लै लै सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति॥ १२॥

देव जू जो चित चाहिये नाह तौ नेहनिबाहिये देह हस्योपरै।
जौ समझाइ सुझाइये राह अमारग मैं पग धोखे धस्यो परै॥
नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरो कत ऊँचे उसाँसगरोक्योंभस्योपरै।
रावरो रूप पियो अँखियानि भस्योसोभस्योउबस्योसोढस्योपरै॥१३
चोट लगी इन नैनन की दिनहूँ इन खोरिन सों कढ़ती हौ।
देखन में मन मोहि लियो छिपि ओट झरोखन के झँकती हो॥
"देव" कहै तुम हौ कपटी तिरछी अँखियाँ करि कै तकती हौ।
जानिपरै न कछू मन की मिलिहौ कबहूँ कि हमैं ठगती हौ॥१४॥
भेस भये विष भावतें भूखन भूख न भोजन की कछु ईछी।
मीचु की साध न सोंधे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी॥
चंदन तौ चितयो नहि जात चुभी चित माहिं चितौनि तिरीछी।
फूलज्योंसूल सिलासमसेज बिछौननिबीच बिछीजनु बीछी॥१५॥
जाके न काम न क्रोध विरोध न लोभ छुवै नहि छोभ को छाहौं।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर मोल जवाहिर ता अति चाहौं।
बानी पुनीत त्यों देवधुनी रस आरद सारद के गुन गाहौं।
सीलससीस विताछविता कविताहिरचै कविताहि सराहौं॥१६॥
कंचन बेलि सी नौल बधू जमुना जल केलि सहेलिनिआनी।
रोमवली नवली कहि देव सु गोरे से गात नहात सुहानी॥
कान्ह अचानक बोलि उठे उर बाल के ब्याल बधू लपटानी॥
धाइ कै धाइ गही ससवाइ दुहूँ कर झारति अंग अयानी॥१७॥
बारे बड़े उमड़े सब जैबे को तौन तुम्हें पठवो बलिहारी।
मेरे तो जीवन देव यही धनु या ब्रज पाई में भीख तिहारो।

जानै न रीति अथाइनि की नित गाइनि मैं।बन भूमि निहारी।
याहि कोऊ पहिचानै कहाकछु जानै कहा मेरोकुञ्ज बिहारी ॥१८॥

बैताल

बैताल कवि का जन्म सं० १७३४ में हुआ। ये विक्रमशाह के दरबार में रहते थे। इन्होंने अपने छन्द प्रायः विक्रम को सम्बोधन करके बनाये हैं। ये नीति विषयक बड़ी अच्छी कविता करते थे। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। केवल थोड़े से स्फुट छन्द मिलते हैं; उनमें से कुछ छन्दों को हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

जीभि जोग अरु भोग जीभि बहु रोग बढ़ावै।
जीभि करै उद्योग जीभि लै कैद करावै॥
जीभि स्वर्ग लै जाय जीभि सब नरक दिखावै।
जीभि मिलावै राम जीभि सब देह धरावै॥
निज जीभि ओठ एकत्र करि बाँट सहारे तोलिये।
बैताल कहै विक्रम सुनो जीभि सँभारे बोलिये॥ १॥
टका करै कुल हूल टका मिरदङ्ग बजावै।
टका चढ़े सुखपाल टका सिर छत्र धरावै॥
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़ लड़ैया॥
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रात दिन।
बैतालकहै विक्रमसुनो धिक जीवन एक टकेबिन॥ २॥
मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥

बाँभन सो मरिजाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जु कुल मैं दाग लगावै॥
अरु बे नियाव राजा मरै तबै नींद भरि सोइये।
बैताल कहै बिक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥ ३॥
राजा चंचल होय मुलुक को सर करि लावै।
पंडित चंचल होय सभा उत्तर दै आवै॥
हाथी चंचल होय समर में सूँड़ि उठावै।
घोड़ा चंचल होय झपटि मैदान देखावै॥
हैं ये चारों चंचल भले राजा पंडित गज तुरी।
बैताल कहै बिक्रम सुनो तिरिया चंचल अति बुरी॥ ४॥
दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरन में।
पुन्य गयो पाताल पाप भो बरन बरन में॥
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुवारी।
घर घर में बेपीर दुखित भे सब नर नारी॥
अब उलटि दान गजपति मँगै सील सँतोष किते गयो।
बैताल कहै बिक्रम सुनो यह कलजुग परगट भयो॥ ५॥
मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहि मानै॥
मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै।
गाढ़े सँकरे काम मर्द के मर्दै आवै॥
पुनि मर्द उनहि को जानिये दुख सुख साथी दर्द के।
बैताल कहै बिक्रम सुनो लच्छन हैं ये मर्द के॥ ६॥
चोर चुप्प ह्वै रहै रैन अँधियारी पाये।
संत चुप्प ह्वै रहै मढ़ी में ध्यान लगाये॥
बधिक चुप्प ह्वै रहै फाँसि पंछी लै आवै॥
छैल चुप्प ह्वै रहै सेज पर तिरिया पावै॥

बरपिपर पात हस्ती श्रवन कोइकोइ कवि कुछकुछ कहैं।
बैताल कहै विक्रम सुनो चतुर चुप्प कैसे रहैं॥ ७॥
ससि बिन सूनी रैन ज्ञान।बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिनु पुत्र पत्र बिन तरुवर सूनो॥
गज सूनो इक दंत ललित बिन सायर सूनो।
बिप्र सून बिन वेद और बिन पुहुप बिहूनो॥
हरिनाम भजन बिन संत अरु घटा सून बिन दामिनी।
बैताल कहै विक्रम सुनो पति बिन सूनी कामिनी॥ ८॥

उदयनाथ (कवीन्द्र)

कवीन्द्र उदयनाथ कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७३६ के लगभग हुआ। ये अमेठी के राजा हिम्मत सिंह और उनके पुत्र गुरुदत्त सिंह के पास रहा करते थे। ये भगवन्त राय खीची और बूँदी के राव बुद्ध सिंह के यहाँ भी गये थे, और वहाँ इन्हें बड़ा सम्मान भी मिला था। इनका रस चन्द्रोदय नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इनकी कविता व्रजभाषा में शृंगार विषयक अच्छी है।

इनके कुछ छंद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

कुंजन ते मग आवत गावत राग बनावत देवगिरी को।
सो सुनि कै वृषभानु सुता तलफै जिमि पंजर जीव चिरी को।
तार थकै नहिं नैनन तें सजनी अँसुवान की धार झिरी को॥
मार मनोहर नंद कुमार के हार हिये लखि मोलसिरी को॥१॥

छिति छमता की परमिति मृदुता की कैधों ताकी
अनीति सौति जनता की देह की। सत्य की सता है सील,
तरु की लता है रसता है कै विनीत परनीत निज नेह की।

भनत कविन्द सुर नर नाग नारिन की सिच्छा है कि इच्छा रूप रच्छन अछेह की। पतिव्रत पारावार बारी कमला है साधुता की कै सिला है कै कला है कुल गेह की ॥ २ ॥

कैसीही लगन जामे लगन लगाई तुम प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसके। केतिको छपाय के उपाय उपजाय प्यारे तुमते मिलाप के बढ़ाये चाँप चसके ॥ भनत कविन्द हमें कुंज में बुलाय कर बसे कित जाय दुख देकर अबस के। पगनि में छाले परे नाँघिबे को नाले परे तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ॥ ३ ॥

ऐसे मैं न मैन के न देखे ऐन सैन के जगैया दिन रैन के जितैया सौंनि सीन के। कमल कलीन मुकुलित जु करनहार कानन की कोरन लौं कोरन रँगीन के। भनत कविन्द भावती के नैन चायक से देखे मैन पायक से नायक नवीन के। साँचे हैं अमीन के अमीन मानो मीन के बखाने को मृगीन के खगीन पन्नगीन के ॥ ४ ॥

राजै रस मैं री तैसी बरसा समै री चढ़ी चंचला नचैरी चकचौंधा कौंधा वारैं री। व्रती व्रत हारैं हिये परत फुहारैं कछू छोरैं कछू धारैं जलधर जलधारैं री। भनत "कविन्द" कुञ्ज भौन पौन सौरभ सों काके न कँपाय प्रान परहथ पारैं री। काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारैं मन औरै किये डारैं ये कदम्बन की डारैं री ॥ ५ ॥

सहर मझारत पहर एक लागि जैहैं छोर में नगर के सराय है उतारे की। कहत कविन्द मग माँझही परैगी साँझ खबर उड़ानी है बटोही द्वैक मारे की। घर के हमारे परदेश को सिधारे याते दया के बिचारे हम रीति राह बारे की। उतरो नदी के तीर बर के तरेही तुम चौंको जिन चौकी तहाँ पाहरू हमारे की ॥६॥

नेवाज

नेवाज नाम के दो तीन कवि पाये जाते हैं। एक नेवाज महाराज छत्रसाल बुंदेला के यहाँ थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। दूसरे नेवाज बिलग्राम के जुलाहे थे। तीसरे नेवाज शिव सिंह के कथनानुसार गाजीपुर के भगवंतराय खीची के यहाँ थे। दूसरे और तीसरे नेवाज साधारण कवि थे। अतएव हम यहाँ प्रथम नेवाज की ही चर्चा करते हैं।

ठाकुर शिवसिंह ने इनका जन्म सं० १७३६ माना है। और जन्मस्थान अंतर्वेद बतलाया है। ये छत्रसाल के समय में थे, इसके प्रमाण में ठाकुर साहब ने एक दोहा लिखा है:—

तुम्हें न ऐसो चाहिये छत्रसाल महराज।
जहँ भगवत गीता पढ़ी तहं कवि पढ़त नेवाज॥

यह दोहा, मालूम होता है भगवत के स्थान पर नेवाज के नियत होजाने पर, बना था।

नेवाज ब्राह्मण थे। शकुन्तला नाटक के सिवा इनका रचा हुआ कोई ग्रंथ नहीं मिलता। कहीं कहीं पुस्तकों में इनके फुटकर छंद मिलते हैं। नेवाज बड़े रसिक कवि थे। कहीं कहीं भावों में इन्होंने बड़ी अश्लीलता भर दी है। इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं:—

देखि हमैं सब आपुस में जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।
ए घरहाई लोगाई सबै निसि द्योस नेवाज हमैं दहती हैं।
बातें चबाव भरी सुनि कै रिसि आवत पै चुप ह्वै रहती हैं।
कान्ह पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहतीहैं॥१॥
पीठि दै पौढ़ि दुराय कपोल को मानै न कोटि पिया उत पोछत।
बाँहन बीच हिए कुच दोऊ गहे रसना मनहीं मन सोचत॥

सोवत जानि निवाज पिया करसों कर दै मिस ओर करौटत।
नीवी बिमोचत चौंकिपरी मृगछौनासीबालबिछौनापैलोटत॥२॥

पारथ समान कीन्हों भारथ मही मैं आनि बाँधि सिर बाना ठान्यो सरम सपूती को। कोर कोर कटि गयो हटि कै न पग दयो लयो रन जीति किरवान करतूती को॥ भनत "नेवाज" दिल्लीपति सों सहादत खाँ करत बखान एती मान मजबूती को। कतल मरद्द नद्द सोनित सों भरि गयो करि गयो हद्द भगवन्त रजपूती को॥ ३॥

आगे तौ कीन्हीं लगालगी लोयनकैसेछिपेअजहूँजौछिपावति।
तू अनुराग कौ सोध कियो ब्रज की बनिता सबयों ठहरावति॥
कौन सकोच रह्यो है "नवोज" जौ तू तरसै उनहूँ तरसावति।
बावरी जो पै कलङ्क लग्योतौनिसङ्कह्वै क्यौंनहिँअंकलगावति॥४॥

श्रीपति

श्रीपति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका निवास स्थान काल्पी था। इन्होंने सं० १७७७ में काव्य सरोज नामक ग्रन्थ बनाया। ये अच्छे कवि थे। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

उर्द के पचाइबे को हींग अरु सोंठ जैसे केरा के पचाइबे को घिव निरधार है। गोरस पचाइबे को सरसों प्रबल दण्ड आम के पचाइबे को नीबू को अचार है। श्रीपति कहत पर धन के पचाइबे को कानन छुआय हाथ कहिबो नकार है। आज के जमाने बीच राजा राव जाने सबै रीझि के पचाइबे को वाहवा डकार है॥ १॥

सारस के नादन को बाद ना सुनात कहूँ नाहकही बकबाद दादुर महा करै। श्रीपति सुकवि जहाँ ओज ना सरोजन की फूल ना फुलत जाहि चित दै चहा करै। बकन की बानी की बिराजत है राजधानी काईसो कलित पानी फेरत हहा करै। घोंघन के जाल जामें नरई सेवाल व्याल ऐसे पापी नाल को मराल लै कहा करै॥ २॥

ताल फीको अजल कमल बिन जल फीको कहत सकल कवि हवि फीको रूम को। बिन गुन रूप फीको ऊसर को कूप फीको परम अनूप भूप फीको बिन भूम को। श्रीपति सुकवि महावेग बिन तुरी फीको जानत जहान सदा जोह फीको धूम को। मेह फीको फागुन अबालक को गेह फीको नेह फीको तियको सनेह फीको सूम को॥ ३॥

तेल नीको तिलको फुलेल अजमेर ही को साहब दलेल नीको सैल नीको चंद को। विद्या को विबाद नीको रामगुन नाद नीको कोमल मधुर सदा स्वाद नीको कंद को। गऊ नवनीत नीको ग्रीषम को शीत नीको श्रीपति जू मीत नीको बिना फरफंद को। जातरूप घट नीको रेशम को पट नीको बंसीवट तट नीको नट नीको नन्दको॥ ४॥

चोरी नीकी चोर की सुकवि की लबारी नीकी गारी नीकी लागती ससुरपुर धाम की। नाहीं नीकी मानकी सयान की जबान नीकी तान नीकी तिरछी कमान मुलतान की। तातहू की जोति नीकी निगम प्रतीति नीकी श्रीपति जू प्रीति नीकी लागे हरिनाम की। रेवा नीकी बानखेत सुंदरी सुवाकी नीकी मेवा नीकी काबुल की सेवा नीकी राम की॥ ५॥

कीरति किशोरी गोरी तेरे गात की गुराई बीजसी सुहाई तेरे विधुकर जाल सी। सहज सुवास सखी केसरसी केतकी

सी कौल सो सुखद अति अमल मराल सी। "श्रीपति" निदाघ नवनीत मखमल सम सर्द ऋतु गरम परम मिही साल सी। कनक प्रवाल सो नवीन दिनपाल सी कपूर की मसाल सी सलोनी लाल माल सी ॥ ६ ॥

रोहिनी रमन की मरीची सी सुखद सींची सोहनी सरस महा मोहनी के थल सी। "श्रीपति" सुकवि छवि रवि वाल कर सी है मैन के मुकुर सी अ- ल गंग जल सी।गोरी गरबीली तेरे गातकी गुराई आगे चपला निकाई अति लागत सहल सी। माखन महल सी पराग के चहल सी गुलाबके पहल सी नरम मखमल सी ॥ ७ ॥

हारिजात बारिजात मालती विदारि जात वारि जात पारिजात सोधन में करी सी। माखनसी मैन सी मुरारी मख-मल सम कोमल सरस तन फूलन की छरी सी। गह गही गरुवो गुराई गोरो गोरे गात श्रीपति बिलौर सासी ईंगुर सों भरासी। बिज्जु थिर धरो सो कनक रेख करी सी प्रबाल छविहरी सो लसत लाल लरी सी ॥ ८ ॥

कैसे रतिरानी के सिधोरे कवि "श्रीपति" जू जैसे कल-धौत के सरोरुह सँवारे हैं। कैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे कहि जैसे रूपनट के बटा से छवि ढारे हैं। कैसे रूप नटके बटा से छवि ढारे कहु जैसे काम भूपति के उलटे नगारे हैं। कैसे काम भूपति के उलटे नगारे कहु जैसे प्राणप्यारी ऊँचे उरज तिहारे हैं ॥ ६ ॥

वृन्द

वृन्द का जन्म सं० १७४२ के लगभग हुआ। इन्होंने वृन्द सतसई नाम से सात सौ नीति के दोहों का एक अपूर्व ग्रन्थ लिखा है। उनमें से कुछ दोहे यहाँ लिखे जाते हैं।

नीकी पै फीकी लगै बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में रस शृंगार न सुहात ॥१॥
फीकी पै नीकी लगै कहिये समय बिचारि।
सब को मन हर्षित करै ज्यौं विवाह में गारि ॥२॥
जो जाको गुन जानही सो तिहि आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी हेत ॥ ३ ॥
जाही ते कछु पाइये करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये कैसे बुझत पियास ॥ ४ ॥
गुनही तऊ मँगाइये जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तऊ आग न आनत कौन ॥५॥
रसअनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मन्त्र न जानहीं साँप पिटारे हाथ ॥ ६ ॥
कैसे निबहै निबल जन कर सबलन सों गैर।
जैसे बस सागर विषे करत मगर सों बैर ॥ ७ ॥
दीबो अवसर को भलो जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम ॥ ८॥
अपनी पहुँच विचारि कै करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये जेती लंबी सौर ॥ ९ ॥
पिसुनछल्यो नर सुजनसों करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को पीवत छाँछहि फूँकि ॥१०॥

विद्या धन उद्यम बिना कहीँ जु पावै कौन ।
बिना । बुलाये ना मिले ज्यों पंखा की पौन ॥११॥
ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय ।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घट जाय ॥१२॥
बुरे लगत सिख के वचन हिये विचारो आप ।
करुवी भेषज बिन पिये मिटै न तन की ताप ॥१३॥
गुरुता लघुता पुरुष की आश्रय वशतें होय ।
करी वृंद में विंध्य सों दर्पन में लघु सोय ॥१४॥
रहे समीप बड़ेन के होत बड़ो हित मेल ।
सबही जानत बढ़त है वृक्ष बराबर बेल ॥ १५ ॥
होय बड़ेरु न हूजिये कठिन मलिन मुख रङ्ग ।
मर्दन बंधन छत सहन कुच इन गुननि प्रसंग ॥१६॥
कहूँ जाहु नाहिंन मिटत जो विधि लिख्यो लिलार ।
अंकुश भय करि कुंभ कुच भये तहाँ नख मार ॥१७ ॥
फेर न ह्वै है कपट सों जो कीजे व्यौपार ।
जैसे हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥ १८ ॥
करिये सुखको होत दुख यह कहो कौन सयान ।
वा सोने को जारिये जासों टूटे कान ॥ १६ ॥
नयना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी भली बुरी कहि देत ॥२०॥
अति परचै ते होत है अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी चंदन देति जराय ॥२१ ॥
भले बुरे सब एक सों जौं लौं बोलत नाहि ।
जानि परतु हैं काक पिक ऋतु बसंत के माहि ॥२२॥
निष्फल श्रोता मूढ़ पै कविता वचन विलास ।
हाव भाव ज्यों तीयके पति अंधे के पास ॥ २३ ॥

हितहू की कहियै न तिहि जो नर होय अबोध ।
ज्यों नकटे को आरसी होत दिखाये क्रोध ॥२४॥
सबै सहायक सबलके कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को दीपहिं देत बुझाय ॥ २५ ॥
कछु बसाय नहिंसबलसों करै निबल पर जोर ।
चले त अचल उखार तरु डारत पवन झकोर ॥२६॥
रोष मिटे कैसे कहत रिस उपजावन बात ।
ईंधन डारे आगमों कैसे आग बुझात ॥ २७ ॥
जो जेहि भावे सो भलो गुन को कछु न विचार ।
तज गज मुकता भीलनी पहिरति गुंजा हार ॥२८॥
दुष्ट न छाँड़े दुष्टता कैसे हूँ सुख देत ।
धोये हूँ सौ बेरके काजर होत न सेत ॥२९ ॥
कहुँ अवगुणसोइहोतगुण कहुँ गुण अवगुण होत ।
कुच कठार त्यों हैं भले कोमल बुरे उदोत ॥ ३० ॥
जाको जैसो उचित तिहिं करिये सोइ विचारि ।
गीदर कैसे ल्याइ है गज मुक्ता गज मारि॥३१॥
जैसे बंधन प्रम को तैसो बंध न और ।
काठहि भेदै कमल को छेद न निकरै भौंर ॥ ३२॥
जे चेतन ते क्यों तजैं जाको जासों मोह ।
चुंबक के पाछे लग्यो फिरत अचेतन लोह ॥३३॥
जो पावै अति उच्च पद ताको पतन निदान ।
ज्यौं तपि तपि मध्याह्नलौं अस्त होतु है भान ॥३४ ॥
जिहि प्रसंग दूषन लगे तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ ॥ ३५ ॥
जाके सँग दूषण दुरै करिये तिहि पहिचानि ।
जैसे समझे दूध सब सुरा अहीरी पानि ॥ ३६ ॥

मूरख गुन समझै नहीं तौ न गुनी में चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ देखै जौ न उलूक ॥३७॥
करै बुराई सुख चहै कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को आम कहाँ ते होइ ॥३८॥
बहुत निबल मिलबलकरैं करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी करी निबन्धन होय॥३९॥
साँच झूँठ निर्णय करै नीति निपुण जो होय।
राजहंस बिन को करै क्षीर नीर को दोय॥४०॥
दोषहिं को उमहै गहै गुण न गहै खललोक।
पियै रुधिर पय ना पियै लागि पयोधरजोंक॥४१॥
कारज धीरे होतु है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै केतक सींचो नीर ॥४२॥
क्यों कीजै ऐसो जतन जाते काज न होय।
परबत पर खोदै कुँआ कैसे निकसै तोय॥४३॥
वीर पराक्रम ना करे तासों डरत न कोइ।
बालकहू को चित्र को बाघ खिलौना होइ॥४४॥
उत्तम जनसों मिलत ही अवगुण सो गुण होय।
घनसँग खारो उदधि मिलि बरसै मीठो तोय ॥४५॥
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें सिलपरपरतनिसान॥४६॥
भली करत लागति बिलम बिलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगै ढाहत लगत न बार॥४७॥
कुल सपूत जान्यौ परै लखि शुभ लक्षण गात।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात॥४८॥
छोटे मन में आय हैं कैसे मोटी बात।
छेरी के मुँह में दियौ ज्यों पेठा न समात॥४९॥

होत निबाह न आपनो लीने फिरे समाज।
चूहा बिल न समात है पूँछ बाँधिये छाज ॥५०॥
अपनी प्रभुता को सबै बोलत झूँठ बनाय।
वेश्या बरस घटावहीं योगी बरस बढ़ाय ॥५१॥
कछु कहि नीच न छेड़िये भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच में उछरि बिगारै अंग ॥५२॥
ऊपर दरसै सुमिल सी अंतर अनमिल आँक।
कपटी जन की प्रीति है खीरा की सीफाँक॥५३॥
सबसों आगे होय कै कबहुँ न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल बिगरे गारी खात ॥५४॥
बुरौ तऊ लागत भलौ भली ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीकौ लगे काजरजदपिमलीन॥५५॥
गुरुमुख पढ़यो न कहतु है पोथी अर्थ विचारि।
सो शोभा पावै नहीं जार गर्भयुत नारि॥५६॥
क्षमा खड्ग लीने रहै खलको कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल आपहिते बुझिजाय॥५७॥
ओछे नर के पेट में रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में कैसे सेर समात ॥५८॥
बचन रचन कापुरुष के कहे न छिन ठहराय।
ज्यों कर पद मुख कछप के निकसिनिकसि दुरजाय५९॥
जूवा खेले होतु है सुख सम्पति को नास।
राज काज नलते छुट्यो पाँडवकियबनवास॥६०॥
सरस्वति के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यौं खरचै त्यौं त्यौं बढ़ै बिनखरचेघटिजात॥६१॥
बिरह पीर व्याकुल भए आयो पीतम गेह।
जैसे आवत भाग ते आग लगे पर मेह ॥६२॥

भले वंश को पुरुष सो निहुरै बहु धन पाय।
नवै धनुष सदवंस को जिहिद्वैकोटिदिखाय॥६३॥
लोकन के अपवाद को डर करिये दिनरैन।
रघुपति सीता परिहरी सुनत रजक के बैन॥६४॥
कहाकहौंविधिकोअविधि भूले परे प्रवीन।
मूरख को संपति दई पंडित संपति हीन॥६५॥
वह सपति केहि काम की जिन काहू पै होउ।
नित्य कमावै कष्ट करि बिलसै औरहि कोउ॥६६॥
तृनहूँ ते अरु तूलते हरुवो याचक आहि।
जानतु है कछु माँगि है पवन उड़ावत नाहिं॥६७॥
सेइय नृप गुरु तिय अनिल मध्य भाग जग माहिं।
है विनाश अति निकटतें दूर रहे फल नाहि॥६८॥

रसलीन
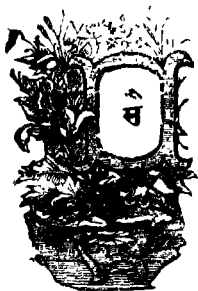
यह गुलाम नबी बिलग्रामी का उपनाम रसलीन था। बिलग्राम जिला हरदोई में एक मशहूर कस्बा है। वहाँ बहुत दिनों से बड़े बड़े विद्वान् मुसलमान होते आये हैं, और अब भी वर्त्तमान हैं। रसलीन वहीं के रहने वाले थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १७४६ के लगभग हुआ। इनके रचे हुये दो ग्रन्थ मिलते हैं; अंगदर्पण और रस प्रबोध। अंगदर्पण में नखशिख का वर्णन है और रस प्रबोध में रसों का। मुसलमान होकर ब्रजभाषा में ऐसी सुन्दर रचना करने के लिये रसलीन धन्यवाद के पात्र हैं। शिवसिंह

ने इनको अरबी फ़ारसी का आलिम फ़ाज़िल और भाषा कविता में बड़ा निपुण बताया है। इनकी कविता के कछु नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

मुख ससि निरखि चकोर अरु तन पानप लखि मीन।
पद पंकज देखत भँवर होत नयन रसलीन ॥ १ ॥
धरति न चौकी नग जरी याते उर में लाइ।
छाँह परे पर पुरुष की जिन तिय धरम नसाइ ॥ २ ॥
चख चलि श्रवन मिल्यो चहत कच बढ़ि छुवन छवानि।
कटि निज दरब धर्‌यो चहत वक्षस्थल में आनि ॥ ३ ॥
सौतिन मुख निसि कमलभो पिय चख भये चकोर।
गुरु जन मन सागर भये लखि दुलहिनि मुख ओर ॥४॥
रमनी मन पावत नहीं लाज प्रीति को अंत।
दुहुँ ओर ऐंचो रहै ज्यों बिबि तिय को कंत ॥५॥
लिखि बिरंचि राख्यो हुतौ यह सँयोग इक संग।
कुच उतंग तिय उर चढ़ै पिय उर चढ़ै अनंग ॥ ६ ॥
यों तिय नैननि लाज ज्यों लसत काम के भाय।
मिल्यो सलिल में नेह ज्यों ऊपर ही दरसाय ॥ ७ ॥
मुकुत भये घर खोय कै कानन बैठे जाय।
घर खोवत हैं और को कीजे कौन उपाय ॥ ८ ॥

घाघ

घाघ का जन्म सं० १७५३ में हुआ। ये कब तक जीवित रहे, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। इनकी कविता में नीतिकी बातें खूब पाई जाती हैं। नीचे इनके कुछ छंद लिखे जाते हैं—

१

बनियक सखरज ठकुरक हीन। बयदक पूत व्याधि नहिं चीन॥
पंडित चुपचुप बेसवा मइल। कहैं घाघ पाँचो घर गइल॥

२

नसकट खटिया दुलकन घोर। कहे घाघ यह बिपतक ओर॥
बाछा बैल पतुरिया जोय। ना घर रहे न खेती होय॥

३

भुइयाँ खेड़े हर हों चार। घर हों गिहिथिन गऊ दुधार॥
अरहरकी दाल जड़हन का भात। गागल निबुआ औ घिव तात॥
सहरस खंड दही जो होय। बाँके नैन परोसै जोय॥
कहे घाघ तब सबही झूँठा। उहाँ छाँड़ि इहवैं बैकूँठा॥

४

कुचकट पनही बतकट जोय। जो पहलौठी बिटिया होय॥
पातरि कृषी बौरहा भाय। घाघ कहैं दुख कहाँ समाय॥

५

मुये चाम से चाम कटावैं भुईं सँकरी माँ सोवैं।
घाघ कहैं ये तीनों भकुवा उढ़रि गये पर रोवैं॥

६

सुथना पहिरे हर जोतैं औ पौला पहिरि निरावैं।
घाघ कहैं ये तीनों भकुआ सिर बोझा औ गावैं॥

७

उधार काढ़ि व्यवहार चलावैं छप्पर डारें तारो।
सारे के सँग बहिनी पठवें तीनिउ का मुँह कारो॥

८

आलस नींद किसानै नासै चोरै नासै खाँसी।
अँखियाँ लीबर बेसवै नासै तिरमिर नासै पासी॥

९

ना अति बरखा ना अति धूप। ना अति बकता ना अति चूप॥
लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान। ममिला बिगरे साँझ बिहान॥

१०

माघक ऊखम जेठक जाड़। पहिले बरखे भरिगै गाड़॥
कहै घाघ हम होय बियोगी। कुँआ खोदि कै धोइहैं धोबी॥

११

सावन सुकला सत्तमी जो गरजे अधरात।
तू पिय जैहो मालवा हौं जैहौं गुजरात॥

१२

सावन सुकला सत्तमी चंदा उगे तुरंत।
की जल मिले समुद्र में की नागरि कूप भरंत॥

१३

सावन सुकला सत्तमी छिपि के ऊगे भानु।
तब लगि देव बरीसिहैं जब लगि देव उठान॥

१४

सावन कृष्ण एकादसी जेतो रोहिनि होय।
तेतो समया जानियो खरो घसै जिनि कोय॥

१५

बहु बजार बनिहार बनि बारो बेटा बैल।
ब्योहर बढ़ई बन बबुर बात सुनो यह छैल॥

१६

जो बकार बारह बसैं सो पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दै सदा आप रहै अलमस्त॥

१७

सावन पछिवाँ भादों पुरवा आसिन बहै इसान।
कातिक कंता सींक न डोले गाजें सबै किसान॥

१८

गया पेड़ जब बकुला बैठा। गया गेह जब मुड़िया पैठा॥
गया राज जहँ राजा लोभी। गया खेत जहँ जामी गोभी॥

१९

घर घोड़ा पैदल चलै तीर चलावै बीन।
थाती धरै दमाद घर जग में भकुआ तीन॥

२०

सदाँ न बागाँ बुलबुल बोलैं सदाँ न बाग बहाराँ।
सदाँ न ज्वानी रहती यारो सदाँ न सोहबत याराँ॥

नागरीदास और बनीठनीजी

नागरीदास कृष्णगढ़ (राजपूताना) के राजा थे। इनका असली नाम सावंत सिंह था। ये कविता में अपना उपनाम नागर अथवा नागरीदास रखते थे। ये राठौर क्षत्रिय थे इनका जन्म पौष कृष्ण १२ सं० १७५६ को हुआ। कवि होने

के सिवाय ये बीर भी थे। इन्होंने दश वर्ष की ही अवस्था में एक उन्मत्त हाथी को विचलित कर दिया था, और तेरह वर्ष की अवस्था में बूंदी के राव जैतसिंह का समर में बध किया था। बीस वर्ष की अवस्था में अकेले ही एक सिंह को मारा था। कई घराऊ झगड़ों के कारण सं० १८१४ में ये राज पाट छोड़कर वृन्दावन चले गये और वहीं रहने लगे। १८२१ में वृन्दावन में इन्होंने शरीर छोड़ा।

वृंदावन इन्हें बहुत प्रिय था। वहाँ इनका सम्मान भी बहुत था। वहाँ के भक्तों में इनकी कविता का आदर इनके जीवन काल में ही बहुत हो गया था। इन्होंने ७५ ग्रंथों की रचना की, जिनमें से दो अब नहीं मिलते। ये बल्लभ सम्प्रदाय के थे। इनकी कविता बड़ी सरस भक्ति रस पूर्ण होती थी। हिन्दी काव्य के रसिकों को इनकी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिये। इनकी कविता का कुछ नमूना देखिये—

उज्जल पख की रैन चैन उज्जल रस दैनी।
उदित भयौ उड़राज अरुन दुति मनहर लैनी॥
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहिँ छोड्यो मनु।
प्राची दिसितें प्रजुलित आवति अगिनि उठी जनु॥
दहन मानपुर भए मिलन कों मन हुलसावत।
छावत छपा अमन्द चन्द ज्यों ज्यों नभ आवत॥
जगमगाति बन जोति सोत अमृत धारा से।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से।
स्वेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी।
तैसी मन्द सुगन्ध पौन दिन मनि दुख दहनी॥
मधि नायक गिरिराज पदिक वृन्दावन भूषन।
फटिक सिला मनि शृङ्ग जगमगति दुति निदूंषन॥

सिला सिला प्रति चन्द चमकि किरननि छबिछाई।
बिच बिच अम्ब कदम्ब झम्ब झुकि पायनि आई॥
ठौर ठौर चहुँ फेर ढेर फूलन के सोहत।
करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत॥
बिमल नीर निर्झरत कहूँ झरना सुख करना।
महा सुगन्धित सहज बास कुमकुम मद हरना॥
कहुँ कहुँ हीरन खचित रचित मंडल सुरासिके।
जटित नगन कहुँ जुगल खम्भ झूलनि बिलासिके॥
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी।
बिहरत विविध विहार तहाँ गिरि पर गिरधारी॥

महाराजा नागरीदास की दासी बनीठनी जी भी कविता करती थीं और कविता में अपना नाम रसिकबिहारी रखती थीं। ये सदा नागरीदास जी की सेवा में रहती थीं। इनका देहान्त सं० १८२२ में हुआ। इनके बनाये कुछ पद नीचे लिखे जाते हैं—

१

रतनारी हो थारी आँखड़ियाँ।
प्रेम छकी रस बस अलसाणी जाणि कमल की पाँखड़ियाँ।
सुन्दर रूप लुभाई गति मति हौं भई ज्यूँ मधु माँखड़ियाँ॥

२

हो झालो दे छे रसिया नागर पनाँ।
साराँ देखा लाज मराँ छाँ आवाँ किण जतनाँ।
छैल अनोखो कियो न मानै लोभी रूप सनाँ॥
रसिकबिहारी नणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मनाँ॥

दास

दास का पूरा नाम भिखारीदास था। जि० प्रतापगढ़ के ट्योंगा गाँव में सं० १७५५ के लगभग इनका जन्म हुआ था। ये जाति के कायस्थ थे। इनके पिता का नाम कृपालदास और पितामह का वीरभानु था। इनके ग्रन्थों में काव्य निर्णय, छन्दोर्णव और श्रृंगार निर्णय, बहुत उत्तम ग्रन्थ हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

१

सुजस जनावै भगतनहीं से प्रेम करै चित्त अति ऊजरे भजत हरिनाम हैं। दीन के दुखन देखै आपनो सुखन लेखै विप्र पापरत तन मैन मोहै धाम हैं। जग पर जाहिर हैं धरम निबाहि रहे देव दरसन ते लहत बिसराम हैं। दास जू गनाए जे असज्जन के काम हैं समुझि देखो एई सब सज्जन के काम हैं॥

२

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसङ्ग तें कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि कीटनि संग अनेक बिथाई॥
चन्दन संग कुदारु सुगन्ध ह्वै नीच प्रसङ्ग लहै करुआई।
दास जू देख्यो सही सब ठौरनि संगतिको गुन दोष न जाई॥

३

पंडित पंडित सों सुख मंडित सायर सायर के मन मानै।
संतहि संत भनंत भलौ गुनवंतनि को गुनवन्त बखानै॥
जा पहँ जा सह हेतु नहीं कहिये सु कहा तिहिकी गति जानै।
सूर को सूर सती को सती अरु दास जती को जती पहचानै॥

४

प्रान बिहीन के पाइ पलोटि अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो।
आरसी अंध के आगे धस्यो बहिरो को मतौ करि उत्तर जोयो॥
ऊसर में बरस्यो बहु बारि पखान के ऊपर पङ्कज बोयो।
दास बृथा जिन साहिब सूम की सेवनि मैं अपनो दिन खोयो॥

५

दृग नासा न तौ तप जाल खगी, न सुगंध सनेह के ख्याल खगो।
श्रुति जीहा बिरागै न रागै पगी मति रामै रँगी औ न कामै रँगी॥
तप में ब्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न बिभूति जगी।
जग जन्म बृथा तिनको जिनके गरे सेली लगी न नवेली लगी॥

६

कंज सकोच गड़े रहे कीच में मीनन बोरि दियौ दह नीरन।
दास कहै मृगहू को उदास कै बास दियो है अरन्य गँभीरन॥
आपुस में उपमा उपमेय ह्वै नैन य निंदित हैं कबि धीरन।
खंजनहू को उड़ाय दियो हलुके करि डारे अनंग के तीरन॥

७

नैनन को तरसैये कहाँ लौं कहाँ लौं हिये बिरहागि में तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्रानन को कलपैये॥
आवै यही अब जी में विचार सखी चलु सौतिहु के घर जैये।
मान घटे ते कहा घटिहै जु पै प्रानपियारे को देखन पैये॥

रसनिधि

रसनिधि का असली नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया राज्य के अन्तर्गत जागीरदार थे। इनके जन्म मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है; परन्तु सं० १७६० में इनका होना माना जाता है।

इनका रचा हुआ रतनहजारा अद्भुत ग्रन्थ है। हजारा में कुल दोहे ही दोहे हैं। भावों को झलकाने में इन्होंने बड़ी बारीक बुद्धि से काम लिया है। इनके दोहे बिहारी के दोहों से टक्कर लेते हैं। नीचे इनके कुछ दोहे लिखे जाते हैं। देखिये कैसे लुभावने हैं—

रसनिध वाकों कहत हैं याही तैं करतार।
रहत निरन्तर जगत कौ याही के कर तार ॥१॥
आये इसक लपेट में लागी चसम चपेट।
सोई आया जगत में और भरें सब पेट ॥२॥
सज्जन पास न कहु अरे ये अनसमझी बात।
मोम रदन कहुँ लोह के चना चबाये जात ॥३॥
हित करियत यहि भाँति सों मिलियत है वहि भाँत।
छीर नीर तैं पूँछ लै हित करिबे को बात ॥४॥
पसु पच्छीहू जानहीं अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौ तुम्हैं जब जानौ पर पीर ॥५॥
रूप नगर बस मदन नृप दृग जासूस लगाइ।
नेहिन मन कौ भेद उन लीनौ तुरत मँगाइ ॥६॥
सुन्दर जोबन रूप जो बसुधा में न समाइ।
दृग तारन तिल बिच तिन्हैं नेही धरत लुकाइ ॥७॥

सरस रूप कौ भार पल सहि न सकै सुकुमार।
याही तैं ये पलक जनु झुकि आवैं हर बार ॥८॥
सुनियत मीननि मुख लगै बंसी अबै सुजान।
तेरो ये बंसी लगै मीनकेत को बान ॥ ९ ॥
जिहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक।
तिहि मग फिरत सनेहिया किये गरेबाँ चाक ॥ १० ॥
चतुर चितेरे तुव सबी लिख तन हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आँगुरी कटी कटाछन जाइ ॥ ११ ॥
मन गयंद छवि मद छके तोर जँजीरन जात।
हित के झीने तार सों सहजै ही बँधि जात ॥ १२ ॥
उड़ौ फिरत जो तूल सम जहाँ तहाँ बेकाम।
ऐसे हरुये कौ धर्यो कहा जान मन नाम ॥ १३ ॥
लेउ न मजनू गोर ढिग कोऊ लैलै नाम।
दरदवन्त कौ नेक तौ लैन देउ बिसराम ॥ १४ ॥
चसमन चसमा प्रेम कौ पहिले लेहु लगाइ।
सुन्दर मुख वह मीतकौं तब अवलोकौ जाइ ॥ १५ ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की बैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागे द्रुगन भूखहि देत भगाइ ॥ १६ ॥
प्रेम नगर में द्रग बया नोखे प्रगटे आइ।
दो मन को करि एक मन भाव देत ठहराइ ॥ १७ ॥
न्यारौ पैड़ौ प्रेम कौ सहसा धरौ न पाव।
सिर के पैंड़ै भावते चलौ जाय तौ जाव ॥ १८ ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की लखौ सनेही आइ।
जुरै कहूँ टूटै कहूँ कहूँ गाँठ परि जाइ ॥ १९ ॥
अद्भुत बात सनेह की सुनौ सनेही आइ।
जाकी सुध आवै हिये सबही सुध बुध जाइ ॥२०॥

कहनावत मैं यह सुनी पोषत तनु को नेह।
नेह लगाये अब लगी सूखन सिगरी देह॥ २१॥
बोलन चितवत चलन में सहज जनाई देत।
छिपत चतुरई कर कहूँ अरे हिये को हेत॥ २२॥
यह बूझन को नैन ये लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी पिय आवन की बात॥ २३॥
कञ्चन से तन में यहाँ भरो सुहाग बनाइ।
विरह आँच तापै कहो सहो कौन विधि जाइ॥२४॥

तोष

तोष का पूरा नाम तोषनिधि है। ये सिंगरौर, जिला इलाहाबाद के रहनेवाले चतुर्भुज शुक्र के पुत्र थे। सं० १७६१ में इन्होंने सुधानिधि नामक नायिका भेद का एक ग्रंथ रचा। इनके जन्म मरण के ठीक ठीक संवत् का पता नहीं चलता। इनके रचे हुये विनय शतक और नखशिख नामक दो ग्रन्थों का और भी नाम सुना जाता है। इनकी कविता कहीं कहीं बड़ी सरस हुई है। हम नीचे कुछ उदाहरण उद्धृत करते हैं :—

एकै कहैं हँसि ऊधव जी ब्रज की जुवती तजि चन्द्र प्रभासी।
जाइ कियो कहि तोष प्रभू एक प्रान प्रिया लहि कंसकी दासी॥
जो हुते कान्ह प्रबीन महा सो हहा मथुरा मैं कहा मति नासी।
जीव नहीं उबि जात जबै ढिग पौढ़ति हैं कुबजा कछुहासी॥१॥
श्री हरि की छवि देखिबे को अंखियाँ प्रति रोमन मैं करि देतो।
बैनन के सुनिबे कहँ श्रौन जिते तित सो करतो करि हेतो॥

मो ढिग छोड़ि न काम कछू कहि तोष यहै लिखितो विधि एतो।
तौ करतार इती करनी करि कै कलि मैं कलकीरति लेतो ॥२॥
भूषण भूषित दूषण हीन प्रवीन महा रस मैं छवि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जिहि मैं परमारथ स्वारथ पाई॥
औ उकतैं मुकतैं उलही कवि तोष अनोख भरी चतुराई।
होति सबैसुख की जनिता बनिआवनि जो बनिताकविताई॥३॥

सूदन

सूदन मथुरा निवासी माथुर ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बसंत था। ये भरतपुर के महाराज सूरजमल के आश्रय में रहा करते थे। इनके जन्म-मरण के ठीक ठीक समय का पता नहीं है। इन्होंने २३४ पृष्ठों का सुजान-चरित्र नामक एक ग्रंथ की रचना की है। उसे नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है। उसमें सं १८०२ से १८१० तक सूरजमल के युद्धों का और विविध घटनाओं का वर्णन है। सूदन की कविता वीररस से पूर्ण है। प्राचीन कवियों में भूषण और लाल के पश्चात् वीररस की कविता रचने में सूदन ही सफल हुये हैं। इनका, युद्ध की तैयारी का वर्णन उत्तम है। इनकी भाषा में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का मिश्रण है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

सेलनु धकेला तें पठान मुख मैला होत केते भट मेला हैं भजाये भुव भंग मैं। तंग के कसे ते तुरकानी सब तंग कीनी दंग कीनी दिल्ली औ दुहाई देत बंग मैं। सूदन सराहत सुजान किरवान गहि धायो धीर धारि बीरताई की उमंग मैं।

दक्खिनी पछेला करि खेला तैं अजब ख़ेल हेला मारि गंग मैं रुहेला मारे जंग मैं ॥ १ ॥

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन भारे लाज भारे स्वामिकाज प्रतिपाल के। चंग लौं उड़ायो जिन दिली की वजीरभीर मारी बहु मीरन किये हैं बे हवाल के। सिंह बदनेस के सपूत श्री सुजान सिंह सिंह लौं झपटि नख दीन्हे करवाल के। वेई पठनेटे सेल साँगन खखेटे भूरि धूरि सौं लपेटे लेटे भेटे महाकाल के ॥ २ ॥

बंगस के लाज मऊखेत की अवाज यह सुने ब्रजराज ते पटान वीर बबके। भाई अहमदखान सरन निदान जानि आया मनसूर तौ रहें न अब दबके। चलना मुझे तौ उठ खड़ा होना देर क्या है? बार बार कहे ते दराज सीने सब के। चंड भुज दंडवारे हयन उदंडवारे कारे कारे डीलन सवारे होत रब के ॥ ३ ॥

महल सराय से रवाने बुआ बूबू करो, मुझे अफसोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का। आलम में मालुम चकत्ता का घराना यारो जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का। खने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे आफत ही जानो हुआ औज दहकानी का। रब की रजा है हमें सहना बजा है वक्त हिन्दू का गजा है आया छोर तुरकानी का ॥ ४ ॥

आप बिस चाखें भैया षटमुख राखैं देखि आसन में राखै बस बास जाको अचलै। भूतन के छैया आस पास के रखैया और काली के नथैया हूँ के ध्यान हूँ ते न चलै। बैल बाघ बाहन बसन को गयंद खाल भाँग को धतूरे को पसारि देत अँचलै। घर को हवाल यहै संकर की बाल कहै लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै ॥ ५ ॥

पूत मजबूल बानी सुनि कै सुजान मानी सोई बात जानी जासों उर मैं छमा रहै। जुद्ध रीति जानौ मत भारत को मानौ जैसो होइ पुठवार ताले ऊन असमा रहै॥ बाम और दच्छिन समान बलवान जान कहत पुरान लोक रीति मों रमा रहै। सूदन समर घर दोउन की एकै विधि घर में जमा रहै तो खातिर जमा रहै॥ ६॥

रघुनाथ

रघुनाथ बंदीजन महाराज काशिराज बरिबंड सिंह के राजकवि थे। महाराज ने इन को काशी के समीप चौरा गाँव दिया था, उसी में ये सकुटुम्ब रहते थे।

इनके रचे हुये निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं:—काव्य कलाधर, रसिक मोहन और इश्क महोत्सव। काव्य कलाधर की रचना सं० १८०२ में हुई। ठाकुर शिवसिंह ने लिखा है कि इन्होंने सतसई की टीका भी बनाई है।

रघुनाथ ब्रजभाषा में कविता करते थे, परन्तु इश्क महोत्सव में इन्होंने आजकल की सी हिन्दी भाषा में कविता लिखी है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

देख हे देख या ग्वालिन की मग नेकु नहीं थिरता गहती है।
आनँद सों "रघुनाथ" पगी पगी रंगन सोँ फिरतै रहती है॥
छोर को छोर तरौना को छ्वै कर ऐसो बड़ीछवि को लहती है।
जोबन आइबेकी महिमा अँखियाँ मनो कानन सों कहती हैं॥१॥
सूखति जाति सुनी जब सों कछु खाति न पीवति कैसे धौं रैहै।
जाकी है ऐसी दसा अबहीं "रघुनाथ" सोऔधिअधारक्योंपैहै॥

ताते न कीजिए गौन बलाइ ल्यों गौन करे यह सीस बिसैहै।
जानति हौ दृग ओट भये तिय प्रान उसासहि के सँग जैहै॥२॥

संपति के बढ़े सों प्रतिष्ठा बाढ़ै बाढ़ै सोच कहै रघुनाथ ताके राखिबे के रुख को। मन माँगे स्वादनि लपेटि पेट पयो तासों अंग मैं अपार संग प्रगटो कलुष को। दारा सुत सखा को सनेह सों संतापकारी भारी है बचन यह बड़न के मुख को। जगत को जितनो प्रपंच तितनो है दुख सुख इतनो जो सुख मानि लेनो दुख को॥ ३॥

देखिबे को दुति पूनो के चंद की हे रघुनाथ श्री राधिका रानी।
आई बुलाइ कै चौतरा ऊपर ठाढ़ी भई सुख सौरभ सानी॥
ऐसी गई मिलि जोन्हकीजोति मैं रूपकीरासि न जाति बखानी।
बारन ते कछु भौंहन तें कछु नैनन की छबि तें पहिचानी॥४॥

ग्वाल संग जैबो ब्रज गायन चरैबो ऐबो अब कहा दाहिने ये नैन फरकत हैं। मोतिन की माल वारि डारौं गुंज माल पर कुंजन की सुधि आये हियो धरकत है॥ गोबर को गारो "रघुनाथ" कछू याते भारो कहा भयो पहलन मनि मरकत है। मंदिर हैं मंदर ते ऊँचे मेरे द्वारका के ब्रज के खरिक तऊ हिये खरकत हैं॥ ५॥

सुधरे सिलाह राखै, बायु बेगी बाह राखै, रसद की राह राखै, राखे रहै बन को। चार को समाज राखै, बजा औ नजर राखै, खबरि को काज बहुरूपी हरफन को। अगम भखैया राखै, सकुन लेवैया राखै, कहै रघुनाथ औ बिचार बीच मन को। बाजी राखै कबहूँ न औसर के परे जौन ताजी राखै प्रजन को राजी सुभटन को॥६॥

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे। दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान

सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे। सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के हियरे। धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आजु भोर कैसे नखत नरिन्द भये पियरे ॥ ७ ॥

आप दरियाव पास नदियों के जाना नहीं दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी। दरखत बेलि आसरे को कभी राखत ना दरखत ही के आसरे को बेलि पावैगी मेरे। लायक जो था कहना सो कहा मैंने रघुनाथ मेरी मति न्यावही को गावैगी। वह मोहताज आपकी है आप उसके न आप कैसे चलो वह आप पास आवैगो ॥ ८ ॥

चरनदास

चरन दास जी ढूसर बनियाँ थे। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला तृतीया मंगलवार सं० १७६० वि० में राजपूताना के देहरा नामी गाँव में हुआ। इन्होंने ७६ वर्ष की अवस्था में, संवत् १८३६ में, दिल्ली में शरीर छोड़ा। इनका पहले का नाम रनजीतसिंह था। इनके पिता का नाम मुरलीधर, माता का कुंजो और गुरु का शुकदेव था। चरनदास जी ने सात वर्ष की अवस्था में घर छोड़ा। घर से ये दिल्ली चले आये और वहाँ अपने नाना के घर रहने लगे। वहीं १६ वर्ष की अवस्था में इन्हें वैराग्य हुआ। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म संवत् १५३७ और जन्मस्थान पंडित पुर जिला फैजाबाद लिखा है; और उसी के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने भी वैसा ही लिखा जो है

नितान्त अशुद्ध है। हमने सहजोबाई की बानी और ज्ञान स्वरोदय से इनके जीवन चरित्र का संग्रह किया है।

उस समय इनके ५२ शिष्य थे, जिनकी ५२ गद्दियाँ अलग अलग आजकल वर्तमान हैं, और उनके हज़ारों अनुयायी हैं। इनकी चेलियों में सहजोबाई और दया बाईबड़ी प्रेमिणी थीं। वे बराबर इनकी सेवा में लगी रहती थीं। इन दोनों चेलियों ने भी कविता की है, जो उनकी बानी के नाम से प्रसिद्ध है।

चरनदास के दो ग्रंथ मिलते हैं, एक ज्ञान स्वरोदय और दूसरा चरनदास की बानी। यहाँ इनके दोनों ग्रंथों में से कुछ पद्य चुनकर लिखे जाते हैं--

दोहा

चार बेद का भेद है गीता का है जीव।
चरनदास लखु आपको तो मैं तेरा पीव ॥१॥
सब योगन को योग है सब ज्ञानन को ज्ञान।
सबै सिद्धि को सिद्धि है तत्त्व सुरन को ध्यान ॥२॥
इँगला पिंगला सुषुमणा नाड़ी तीन विचार।
दहिने बायें स्वर चलै लखै धारना धार ॥३॥
पिँगला दहिने अंग है इड़ा सु बायें होय।
सुषुमण इनके बीच है जब स्वर चालैं दोय ॥४॥
जब स्वर चालैं पिंगला मध्य सूर्य तहँ बास।
इड़ा सु बायें अंग है चन्द्र करत परकास ॥५॥
चित्त अपनो स्थिर करै नासा आगे नैन।
स्वाँसा देखै दृष्टि सों जब पावै स्वर बैन ॥६॥
भोरहिं जो सुषुमण चलै राज होय उत्पात।
देखन वालो विनसिहै और काल पर नात ॥७॥

चौपाई

बिवाह दान तीरथ जो करैं वस्तर भूषण घर पग धरैं।
बायें स्वर में ये सब कीजै पोथीपुस्तक जो लिखलीजै ॥८॥
योगाभ्यास अरु कीजै प्रीत औषध नाड़ी कीजै मीत।
दीक्षा मंत्र बोवे नाज चन्द्र योग थिर बैठे राज ॥९॥
चन्द्रयोग में स्थिर पुनि जानो थिर कारज सबहीपहिचानो।
करे हवेली छप्पर छावे बागबगीचा गुफा बनावै॥१०॥
हाकिम जाय कोट में बरै चन्द्र योग आसन पग धरै।
चरणदास शुकदेव बतावै चन्द्रयोगथिरकाजकहावै॥११॥
जो खाँड़ी कर लीयो चाहै जाकर बैरी ऊपर बाहै।
युद्ध बाद रण जीते सोई दहिनेस्वर में चालैकोई ॥१२॥
भोजन करै करै अस्नान मैथुन कर्म भानु परधान।
बही लिखै कीजै व्योहारा गजघोड़ाबाहनहथियारा॥१३॥
विद्या पढ़ै नई जो साधै मंत्रसिद्धि औ ध्यान अराधै।
बैरी भवन गवन जो कीजै अरुकाहूको ऋणजोदीजै ॥१४॥
ऋण काहू पै तू जो माँगे विष औ भूत उतारन लागे।
चरणदास शुकदेव बिचारी ये चर कर्म भानुकी नारी ॥१५॥

दोहा

गाँव परगने खेत पुनि इधर उधर में मीत।
सुषुमण चलत न चालिये बरजत हैं रणजीत ॥१६॥
छिन बाँयें छिन दाहिने सोई सुषुमण जानि।
ढील लगै कै ना मिलै कै कारज की हानि ॥१७॥
होय क्लेश पीड़ा कछू जो कोई कहिँ जाय।
सुषुमण चलत न चालिये दीन्हों तोहिँ बताय ॥१८॥

पूरब उत्तर मत चलौ बायें स्वर परकाश।
हानि होय बहुरे नहीं आवन की नहिं आश ॥१९॥
दहिने चलत न चालिये दक्षिण पश्चिम जानि।
जो रे जाय बहुरे नहीं औ होवे कछु हानि ॥२०॥
दहिने स्वर में जाइये पूरब उत्तर राज।
सुख सम्पति आनँद करै सभी होय शुभ काज ॥२१॥
बायें स्वर में जाइये दक्षिण पश्चिम देश।
सुख आनँद मङ्गल करै जो रे जाय परदेश ॥२२॥
दहिने सेती आयकर बायें पूँछे कोय।
जो बायेँ स्वर बन्द है सफल काज नहिं होय ॥२३॥
बायें सेती आय कर दहिने पूँछै धाय।
जो दहिनों स्वर बन्द हैं कारज अफल बताय ॥२४॥
जब स्वर भीतर को चलै कारज पूँछै कोय।
पैज बाँध वासों कहो मनसा पूरण होय ॥२५॥
जब स्वर बाहिर को चले तब कोई पूँछै तोर।
वाको ऐसै भाषिये नहि कारज विधि कोर ॥२६॥
बाईं करवट सोइये जल बायें स्वर पीव।
दहिने स्वर भोजन करै तो सुख पावै जीव ॥ २७ ॥
बाँयें स्वर भोजन करै दहिने पीवै नीर।
दस दिन भूला यें करै पावै रोग शरीर ॥ २८ ॥
दहिने स्वर झाड़ें फिरै बाँये लघु शंकाय।
युक्ती ऐसी साधिये तीनो भेद बताय ॥ २९ ॥
आठ पहर दहिनों चलै बदलै नहिं जो पौन।
तीन वर्ष काया रहै जीव करै फिर गौन ॥ ३० ॥
दिम को तो चन्दा चलै चले रात को सूर।
यह निश्चय करि जानिये प्राण गमन बहु दूर ॥ ३१ ॥

राति चलै स्वर चन्द्र में दिन को सूरज चाल।
एक महीना यों चलै छठे महीना काल ॥ ३२ ॥
जब साधू ऐसी लखै छठै महीना काल।
आगेही साधन करै बैठ गुफा तत्काल ॥ ३३ ॥
ऊपर खैंचि अपान कों प्राण अपान मिलाय।
उत्तम करै समाधि कों ताकों काल न खाय ॥ ३४ ॥
पवन पियै ज्वाला पचै नाभि तलै कर राह।
मेरु दण्ड को फोरि के बसे अमरपुर माँह ॥ ३५ ॥
जहाँ काल पहुँचे नहीं यमकी होय न त्रास।
नभ मण्डल को जाय कर उनमें करै निवास ॥ ३६ ॥
जहाँ काल नहि ज्वाल है छुटै सकल संताप।
होय उनमनी लीन मन बिसरै आपा आप ॥ ३७ ॥
तीनों बंध लगाय के या बाये को साध।
योग सुषुमणा ह्वै चले देखै खेल अगाध ॥ ३८ ॥
शक्ति जाय शिव सों मिलै जहाँ होय मन लीन।
महा खेचरी जो लगै जाने जान प्रवीन ॥ ३९ ॥
आसन पद्म लगाय कर मूल बंध को बाँध।
मेरु दण्ड सीधो करै सुरत गगन को साध ॥ ४० ॥
चन्द्र सूर्य दोउ सम करै ठोढ़ी हिये लगाय।
षट चक्कर को बेध कर शून्य शिखर को जाय ॥ ४१ ॥
इड़ा पिंगला साध कर सुषुमण में करै बास।
परम ज्योति झिलिमिलि वहाँ पूजै मन विश्वास ॥ ४२ ॥
सूर्य उत्तरायन लखै शुक्ल पक्ष के माहिँ।
योगी काया त्यागिवे यामें संशय नाहिँ ॥ ४३ ॥
मुक्त होय बहुरै नहीं जीव खोज मिटि जाय।
बुन्द समुन्दर मिलि रहै दुनिया ना ठहराय ॥ ४४ ॥

जो रण ऊपर जाइये दहिने स्वर परकाश।
जीत होय हारै नहीं करै शत्रु को नाश॥ ४५॥
सूक्षम भोजन कीजिये रहिये ना पड़ सोय।
जल थोरा सा पीजिये बहुत बोल मत खोय॥ ४६॥
पावक सानी वायु है धरती और अकाश।
पाँच तत्व के कोट में आय कियो तैं वास॥ ४७॥
सत गुरु मेरा सूरमा करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का ढहै भरम का कोट॥ ४८॥
मैं मिरगा गुरु पारधी शब्द लगायो बान।
चरनदास घायल गिरे तन मन बींधे प्रान॥ ४९॥
धन नगरी धन देस है धन पुर पट्टन गाँव।
जहँ साधू जन उपजियो ताकी बलि बलि जाँव॥ ५०॥

सहजोबाई

सहजोबाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित ढूसर कुल की स्त्री थीं। इन्होंने अपने विषय में एक स्थान पर लिखा है—

हरि प्रसाद की सुता, नाम है सहजोबाई।
ढूसर कुल में जन्म, सदा गुरु चरन सहाई॥

इनके जन्म काल का ठीक ठीक पता नहीं चलता। परन्तु इन्होंने अपने गुरु साधु चरनदासजी का जन्म समय भादव सुदी ३ मङ्गलवार सं० १७६० विक्रमीय लिखा है। इससे केवल यह माना जा सकता है कि उन्हीं दिनों के आस पास इनका भी जीवन काल है।

सहजोबाई की कविता से प्रकट होता है कि उनमें बड़ी

गुरु भक्ति थी। उनकी कविता बड़ी मधुर और बड़े मर्म की है। हम उनकी रचना के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत करते हैं—

निसचै यह मन डूबता मोह लोभ की धार।
चरनदास सतगुरु मिले सहजो लई उबार ॥१॥
सहजो गुरु दीपक दियो नैना भये अनंत।
आदि अंत मध्य एक ही सूझ पड़े भगवन्त ॥२॥
जब चैतै जबही भला मोह नींद सूँ जाग।
साधू की संगत मिलै सहजो ऊँचे भाग ॥३॥
दीर्घ बुद्धि जिनकी महा सील सदा ही नैन।
चैतनता हिरदै बसै सहजो सीतल बैन ॥ ४ ॥
ना सुख दारा सुत महल ना सुख भूप भये।
साधु सुखी सहजो कहै तृश्ना रोग गये ॥ ५ ॥
साधु वृक्ष बानी कली चर्चा फूले फूल।
सहजो संगत बाग में नाना फल रहे झूल ॥ ६ ॥
बैठ बैठ बहुतक गये जग तरवर की छाँहिं।
सहज बटाऊ बाट के मिल मिल बिछुड़तजाहिं॥७॥
अभिमानी नाहर बड़ो भरमत फिरत उजार।
सहजो नन्ही बाकरी प्यार करै संसार ॥ ८ ॥
सीस, कान, मुख नासिका ऊँचे ऊँचे नाँव।
सहजो नीचे कारने सब कोउ पूजै पाँव ॥ ९ ॥
भली गरीबी नवनता सकै न कोई मार।
सहजो रुई कपासकी काटै ना तरवार ॥ १० ॥
प्रेम दिवाने जो भये पलट गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई कहा रंक कह भूप ॥ ११ ॥
मैं अखंड व्यापक सकल सहज रहा भरपूर।
ज्ञानी पावै निकटही मूरख जानै दूर ॥ १२ ॥

जोगी पावें जोग सूँ ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावे भक्ति सूँ जाके प्रेम अधार॥ १३ ॥

दयाबाई

दया बाई भी साधु चरनदास की शिष्या और सहजोबाई की गुरु बहन थीं। ये चरनदास जी की सजाती अर्थात् ढूसर जाति की थीं; और चरनदास जी के जन्मस्थान मेवाड़ के डेहरा नामक गाँव में इनका भी जन्म हुआ था। वहाँ से ये अपने गुरुजी के साथ दिल्ली आकर भक्ति कमाती रहीं। दिल्ली ही में इन्होंने शरीर छोड़ा।

संवत् १८१८ में इन्होंने अपना पहला ग्रन्थ दयाबोध रचा। सहजोबाई की तरह इन्होंने भी गुरु चरनदास जी की महिमा खूब गाई है। इनकी कविता बड़ी मधुर और प्रेम से युक्त है। हम यहाँ दयाबोध से कुछ दोहे उद्धृत करते हैं—

जौ पग धरत सो दृढ़ धरत पग पाछे नहिं देत।
अहंकार कूं मार करि राम रूप जस लेत॥ १ ॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ हरि आवें केहि और।
छिन उठूं छिन गिरि परूँ राम दुखी मन मोर॥ २ ॥
प्रेम पुंज प्रकटै जहाँ तहाँ प्रकट हरि होयँ।
दया दया करि देत हैं श्री हरि दर्शन सोय॥ ३ ॥
"दया कुँवरि" या जगत में नहीं रह्यो थिर कोयँ।
जैसो बास सराय को तैसो यह जग होय॥ ४ ॥
तात मात तुम्हरे गये तुम भी भये तयार।
आज काल में तुम चलौ दया होहु हुसयार॥ ५

बड़ो पेट है काल को नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्रपति सब कूं लीले जाय ॥ ६ ॥
दुख तजि सुख की चाह नहिँ नहिँ बैकुंठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हौं मोहि तुम्हारी आन ॥ ७ ॥
साध संग सुखमें बड़ो जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को कलमख डारे खोय ॥ ८ ॥

गुमान मिश्र

गुमान मिश्र के जन्म मरण का समय अभी तक ठीक ठीक निश्चित नहीं हो सका। इनके विषय में केवल इतना ही पता चलता है कि इन्होंने सं० १८२१ में पिहानी के मोहमदी अधिपति अली अकबरखाँ को आज्ञा से श्रीहर्ष कृत नैषध काव्य का विविध छंदों में अनुवाद किया। इन बातों का पता इनके अनुवादित ग्रन्थ से ही चलता है। अब इनके रचे हुये अलंकार, नायिका भेद, काव्यरीति आदि विषयों के कई ग्रन्थ तथा कृष्णचंद्रिका का पता लगा है, परन्तु नैषध काव्य के सिवाय और सब ग्रन्थ अप्रकाशित हैं।

इसमें संदेह नहीं कि गुमान संस्कृत और भाषा काव्य के अच्छे ज्ञाता थे, परन्तु नैषध का अनुवाद उनसे अच्छा नहीं हो सका। कहीं कहीं तो मूल से भी अधिक जटिल हो गया है। आजकल जो श्रीवेंकटेश्वर प्रेस का छपा हुआ गुमान कृत नैषध काव्य मिलता है वह तो नितान्त अशुद्ध है। संभवतः गुमान ने ऐसी अशुद्ध रचना न की होगी।

नैषध में से इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

नल के यश तेज विराजत हैं।
शशि भानु वृथा छवि छाजत हैं॥
जबही जब यों विधि चित्त धरै।
तब छेकन को परिवेश करै॥ १॥
विधि भाल दरिद्र लिख्यो जेहि के।
नहिं कीजत अंक वृथा तेहि के॥
नल येतिकु ताहि तुरन्त दियो।
जिमि टारि दरिद्र को दूरि कियो॥ २॥

गिरिधर कविराय

गिरिधर कविराय का जन्म सं० १७७० में हुआ कहा जाता है। इन्होंने बहुत सी कुंडलियाँ बनाई हैं, जो बड़ी लोकप्रिय हैं। इनके विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार इनके पड़ोस में एक बढ़ई आ बसा। उसने एक ऐसा पलंग बनाया, जिसके चारों पावां पर पंखे लगे थे। जब कोई उस पलंग पर लेटता, तो पंखे आप से आप चलने लगते थे। बढ़ई ने वह पलंग ले जाकर राजा को दिया। राजा ने उससे वैसे ही और भी कई पलंग बना लाने को कहा। गिरिधर के आँगन में बेर का एक बड़ा सुन्दर वृक्ष था। बढ़ई और गिरिधर से कुछ खटपट हो गई थी, । इसलिये बढ़ई ने राजा से वही बेर का पेड़ लकड़ी के लिये माँगा। राजा ने आज्ञा देदी। गिरिधर ने राजा से बहुत प्रार्थना की, कि वह पेड़ न दिया जाय, परन्तु राजा ने नहीं सुनी। इससे रुष्ट होकर गिरिधर उस राज्य को त्याग कर भ्रमण करने लगे। उसी भ्रमण के समय में स्त्री पुरुष ने मिलकर कुंडलियों की रचना

की। कहा जाता है कि जिन कुंडलियों के प्रारंभ में "साँई" शब्द है वे सब गिरिधर की स्त्री की बनाई हुई हैं।

हम गिरिधर की कुछ कविता यहाँ उद्धृत करते हैं—

साईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरनाकस्यप कंस को गयउ दुहुन को राज॥
गयउ दुहुन को राज बाप बेटा में बिगरी।
दुस्मन दावागीर हँसै महि मण्डल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफ़ा कहु कौने पाई॥ १॥

बेटा बिगरे बाप सों करि तिरियन को नेहु।
लटापटी होने लगी मोंहि जुदा करि देहु॥
मोहिं जुदा करि देहु घरीमा माया मेरी।
लेहौं घर अरु द्वार करौं मैं फजिहत तेरी॥
कह गिरिधर कविराय सुनों गदहा के लेटा।
समय परयो है आय बाप से झगरत बेटा॥ २॥

साईं ऐसे पुत्र से बाँझ रहे बरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से जाय रहे ससुरारि॥
जाय रहे ससुरारि नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नसाँय और परिवार नसाने॥
कह गिरिधर कविराय मातु झंखै वहि ठाईं।
असि पुत्रनि नहिं होय बाँझ रहतिउ बरु साईं॥ ३॥

काची रोटी कुचकुची परती माछी बार।
फूहर वही सराहिये परसत टपकै लार॥
परसत टपकै लार झपटि लरिका सौंचावै।
चूतर पोंछै हाथ दोउ कर सिर खजुवावै॥

कह गिरिधर कविराय फूहर के याही चैना।
कजरौटा बरु होइ लुकाठन आँजै नैना ॥ ४ ॥
शुकने कह्यो सँदेस सेमर के पग लागिहौ।
पग न परै वहि देस जब सुधि आवै फलन की ॥५॥
साँई बैर न कीजिये गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पँवरिया यज्ञ करावन हार ॥
यज्ञ करावनहार राज मन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य आप को तपै रसोई ॥
कह गिरिधर कविराय युगनते यहि चलिआई।
इन तेरहसों तरह दिये बनि आवै साईं ॥ ६ ॥
सोना लादन पिय गये सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिय मिले रूपा ह्वै गये केश ॥
रूपा ह्वै गये केश रोय रँग रूप गँवावा।
सेजन को बिसराम पिया बिन कबहुँ न पावा ॥
कह गिरिधर कविराय लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव कहा करिहौं लै सोना ॥ ७ ॥
जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग।
जो चाहै लेतो बनै तो करि डारु निपंग ॥
तो करि डारु निपंग भूलि परतीत न कीजै।
सौ सौगन्दैं खाय चित्त में एक न दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय हरी धन धरती जाकी ॥८॥
दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारिको ठाँउ न रहत निदान ॥
ठाँउ न रहत निदान जियत जगमें यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय बिनय सबही की कीजै ॥

कह गिरिधर कविराय अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि रहत सबहीके दौलत ॥९॥
गुन के गाहक सहसनर बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय ॥
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग काग सब भये अपावन ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर मनके।
बिनु गुन लहैं न कोय सहस नर गाहक गुनके ॥१०॥
साँई सब संसार में मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में तब लग ताकोयार ॥
तबलग ताको यार यार सँगही सँग डालैं।
पैसा रहा न पास यार मुखसे नहिं बोलैं ॥
कह गिरिधर कविराय जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साँईं ॥११॥
रहिये लटपट काटि दिन बरु घामें माँ सोय।
छाँह न बाकी बैठिये जो तरु पतरो होय।
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै ॥
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जरसे जैहै ॥
कह गिरिधर कविराय छाँह मोटे की गहिये।
पाता सब झरिजाय तऊ छाया में रहिये ॥१२॥

साईं घोड़े आछतहि गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ में दूरि कीजिये बाज ॥
दूरि कीजिये बाज राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिये कैद स्यार गजराज चढ़ायो ॥
कह गिरिधर कविराय जहाँ यह बूझि बधाई।
तहाँ न कीजै भोर साँझ उठि चलिये साईं ॥१३॥

साईं अवसर के पड़े को न सहै दुख द्वन्द ।
जाय बिकाने डोम घर वै राजा हरिचन्द्र ॥
वै राजा हरिचन्द करैं मरघट रखवारी ।
धरे तपस्वी वेष फिरे अर्जुन बलधारी ॥
कह गिरिधर कविराय तपै वह भीम रसोई ।
को न करै घटि काम परे अवसर के साईं ॥१४॥

साईं ये न विरोधिये छोट बड़े सब भाय ।
ऐसे भारी वृक्ष को कुल्हरी देत गिराय ॥
कुल्हरी देत गिराय मारके जमीं गिराई ।
टूक टूक कै काटि समुद में देत बहाई ॥
कह गिरिधर कविराय फूट जेहि के घर भाई ।
हिरणाकश्यप कंस गये बलि रावण भाई ॥ १५ ॥

लाठी में गुण बहुत हैं सदा राखिये संग ।
गहिर नदी नारा जहाँ तहाँ बचावै अंग ॥
तहाँ बचावै अंग झपटि कुत्ता कहँ मारै ।
दुश्मन दावागीर होयँ तिनहूँ को झारै ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो धूर के बाठी ।
सब हथियारन छाँड़ि हाथ महँ लीजै लाठी ॥ १६ ॥

कमरी थोरे दाम की आवै बहुतै काम ।
खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान ॥
उनकर राखै मान बुन्द जहँ आड़े आवै ।
बकुचा बाँधै मोट रात को झारि बिछावै ॥
कह गिरिधर कविराय मिलत है थोरे दमरी ।
सब दिन राखै साथ बड़ी मर्यादा कमरी ॥१७॥

बिना बिचारे जो करै सो पीछे पछिताय ।
काम बिगारै आपनो जग में होत हँसाय ॥

जग में होत हँसाय चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि कियो जो बिना विचारे॥१८॥
बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेइ॥
जो बनि आवै सहज में ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसै न कोइ चित्त में खता न पावै।
कह गिरधर कविराय यहै करु मन परतीती॥
आगे को सुख समुझि होइ बीती सो बीती॥१९॥
साईं अपने चित्त की भूल न कहिये कोइ।
तबलग मनमें राखिये जबलग कारज होइ॥
जबलग कारज होइ भूलि कबहूँ नहि कहिये।
दुरजन हँसे न कोय आप सियरे ह्वै रहिये॥
कह गिरधर कविराय बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत आप कहिये नहि साईं॥ २०॥
साईं अपने भ्रात को कबहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिये सदा राखिये पास॥
सदा राखिये पास त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रास दियो लंकेश ताहि की गति सुनि लीजै॥
कह गिरधर कविराय रामसों मिलियो जाई॥
पाय विभीषण राज लंकपति बाज्यो साईं॥२१॥
साईं समय न चूकिये यथाशक्ति सन्मान।
को जाने को आइ है तेरो पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि अंक भरि हृदय लगावै॥

कह गिरिधर कबिराब सबै यामैं सधि आई।
शीतल जल फल फूल समय जनि चूको साईं ॥ २२॥

पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥
यही सयानो काम राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज शीश आगे धरि दीजै॥
कह गिरिधर कविराय बड़ेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी ॥२३॥

राजा के दरबार में जैये समया पाय॥
साईं तहाँ न बैठिये जहँ कोउ देय उठाय॥
जहँ कोउ देय उठाय बोल अनबोले रहिये।
हँसिये नहीं हहाय बात पूछे ते कहिये॥
कह गिरिधर कविराय समय सों कीजै काजा।
अति आतुर नहिं होय बहुरि अनखैहैं राजा ॥ २४ ॥

कृतघ्न कबहुँ न मानहीं कोटि करै जो कोय॥
सर्बस आगे राखिये तऊ न अपनो होय।
तऊ न अपनो होय भले की भली न मानै॥
काम काढ़ि चुप रहै फेरि तिहि नहिं पहिचानै।
कह गिरिधर कविराय रहत नितही निर्भय मन॥
मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन ॥२५॥

सुखदेव मिश्र
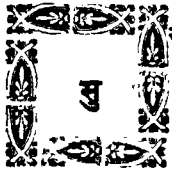
सुखदेव मिश्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका समय अनुमान से सं० १७७७ के लगभग माना जाता है। ये कम्पिला के रहने वाले थे, और उसी नगर में इनका विवाह भी हुआ था। इनके वंशधर अब भी दौलतपुर, जिला रायबरेली में वर्तमान हैं। स्वरचित वृत्त विचार नामक ग्रंथ में इन्होंने अपने जन्म स्थान कम्पिला का और अपने पूर्वजों का विस्तृत वर्णन लिखा है।

कुछ दिन तक कम्पिला में विद्याध्ययन करने के बाद ये काशी चले गये और वहाँ एक सन्यासी से साहित्य पढ़ने लगे। वहाँ से संस्कृत और भाषा साहित्य के पूर्ण विद्वान् होकर ये असोथर जि० फतेपुर के राजा भगवंतराय खीची के यहाँ चले गये। वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद ये क्रमशः औरंगज़ेब के मंत्री फ़ाज़िल अली, अमेठी के राजा हिम्मत सिंह, मुरारिमऊ के राजा देवीसिंह के यहाँ गये और सर्वत्र इन्होंने पूरा सन्मान पाया। राजा देवीसिंह के कहने से ही ये कम्पिला छोड़ कर सकुटुम्ब दौलतपुर में आगये।

इन्होंने निम्न लिखित ग्रन्थों को रचना की है :—

वृत्त विचार, छन्द विचार, फ़ाज़िल अली प्रकाश, रसार्णव, शृंगारलता, अध्यात्म प्रकाश, दशरथ राय और नखशिख। वृत्त विचार और छंद विचार पिंगल के ग्रंथ है। मिश्र जी ने संस्कृत और प्राकृत में भी कविताएँ रची थीं, परंतु अब उनका कहीं पता नहीं चलता।

इनकी कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :—

ननँद निनारी सासु माइके सिधारी अहै रैनि अँधियारी भरी सूझत न करु है। पीतम को गौन कविराज न सुहात भौन दारुन बहत पौन लाग्यो मेघ झरु है॥ संग ना सहेली, बैस नवल अकेली तन परी तलबेली महा लाग्यो मैन सरु है। भई अधरात, मेरो जियरा डेरात जागु जागु रे बटोही इहाँ चोरन को डरु है॥ १॥

जोहैं जहाँ मगु नंद कुमार तहाँ चली चंदमुखी सुकुमार है।
मोतिन ही को कियो गहनो सब फूलि रही जनु कुंद की डार है।
भीतर ही जु लखी सु लखी अब बाहिर जाहिर होति न दार है।
जोन्हसीजोन्हैगईमिलियोंमिलिजातज्योंदूधमेंदूधकीधारहै॥२॥

यों कछु कीन्हीं अचानक चोट जु ओट सखीन सकी कै दुकूल है।
देह कँपै मुँह पीरी परी सो कह्यो नहिँ जो ह्वै गयो हिय सूल है॥
माँझ उरोज में आनि लग्यो अँगिरात जहीं उचक्यो भुजमूल है।
कौन है ख्याल? खेलारअनोखे! निसंकह्वै ऐसेचलैयतफूल है॥३॥

मीन की बिछुरता कठोरताई कच्छप की हिये घाय करिबे को कोल ते उदार हैं। बिरह बिदारिबे को बली नरसिंह जू सों बामन सों छली बलिदाऊ अनुहार हैं॥ द्विज सों अजीत बलबीर बलदेव ही सों राम सों दयाल सुखदेव या बिचार हैं॥ मौनता में बौध कामकला में कलंकी चाल प्यारी के उरोज ओज दसो अवतार हैं॥ ४॥

मंदर महिन्द गंधमादन हिमालय में जिन्हें चल जानिये अचल अनुमाने ते। भारे कजरारे तैसे दीरघ दँतारे मेघ मंडल बिहंडैं जे वै शुंडा दंड ताने ते। कीरति विशाल छितिपाल श्री अनूप तेरे दान जो अमान कापै बनत बखाने ते। इतै कवि मुख जस आखर खुलत उतै पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते॥ ५॥

दूलह

दूलह कवीन्द्र के पुत्र और कालिदास त्रिवेदी के पौत्र थे। इनके जन्म मरण के ठीक ठीक समय का अभी तक पता नहीं चला। अनुमान से इनका जन्मकाल सं० १७७७ के लगभग ठहरता है। दूलह का "कवि कुल कंठाभरण" नामक केवल एक ही ग्रन्थ मिलता है। उसमें कुल एक्यासी छंद हैं। इनके सिवाय कुछ स्फुट छंद भी मिलते हैं। दूलह का काव्य-गुण पैतृक है। कालिदास से कवीन्द्र की कविता अच्छी है और कवीन्द्र से दूलह की।

दूलह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

फल बिपरीत को जतन सों "विचित्र" हरि ऊँचे हेत बामन में बलि के सदन मैं। आधार बड़े तैं बड़ो आधेय "अधिक" जानो चरन समानो नाहिं चौदहो भुवन मैं। आधेय अधिक तें आधार की अधिकताई दूसरो अधिक आयो ऐसो गणनन मैं। तीनों लोग तन में अमान्यो ना गगन मैं बसैं ते संत मन मैं कितेक कहौ मन मैं॥ १॥

उत्तर उत्तर उतकरष बखानो "सार" दीरघ तें दीरघ लघू तें लघू भारी को। सब तें मधुर ऊख ऊख तें पियूष ना पियूष हू तें मधुर है अधर पियारी को। जहाँ कमिकन को क्रमैं तें यथा क्रम "यथा संख्य" बैन, नैन, नैनकोन ऐसे धारी को। कोकिल तें कल, कंजदल तें अदल भाव जीत्यो जिन काम की कटारी नोकवारो को॥ २॥

धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं पाइ दियौ पलिकाहीं नाहीं नाहीं कै सुहाई हौ। बोलत मैं नाहीं पट खोलत मैं नाहीं

कवि दूलह उछाहीं लाख भाँतिन लहाई हौ। चुंबन मैं नाहीं परिरम्भन मैं नाहीं सब आसन बिलासन मैं नाहीं ठीक ठाई हौ। मेलि गलबाहीं केलि कीन्हीं चितचाही यह हाँ ते भली नाहीं सो कहाँ ते सीख आई हौ ॥ ३ ॥

माने सनमाने तेई माने सनमाने सनमाने सनमाने सनमान पाइयतु है। कहैं कवि दूलह अजाने अपमाने अपमान सोँ सदन तिनहीं के छाइयतु है। जानत हैं जेऊ तेऊ जात हैं बिराने द्वार जान बूझ भूले तिनको सुनाइयतु है। काम बस परे कोऊ गहत गरूर तो वा अपनी जरूर जाजरूर आइयतु है ॥ ४ ॥

सीतल

सीतल स्वामी हरिदास की टट्टी सम्प्रदाय के महंत थे। इनका समय इस सम्प्रदाय के लोग सं० १७८० के लगभग बतलाते हैं, मरण काल का कुछ पता नहीं चलता। सीतल ने चार भागों में गुलज़ार चमन नामक ग्रंथ की रचना की थी। उसके तीन भाग मिलते हैं जिनके नाम गुलजार चमन, आनन्द चमन और विहार चमन हैं। इनके विषय में यह किम्वदन्ती सुनी जाती है कि ये शाहाबाद ज़िला हरदोई के समीप किसी ग्राम के निवासी थे, और लालबिहारी नाम के एक लड़के पर आसक्त थे। इनकी कविता प्रेमरस से सराबोर है। कुछ छंदों का भाव सांसारिक प्रेम और भगवत्प्रेम, दोनों ओर लगाया जा सकता है। लालबिहारी का नाम इनके छंदों में प्रायः अधिक

आया है। सम्भव है, इसी भ्रम में आकर लोगों ने उपरोक्त कल्पना की हो।

सीतल हिन्दी के सिवाय संस्कृत और फारसी भी जानते थे। इनकी कविता वर्तमान हिन्दी के ढंग की है। नीचे इनके कुछ छंद लिखे जाते हैं :—

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुईं नभ तारा चारु सुधाकर हैं।
अम्बा धारानल शक्ति स्वधा स्वाहा जल पवन दिवाकर है॥
हम अंशाअंश समझते हैं सब खाक जाल से पाक रहैं।
सुन लालबिहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं ॥१॥

कारन कारज ले न्याय कहै जोतिस मत रवि गुरु ससी कहा।
ज़ाहिद ने हक़, हसन यूसुफ़ अरहत जैन छवि बसी कहा।
रतराज रूप रस प्रेम इश्क जानी छवि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुमको वह जाना जो ब्रह्म तत्व त्वम असी कहा॥२॥

मुख सरद चन्द्र पर ठहर गया जानी के बुंद पसीने का।
या कुन्दन कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का॥
देखे से होश कहाँ रहवै जो पिदर बू अली सीने का।
या लाल बदख्शाँ पर खौंचा चौका इल्मास नगीने का ॥ ३ ॥

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनँद का कंद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुंज तेरे ही तन में बंद किया॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफंद किया।
चम्पकदल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चंद किया ॥४॥

मुख सरद चन्द्र पर स्रम सीकर जगमगै नखत गन जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के हैं कनके रूप उदोती से।
हीरे की कनियाँ मंद लगैं हैं सुधा किरन के गोती से।
आया है मदन आरती को धर कनक थार में मोती से ॥ ५ ॥

बरनन करने के क्या बरनूँ बरनूँगा जेती बानी है।
ग्रह तीन उच्च के पड़े हुये जानी यह यूसुफ़ सानी है॥
ससि भवन जीव सफरी में गुर कन्या बुध जोतिस ज्ञानी है।
इस लालबिहारी की सीतल क्या अर्द्ध चन्द्र पेशानी है॥ ६॥
चन्दन की चौकी चारु पड़ी सोता था सब गुन जटा हुआ।
चौके की चमक अधर विहँसन मानो एक दाड़िम फटा हुआ।
ऐसे में ग्रहन समै सीतल एक ख्याल बड़ा अटपटा हुआ।
भूतल ते नभ, नभ ते अवनी, अग उछलै नट का बटा हुआ॥७॥

ब्रजबासीदास

ब्रजबासी दास का जन्म सं १७६० के आस पास हुआ। इन्होंने सं० १८२७, माघ शुक्ल पंचमी, सोमवार को ब्रजबिलास प्रारम्भ किया था। इस ग्रन्थ में कुल इतने छंद हैं:—
दोहा ८८६, सोरठा ८८६, चौपाई १०६००, हरिगीतिका १०६। इस ग्रन्थ में भगवान कृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन है। तुलसीदास के रामायण के ढँग पर यह लिखा गया है। इसकी कविता कृष्ण-भक्तों को विशेष प्रिय है। यहाँ ब्रजबिलास से चंद्रमा के लिये कृष्ण के मचलने की कथा उद्धृत करते हैं:—

ठाढ़ी अजिर जसोदा रानी गोदी लिये श्याम सुखदानी
उदै भयो ससि सरद सुहावन लागी सुत को मात दिखावन
देखहु श्याम चंद यह आवत अति सीतल दृग ताप नसावत
चितै रहे हरि इक टक ताही करते निकट बुलावत ताही
मैया यह मीठो है खारो देखत लगत मोहि यह प्यारो
देहि मँगाय निकट मैं लैहों लागी भूख चंद मैं खैहों

देहि बेगि मैं बहुत भुखानो माँगत ही माँगत बिरुझानो
जसुमति हँसत करत पछतायो काहेको मैं चंद दिखायो
रोवत है हरि बिनही जाने अब धों कैसे करिके माने
विविध भाँतिकरि हरिहिभुलावै आन बनावै आन दिखावै

कहत जसोदा कौन विधि समझाऊँ अब कान्ह।
भूलि दिखायो चंद मैं ताहि कहत हरि खान॥
अनहोनी क्यों होय तात सुनी यह बात कहुँ।
याहि खात नहिँ कोय चंद खिलौना जगत को॥

यही देत नित माखन मोको छिनछिन देत तात सो तोको
जो तुम श्याम चंद को खैहो बहुरो फिरि माखन कहँ पैहो
देखत रहौ खिलौना चंदा हठ नहिँ कीजै बाल गोबिन्दा
मधु मेवा पकवान मिठाई जो भावे सो लेहु कन्हाई
पालागों हठ अधिक न कीजै मैं बलि रिसही रिस तन छीजै
खसिखसि कान्ह परतकनियाँते दैसिस कहत नन्द रनियाँ तें
जसुमति कहत कहाधौं कीजै माँगत चन्द्र कहाँ तें दीजै
तब जसुमति इक जलपुट लीनो कर मैं लै तेहि ऊँचा कीनो
ऐसे कहि श्यामहिँ बहकावै आव चन्द तोहिँ लाल बुलावै
याही में तू तन धरि आवै तोहिँ देखि लालन सुख पावै
हाथ लिये तोहिँ खेलत रहिये नेक नहीं धरनी पर धरिये
जलपुट आनि धरनि पर राख्यो गहिआनहु सखि जननीभाख्यो

लेहु लाल यह चन्द्र मैं लीनों निकट बुलाय।
रोवै इतने के लिये तेरी श्याम बलाय॥
देखहु श्याम निहारि याभाजनमेंनिकटससि।
करी इती तुम आरि जा कारण सुन्दरसुवन॥

ताहि देखि मुसुकाय मनोहर बार बार डारत दोऊ कर
चन्दा पकरत जल के माहीं आवत कछू हाथ में नाहीं

तब जलपुट के नीचे देखे तहँ चन्दा प्रतिबिम्बन पेखे
देखत हँसी सकल ब्रजनारी मगन बाल छवि लखि महतारी
तबहिं श्याम कुछ हँसि मुसुकाने बहुरौं माता सौं बिरुझाने
लउँगौ री मा चन्दा लउँगौ वाहि आपने हाथ गहूँगौ
यह तौ कलमलात जल माँहीं मेरे करमें आवत नाहीं
बहर निकट देखियत माहीं कहौ तो मैं गहि लावौं ताही
कहत जसोमति सुनहु कन्हाई तुव मुख लखि सकुचत उड़राई
तुम निहि पकरन चहत गुपाला ताते ससि भजि गयो पताला
अब तुमतें ससि डरपत भारी कहत अहो हरि सरन तुम्हारी
बिरुझाने सोये दै तारी लिय लगाय छतियाँ महतारी

लै पौढ़ाये सेज पर हरि को जसुमति माय।
अति बिरुझाने आज हरि यह कहि कहि पछताय॥
करसों ठोंकि सुनाय मधुरे सुर गावत कछुक।
उठि वैठे अतुराय चटपटाय हरि चौंकि के॥

ठाकुर

ठाकुर असनी के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। इनका जन्म सं० १७९२ के लगभग कहा जाता है। इनकी कविता इतनी लोकप्रिय है कि कभी उस का उपयोग कहावतों की तरह किया जाता है। ठाकुर नाम के कई कवि हुये। परन्तु सब से प्रसिद्ध असनी वाले ही हैं। प्रेम का वर्णन इनकी कविता का मुख्य गुण है। नीचे हम कुछ कविताएं उद्धृत करते हैं। उनसे ठाकुर के हृदय का बड़ा सुन्दर परिचय मिलता है।

बैर प्रीति करिबे की मन में न राखै संक राजा राव देखि

कै न छातो धकधाकरो। अपनी उमंग की निबाहिबे की चाह जिन्हैं एक सो दिखात तिन्हैं बाघ और बाकरी ॥ ठाकुर कहत मैं विचार कै विचार देखो यहै मरदानन की टेक बात आकरी। गही जौन गही जौन छोड़ी तौन छोड़ दई करी तौन करी बात ना करी सो ना करी ॥ १ ॥

सामिल में पीर में शरीर में न भेद राखै हिम्मत कपट को उघारै तौ उघरि जाय। ऐसे ठान ठानै तौ बिनाहू जन्त्र मन्त्र किये साँप के जहर को उतारै तो उतरि जाय ॥ ठाकुर कहत कछु कठिन न जानौ अब, हिम्मत किये तें कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारिहू दिसा तें चारो कोन गहि मेरु को हिलाय कै उखारैं तौ उखरि जाय ॥ २ ॥

अन्तर निरन्तर के कपट कपाट खोलि प्रेम को झलाझल हिये में छाइयतु हैं। लटी भई आप सों भई है करतूत जौन विरह बिथा की कथा को सुनाइयतु है ॥ ठाकुर कहत वाहि परम सनेही जान दुख सुख आपने विधि सों गाइयतु है। कैसो उतसाह होत कहत मते की बात जब कोऊ सुघर सुनैया पाइयतु है ॥ ३ ॥

जौलौं कोऊ पारखीसों होन नहि पाई भेंट तब ही लौं तनक गरीब लौं सरीरा हैं। पारखीसों भेंट होत मोल बढ़े लाखन को, गुनन के आगर सुबुद्धि के गंभीरा हैं ॥ ठाकुर कहत नहि निन्दो गुनवारन को देखिबे को दीन ये सपूत सूर-बीरा हैं। ईश्वर के आनस तें होत ऐसे मानस जे मानस सहूर वारे धूर भरे हीरा हैं ॥ ४ ॥

सुकवि सिपाही हम उन रजपूतन के दान युद्ध बीरता में नेकहू न सुरके। जस के करैया हैं मही के महिपालन के हिये के विशुद्ध हैं सनेही साँचे उरके ॥ ठाकुर कहत हम बैरी बेव-

कूफन के जालिम दमाद हैं अदेनियाँ ससुर के। चोजन के चोजी महा मौजिन के महाराज हम कविराज हैं पै चाकर चतुर के ॥ ५ ॥

हिलमिलि लीजिये प्रबीनन तें आठो जाम कीजिये अराम जासों जिय को अराम है। दीजिये दरस जाको देखिबे को हौस होय कीजिये न काम जासों नाम बदनाम है ॥ ठाकुर कहत यह मन में विचारि देखो जस अपजस को करैया सब राम है। रूप से रतन पाय चातुरी से धन पाय नाहक गँवाइबो गँवारन को काम है ॥ ६ ॥

कोमलता कंज तें गुलाब तें सुगन्ध लैकै चन्द तें प्रकाश कियो उदित उजेरो है। रूप रति आनन तें चातुरी सुजानन तें नीर लै निवाजन तें कौतुक निबेरो है। ठाकुर कहत यों मसालो विधि कारीगर रचना निहारि जन होत चित चेरो है। कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को बसुधा को सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है ॥ ७ ॥

ग्वारन को यार है सिँगार सुख सोभन को साँचो सरदार तीन लोक रजधानी को। गाइन के संग देख आपनो बखत लेख आनँद विशेष रूप अकह कहानी को। ठाकुर कहत साँचो प्रेम को प्रसंगवारो जा लख अनंग रंग दंग दधिदानी को। पुण्य नंद जू को अनुराग ब्रजबासिन को भाग यसुमति को सुहाग राधारानी को ॥ ८ ॥

आपने बनाइबे को औ‌र को बिगारिबे को सावधान ह्वै के सीखे द्रोह से हुनर हैं। भूल गये करुनानिधान स्याम मेरे जान जिनको बनायो यह विश्व को वितर है। ठाकुर कहत पगे सबै मोह माया मध्य जानत या जीवन को अजय अमर

है। हाय! इन लोगन को कौन सो उपाय जिन्हैं लोक को न डर परलोक को न डर है ॥ ९ ॥

लगी अंतर में करै बाहिर को बिन जाहिर कोऊ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै घर की कोउ बाहर भानतु है॥
कवि ठाकुर आपनी चातुरी सों सबही सब भाँति बखानतु है।
पर बीर मिलै बिछुरैकी विथा मिलिकै बिछुरै सोई जानतु है॥१०॥
वा निरमोहिनी रूप की रासि जौ ऊपर के उर आनति ह्वै है।
बार हू बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहचानति ह्वै है॥
ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत हैं नित मेरे लिये इतनो तो बिसेसहू जानति ह्वै है॥११॥
यह प्रेम कथा कहिये किहिसों सौ कहेसों कहा कोऊ मानतहैं।
पर ऊपरी धीर बँधायो चहैं तन रोग न वा पहिचानत हैं।
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उरआनत है।
बिन आपने पाय बेवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है॥१२॥
ये जे कहैं ते भले कहिबो करैं मान सही सौ सबै सहि लीजै।
ते बकि आपुहि ते चुप होयँगो काहे को काहुवै उत्तर दीजै॥
ठाकुर मेरे मते की यहै धनि मान कै जोबन रूप पतीजै।
या जग मैं जनमैं को जियै को यहै फल है हरि सों हित कीजै१३॥
एक ही सों चित चाहिये और लों बीच दगा को परै नहिँ टाँको।
मानिक सों चित बेंचि कै जू अब फेरि कहाँ परखावनो ताको।
ठाकुर काम नहीं सब को इक लाखन में परबीन है जाको।
प्रीति कहा करिबेमें लगै करिकै इक ओर निबाहनो वाको॥१४॥
वह कंजसों कोमल अंग गुपालको सोऊ सबै पुनि जानतीहौ।
बलि नेक रुखाई धरे कुम्हलात इतौऊ नहीं पहिचानती हौ॥
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै बनै नहि मानतीहौ।
दृग बान ये भौंह कमान कहौ अब कानलौं कौनपैतानतीहौ१५॥

बोधा

बोधा का पहला नाम बुद्धिसेन था। ये सरवरिया ब्राह्मण थे। कोई कोई इनका निवास स्थान राजापुर (ज़िला बाँदा) और कोई कोई फीरोज़ाबाद (ज़िला आगरा) बतलाते हैं। इनके जन्म-मरण का ठीक समय अभी निश्चित नहीं हो सका है। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-संवत् १८०४ लिखा है। अनुमान से यही ठीक जान पड़ता है।

पन्ना दरबार में इनके सम्बंधियों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। बालकपन में ये उन्हीं के पास जाकर रहने लगे। ये हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी के अच्छे पंडित थे। इनके गुणों से प्रसन्न होकर पन्ना नरेश इन्हे बहुत चाहने लगे। प्यार के कारण उन्होंने ही इनका नाम बुद्धिसेन से बोधा रख दिया। दरबार में सुभान नाम की एक वेश्या थी। बोधा ने उससे कुछ सम्बंध स्थापित कर लिया। जब इसका समाचार राजा साहब को मालूम हुआ, तब उन्होंने बोधा को छः महीने के लिये अपने राज्य से निकाल दिया। इस अवसर में इन्होंने उस वेश्या के विरह में "विरह वारीश" नामक ग्रंथ की रचना की। छः मास के उपरान्त जब ये फिर दरबार में गये, और राजा साहब को इन्होंने अपना "विरह वारीश" सुनाया। तब राजा ने प्रसन्न होकर इनसे वर माँगने को कहा। इन्होंने कहा—"सुभान अल्लाह"। राजा ने प्रसन्न होकर सुभान वेश्या इन्हें समर्पित की। अपने "इश्कनामा" में इन्होंने सुभान की बड़ी प्रशंसा की है। पन्ना ही में इनका देहान्त हुआ।

बोधा प्रेमी कवि थे। प्रेम के उपासक थे। प्रेम के मर्मज्ञ थे। इनकी कविता तरंगिणी में प्रेम ही की लहर लहराती है। यहाँ हम इनके कुछ छंद उद्धृत करते हैं :—

अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह ते द्वार सकी न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापै न चित्तडरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनोहै॥१॥

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसुकाहट ताको॥
सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहिंजानमिलै तो जहान कहाँको॥२॥

लोककी लाज औ सोक प्रलोकको वारिये प्रीतिके ऊपर दोऊ।
गाँव को गेह को देह को नातो सनेह में हाँतो करै पुनि सोऊ॥
बोधा सुनीति निवाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीत डेरात जो मीत तौप्रीतिकेपैंडेपरैजनि कोऊ॥३॥

बोधा किसू सो कहा कहिये सो बिथा सुनि पूरिरहैअरगाइकै।
याते भले मुख मौन धरैं उपचार करैं कहूँ औसर पाइ कै।
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहूँ जो कहै कछु रंच दया उर लाइकै।
आवतु है मुख लौं बढ़ि कै फिरि पीररहैयासरीर समाइ कै॥४॥

कबहूँ मिलिबो कबहूँ मिलिबो यह धीरज ही में धरैबो करै।
उर ते कढ़ि आवै गरे ते फिरै मन की मनहीं में सिरैबो करै॥
कवि बोधा न चाउ सरी कबहूँ नितही हरवासों हिरैबो करै।
सहते ही बनै कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै॥५॥

बिछुरे दरद न होत खर सूकर कूकुरन को।
हंस मयूर कपोत सुघर नरन बिछुरन कठिन॥६॥

बोधा सब जग ढूँढ़यो फिरि फिरि धाइ।
जेहि मनहीं मन चाहत सो न लखाइ ॥७॥

हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिये। होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये॥ बोधा कवि नीति को निबेरो यही भाँति अहै आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये। दाता कहा सूर कहा सुन्दर सुजान कहा आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिये॥ ८ ॥

पदमाकर

पदमाकर का जन्म सं० १८१० में बाँदा में हुआ, और सं० १८६० में ये कानपुर में गङ्गातट पर स्वर्गवासी हुये। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। पदमाकर संस्कृत और प्राकृत के अच्छे पंडित थे। ये कुछ दिनों तक जयपुर के महाराज जगतसिंह के पास भी रहे थे, और उन्हीं के नाम पर इन्होंने जगद्विनोद नामक बड़ा रोचक काव्य ग्रंथ बनाया। इनके रचे ग्रंथों में जगद्विनोद, गङ्गालहरी और प्रबोध पचासा की कविता अच्छी है। इन्हों ने राम रसायन नाम से बालमीकि रामायण का पद्यानुवाद भी किया था। इनके प्रायः सब ग्रन्थ भारत जीवन प्रेस बनारस में छप चुके हैं। कविता द्वारा इन्होंने बड़ा धन प्राप्त किया था। ये सदैव राजा महाराजाओं की तरह रहा करते थे। इनकी कविता में अनुप्रास का आनन्द खूब मिलता है। हम यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने प्रस्तुत करते हैं :—

१

आहिरै जागतसी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पदमाकर हीरा के हारन गङ्ग तरङ्गन सी सुखदेनी॥
पायन के रँग सों रँगि जातसी भाँतिही भाँति सरस्वति सेनी।
पैरै जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी॥

२

ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरईसी।
ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनईसी॥
ज्यों कुच त्योंहींनितम्बचढ़ेकछुज्योंहीनितम्ब त्यों चातुरईसी।
जानि न ऐसी चढ़ा चढ़िमें किहिधौं कटि बीचहीलूटिलईसी॥

३

चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे।
छोरि परी है सुकचुकी न्हान को अंगन तेजमें ज्योतिके कौंधे॥
छाइ उरोजन की छबि त्यों पदमाकर देखतही चकचौंधे।
भागि गई लरिकाई मनौ लरिकै करिकै दुहुँ दुन्दुभि औंधे॥

४

जाहि न चाह कहूँ रति की सु कछू पति को पतियान लगी है।
त्यों पदमाकर आनन में रुचि कानन भौंहें कमान लगी है॥
देत तिया न छुवै छतियाँ बतियान में तो मुसकान लगी है।
पीतम पान खवाइबे को परयंक के पास लौं जान लगो है॥

५

आई जु चालि गोपाल घरै ब्रजबाल विशाल मृणालसों बाहीं।
त्यों पदमाकर मूरति में रति छ्वै न सकै कितहूँ परछाहीं॥
शोभित शम्भु मनो उर ऊपर मौज मनोभव की मनमाहीं।
लाज विराज रही अँखियान में प्रान में कान्ह जबान में नाहीं॥

६

सोरह शृंगार कै नवेली के सहेलिन हूँ कीन्हीं केलि मंदिर में कलपित केरे हैं। कहै पदमाकर सु पास ही गुलाब पास खासे खसखास खसबोईन के ढेरे हैं। त्यों गुलाब नीरन सों हीरन के हौज भरे दम्पति मिलाप हित आरती उजेरे हैं। चोखी चाँदनीन पर चौरस चमेलिन के चन्दन की चौकी चारु चाँदी के चँगेरे हैं॥

७

चह चही चहल चहूँघा चारु चन्दन की चन्द्रक चमीन चौक चौकन चढ़ी है आब॥ कहै पदमाकर फराकत फरस बन्द फहरि फुहारनकी फरस फबी है फाब। मोद मद माती मनमोहन मिले लै काज साजि मन मन्दिर मनोज कैसी मह-ताब। गोल गुल गादी गुल गोल में गुलाब गुल गजक गुलाबी गुल गिन्दुक गले गुलाब॥

८

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निशाअधराति प्रमाने।
हौं पदमाकर भावति हौं निज भावत पै अबहीं मुहि जाने॥
तौ अलबेली अकेली डरै किन क्यों डरौं मेरी सहाय के लानै।
है सखि संग मनोभव सो भट कानलों बान सरासन ताने॥

९

झाकतिहैकाझरोखा लगी लग लागिबे कोयहाँझेलनहींफिर।
त्यों पदमाकर तीखे कटाक्षन कीसर कौसर सेल नहीं फिर॥
नैन नहीं कि घलाघल के घन घावन को कछु तेल नहीं फिर।
प्रीति पयोनिधि में धँसिकै हँसिकैकढ़िबो हँसीखेलनहींफिर॥

१०

बैन सुधा के सुधासी हँसो बसुधा में सुधाकी सटा करतीहै।
त्यों पदमाकर बारहि बार सुबार बगारि लटा करती हैं॥
बीर बिचारे बटोहिन पै इक काज ही तौ यों लटा करती है।
विज्जु छटासी अटा पै चढ़ी सु कटाछनि घालि कटा करतीहैं॥

११

कूलन में केलिमें कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है। कहे पदमाकर परागन में पानहू में पानन में पीकमें पलाशन पगंत है॥ द्वार में दिशान में दुनी में देश देशन में देखो दीप दीपन में दीपत दिगंत है। बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरो बसंत है॥

१२

पात बिन कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के परत न चीन्हें जे ये लरजत लुंज हैं। कहै पदमाकर बिसासी या बसंत के सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं॥ ऊधो यह सूधा सों सँदेसौ कहि दीजो भलो हरि सों हमारे ह्याँ न फूले वन कुंज हैं। किंशुक गुलाब कचनार औ अनारन की डारनपै डोलत अंगारन के पुंज हैं॥

१३

ये ब्रजचन्द्र चलो किन वा वृज लूक बसंत की ऊकन लागी।
त्यों पदमाकर पेखो पलाशन पावक सी मनो फूँकन लागी॥
वै ब्रजनारी बिचारी बधू बनवारी हिये लौं सु हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू कै लिया कूकन लागी॥

१४

फहरैं फुहारे नीर नहरैं नदी सी बहै छहरैं छवीन छाम छीटिन की छाटी है। कहै पदमाकर त्यों जेठकी जलाकैं तहाँ

पावैं क्यौं प्रवेस बेस बोलन को बाटी है ॥ बारहू दरीन बीच चारहू तरफ तैसी बरफ बिछाई तापै शीतल सुपाटी है। गजक अँगूर की अँगूर से उचौ हैं कुच आसव अँगूर को अँगूर ही की टाटी है ॥

१५

मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले मंद मन्द मारुत मुहीम मनसा की है। कहै पदमाकर त्यों नादत नदीन नित नागर नवेलिन की नजर निशाकी है ॥ दौरत दरेरे देत दादुर सुदूँद दीह दामिनी दमंकनि दिसनि में दशा की है। बद्दलनि बुन्दनि बिलोको बगुलानि बाग बङ्गलनि बेलिन बहार बरसा की है ॥

१६

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै बृन्दाबन बीथिन बहार बंसीबट पै। कहै पदमाकर अखंड रास मंडल पै मण्डित उमड़ि महा कालिन्दी के तट पै ॥ छिति पर छान पर छाजत छतान पर ललित लतान पर लाड़िली के लट पै। आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि पाई छबि आजुही कन्हाई के मुकुट पै ॥

१७

अगर की धूप मृगमद को सुगन्ध वर बसन बिशाल जाल अङ्ग ढाकियतु हैं। कहै पदमाकर सु पौन को न गौन जहाँ ऐसे भौन उमँगि उमंगि छाकियतु हैं। भोग औ सँयोग हित सुरति हिमंत ही में एते और सुखद सहाय वाकियतु है। तान की तरंग तरुणापन तरणि तेज तेल तूल तरुणि तमाल ताकियतु हैं ॥

१८

गुलगुली गिलमैं गलीचा हैं गुणी जन हैं चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला हैं। कहै पद्माकर त्यों गजक गिजा हैं सजी सेज हैं सुराही हैं सुरा है और प्याला हैं। शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं। तान तुकताला हैं विनोद के रसाला हैं सुबाला हैं दुशाला हैं विशाला चित्रशाला हैं॥

१६

जात हती निज गोकुल मैं हरि आवैं तहाँ लखिकै मन सूना।
तासों कहौं पद्माकर यों अरे साँवरे बावरे तैं हमैं छू ना॥
आजधौं कैसी भई सजनी उत वा विधिबोल कढ्योई कहूं ना।
आनिलगायोहियोसेंहियो भरिआयोगरो कहिआयो कछूना॥

२०

शोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी कौनहूँ सुमनवारी को नहीँ निहारी हैं। कहै पद्माकर त्यौ बाँधनू बसनवारी वा व्रज बसन वारी ह्यो हरन हारी है॥ सुबरनवारी रूप सुबरनवारी सजै सुबरनवारी काम कर की सँवारी हैं। सीकरनवारी स्वेद सीकरनवारी रति सीकरनवारी सो बसीकरनवारी है।

२१

अंचल के ऐंचे चल करती दृगंचल को चंचला तें चंचल चलै न भजि द्वारे को। कहै पद्माकर परै सी चौंक चुम्बन मैं छलनि छपावै कुच कुंभनि किनारे को॥ छाती के छुवे पै परी राती सी रिसाय गलबाँहीँ किये करै नाहिं नाहिं पै उचारे को। ही करति शीतल तमासे तुंग ती करति सी करति रति में बसीकरति प्यारे को॥

२२

फाग के भीर अभीरनि त्यों गहि गोबिन्द लैगई भीतर गोरी।
भाय करी मनकी पद्माकर ऊपर नाय अबीर की झोरी॥
छीन पितम्मर कम्मर तें सु बिदा दई मीड कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुक्याय लला फिरआइयो खेलन होरी॥

२३

कै रतिरङ्ग थकी थिर ह्वै परयंकमें प्यारी परी मुख बाय कै।
त्यों पदमाकर स्वेद के बुन्द रहे मुकताहल से तन छाय कै॥
बिन्दु रचे मेंहदीके लसे कर तापर यों रह्यो आनन आय कै।
इन्दु मनों अरविन्द पै राजत इन्द्रबधून के वृन्द बिछाय कै॥

२४

रे मन साहसी साहस राख सु साहस सों सब जेर फिरैंगे।
त्यों पद्माकर या सुख में दुख त्यों दुखमें सुख सेर फिरैंगे॥
वैसे ही वेणु बजावत श्याम सुनाम हमारो हू टेर फिरैंगे।
एक दिना नहिं एक दिना कबहूँ फिर वे दिन फेर फिरैंगे॥

२५

जैसो तै न मोसों कहूँ नेकहूँ डरात हुतो तैसो अब हौंहूँ नेकहूँ न तोसाँ डरिहौं। कहै पदमाकर प्रचंड जो परैगो तो उमड करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं। चलो चलु चलो चलु बिचल न बीच हो ते कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं। येरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं गंगा के कछार में पछार छार करि हौं॥

२६

जगजीवन को फल जानि पस्रो धनि नैननि को ठहरैयतु है।
पदमाकर ह्यो हुलसै पुलकै तनु सिन्धु सुधा के अन्हैयतु है॥

मन पैरत सो रस के नद में अति आनन्दमें मिलि जैयतु है।
अब ऊँचे उरोज लखे तियके सुरराज के राजसों पैयतुहै॥

२७

पाली पैजपन की प्रवेश करि पावक में पौन से सिताब सहगौन की गती भई। कहै पद्माकर पताका प्रेम पूरण की प्रकट पतिव्रत की सौगुनी रती भई॥ भूमिहु अकाशहु पताळहु सराहै सब जाको यश गावत पवित्र मो मती भई। सुनत पयान श्री प्रताप को पुरन्दर पै धन्य पटरानी जोधपुर में सती भई॥

२८

चोरन गोरिन में मिलकै इतै आई है हाल गुवाल कहाँ की।
कौन बिलोकि रह्यो पद्माकर वा तिय की अवलोकनि बाँकी॥
घोर अबीर की धूँधुरि में कछु फेर सों कै मुख फेरकै झाँकी।
कै गई काटि करेजनि के कतरे कतरे पतरे करिहाँ की॥

२९

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिर हूँ बाग ना सुहात जो खुशाल खुशबोही सों। कहै पद्माकर घनेरे धन धाम त्योंही चैन ना सुहात चाँदनी हूँ योग जोही सों। साँझ हूँ सुहात ना सुहात दिन माँझ कछु व्यापी यह बात सो बखानत हों तोही सों। रातिहु सुहात ना सुहात परभात आली जब मन लागि जात काहू निरमोही सों॥

३०

बगसि वितुंड दये झुंडन के झुंड रिपु मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को। कहै पद्माकर करोरन को कोष दये षोड़सहू दीन्हें महादान अधिकारी को॥ ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये अन्न जल दीने जगती के जीवधारी

को ।।दाता जयसिंह दोय बातैं तो । न दीनी कहुँ बैरिन को पीठि और दीठि परनारी को ।।

३१

सम्पति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना । कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर विचारै ना ।। दीन्हेगज बकस महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना । याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरितें गरेतें निज गोदतें उतारै ना ।।

३२

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को । कहै पद्माकर सु'गाल के बजावतही काज करि देत जन जाचक जरूरे को ।। चन्द्र की छटान जुत पन्नग फटान जुत मुकुट विराजै जटा जूटन के जूरे को । देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ पैये फल चार फूल एक दै धतूरे को ।।

३३

आँनद के कन्द जग ज्यावत जगत बन्द्य दसरथ नन्द के निबाहेई निबहिये । कहै पद्माकर पवित्र पन पालिबे को और चक्रपानि के चरित्रन को चहिये । अवध बिहारी के बिनोदन में बीँधि बीँधि गीधा गुह गीधे के गुनानुवाद गहिये । रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ।।

३४

हानि अरु लाभ ज्यान जीवन अजीवनहूँ भोगहू वियोग हू सँयोगहू अपार है । कहै पद्माकर इते पै और केते कहीं

तिनको लख्यो न बेदहू में निरधार है ॥ जानियत याते रघु-राय की कला को कहूँ काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है। कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर कौन जाने कौन को कहा धों होनहार है ॥

३५

ब्याधहूँ ते बिहद असाधु हौं अजामिललौं ग्राह तें गुनाही कहौ तिनमें गिनाओगे। स्योरी हैां न सूद्र हैां न केवट कहूँ को त्यों न गौतमी तियाहैां जापै पग धरि आओगे ॥ रामसों कहत पदमाकर पुकारि तुम मेरे महा पापन को पारहूँ न पाओगे। झूठोही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी हैां तो साँचोहूँ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे ॥

लल्लूजी लाल

लल्लू जी लाल गुजराती ब्राह्मण, आगरे में रहते थे। ये सं० १८६०में वर्तमान थे। कुछ दिनों तक ये कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में नौकर थे, वहीं इन्होंने ब्रजभाषा मिश्रित वर्तमान बोलचाल की भाषा में भागवत दशम स्कंध की कथा के आधार पर प्रेमसागर नामक एक ग्रन्थ लिखा। कथा गद्य में है। कहीं कहीं हिन्दी के कुछ दोहे चौपाइयाँ भी हैं। वर्तमान गद्य के जन्मदाता येही कहे जाते हैं। प्रेमसागर के सिवाय इनके रचे हुये निम्नलिखित ग्रंथ हैं—लतायफ हिन्दी, भाषा हितोपदेश, सभा विलास, माधव विलास, सतसई की टीका, भाषा व्याकरण, मसादिरे भाषा, सिंहासन

बत्तीसी, बैताल पचीसी, माधवानल और शकुंतला। इनके रचे पद्यों के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

चूक कछू बालक सों परै साधु न कबहूँ मन मैं धरैं।
घट घट माहिँ ज्योति ह्वै रहै ताही सों जग निर्गुण कहै॥
आपहि सिरजै आपहि हरै रहै मिल्यो बाँध्यो नहिं परै।
भू आकाश वायु जल जोति पंचतत्त्व ते देह जो होति॥
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै वेद माहिँ विधि ऐसे कहै।
सहसबाहु अति बली बखान्यो परशुराम ताको बल मान्यो॥
बेणु रूप रावण हो भयो गर्व आपने सोऊ गयो।
भौमासुर बाणासुर कंस भये गर्व ते ते विध्वंस॥
श्रीमद गर्व करो जिन कोय त्यागे गर्व सो निर्भय होय।
सुनौ मुनीस सोई बड़ भागी जो सुर धेनु विप्र अनुरागी।
जा घर चरन साधु के परैं ते नर सुख सम्पति अनुसरैं॥

याचक कहा न माँगई दाता कहा न देय।
गृहसुत सुंदरिलोभ नहिँ तन धन दे यस लेय॥

जयसिंह

जयसिंह रीवाँ के महाराज थे। इनका जन्म सं० १८२१ में हुआ। १८६१ तक इन्होंने राज्य किया। अपने जीवन काल में ही इन्हों ने राज्याधिकार अपने पुत्र विश्वनाथसिंह को सौंप दिया था। ये लगभग १०० वर्ष तक जीवित रहे।

जयसिंह बड़े भक्त और सच्चे वैष्णव थे; यह इनकी रचना से अच्छी तरह बोध होता है। इन्हों ने १८ ग्रंथों की रचना की थी। उनमें से कुछ के नाम ये हैं:—कृष्ण तरंगिणी, हरे

चरितामृत, श्रय वेदान्त प्रकाश, निर्णय सिद्धान्त, गंगा लहरी, हरि चरित्र चंद्रिका। इनकी रचना सरस और अलंकार पूर्ण होती थी। इनके ग्रंथों में हरि चरित्र चंद्रिका इस समय हमारे सामने है। हम उसी में से कुछ छंद उद्धृत करके पाठकों के सामने रखते हैं—

वर्षा गई सरद ऋतु आई नवल वधू सम सुखद सोहाई
कमल बदन खञ्जन चख छाजै सुरँग सुमन बर बसन बिराजै
कल मराल नव नूपुर बाजत सुनि मुनिमानसमानविभाजत
फूली काँस सु दुति धरि धाई पतिव्रता कीरति जिमि पाई
बरसर लसहिँ सरोरुह फूले सुकृती भूप प्रजागन तूले
महिजलसूखो प्रगटी महि इमि नसतपखंडलसतश्रुतिपथजिमि
सरिसर जलइमिनिर्मलछाजत जिमि तजिविषयविरागीराजत

ककुभकुटजआदिक बिना बिलसे कुसुम निकाय।
जिमिखलमदमथिनृपनगर राख्यो सुजन बसाय॥

जल बिनजलद सेतछवि छाजत सबधन दै जिमि दाता राजत
निर्मल भयौ गगन घन फूटे जिमि हिय विषयबासना छूटे
लसत इंदु उड़गन मिलि ऐसो नृप नय निपुन प्रजाजुत जैसो
परसि चांदनी यौं छिति सोही सतीसोसौति पाइ जिमि जोही
जन मन रञ्जन खञ्जन कैसे पूरब पुण्य समय फल जैसे
जलचरनितजलघटतन जानहिँ आयुकमतजिमिजननहिँमानहिँ
रवि संताप शरद शशि नाशत मोह नशतजिमि ज्ञान प्रकाशत
छनछबिछबि नहिंगगनप्रकासै तोषित हिय जिमितृष्णा नासै

परसि कमल कुबलय बहत वायु ताप नसि जाइ।
सुनत बात हरि गुननि जुत जिमि जन पाप पराइ॥

कहुँ कहुँ बँधुक सुमन सोहाये जनु अनुरागी जन मन भाये
मदन मराल मिलो तजि मोरनि अलिराजिचित्र कुसुमजनिकोलनि

बाल मराल मंजु धुनि करहीं साम वेद मुनिवर उच्चरहीं
प्रफुलित उपवन जूही जातीं मनु नभ उडु पाँती दरसातीं
बन समीप सुर धनुन देखाहीं जिमि न सुजनढिगदुर्जनजाहीं
अभ्र नदी घटि चली बनाई जिमि खल विभव नसे नै जाई
सूखी कीच महीतल माहीं ज्यों सतहिय कामादि सुखाहीं
पूरण अन्न सहित छिति छाजै जिमि धनयुत दाता मति राजै
बन वाटिका उपवन मनोहर फूल फलसें तरु मूलसे।
सर सरित कमल कलाप कुबलय कुमुद बन बिकसे गँसे॥
सुखलहत यों फल चखत मधु पीयत मधुप सो नीति सें।
मनु मगन ब्रह्मानंदरस जोगीस मुनि गन प्रीति सें॥

कूजि रहे खग कुल मधुप गुंजि रहे चहुँ ओर।
तेहि बन शिशु गोगन सकल प्रविशे नंदकिशोर॥

रामसहायदास

रामसहायदास के पिता का नाम भवानीदास था। इनका जन्म और मरण किस संवत् में हुआ, इसका अभी तक कुछ पता नहीं चला है। भारतजीवन प्रेस, काशी में इनका एक ग्रन्थ "शृंगार सतसई" नाम से छपा है। वह प्रकाशक को सं० १८९२ का हस्तलिखित मिला था। इनका कविता काल संवत् १८७७ माना जाता है। इन्होंने अपने विषय में अपने पिता के नाम के सिवाय और कुछ नहीं लिखा। शृंगारसतसई के सिवाय वृत्त तरंगिनी, ककहरा, राम सप्तसतिका, और वाणी भूषण नामक ग्रन्थ भी राम सहायदास के रचे हुये सुने जाते हैं।

शृंगार सतसई में सात सौ दोहे बिहारी सतसई के टक्कर के हैं। वास्तव में ये बिहारी के दोहों को लक्ष्य करके बनाये गये मालूम होते हैं।

शृंगार सतसई से यहाँ कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं:—

सतरोहैं मुख रुख किये कहै रुखौहैं बैन।
सैन जगे के नैन ये सने सनेहु दुरै न॥ १॥
खंजन कंज न सरि लहैं बलि अलि को न बखानि।
एनी की अँखियान तें ए नीकी अँखियानि॥ २॥
गुलुफनि लौं ज्यों त्यों गयो करि करि साहस जोर।
फिरि न फिर्‌यो मुरवानि चपि चित अति खात मरोर॥ ३॥
पेखि चन्द चूड़हि अली रही भली विधि सेइ।
खिन खिन खोटति नखन छद न खनहुँ सूखन देइ॥ ४॥
सीस झरोखे डारि कै झाँकी घूँघुट टारि।
कैबर सी कसकै हिये बाँकी चितवनि नारि॥ ५॥
बेलि कमान प्रसून सर गहि कमनैत बसंत।
मारि मारि बिरहीन के प्रान करैरी अंत॥ ६॥
मनरंजन तव नाम को कहत निरंजन लोग।
जदपि अधर अंजन लगे तदपि न नीदन जोग॥ ७॥
सखि सँग जाति हुती सुती भटभेरो भो जानि।
सतरौंहीं भौंहन करी बतरौंहीं अँखियानि॥ ८॥
भौंह उँचै अँखिया नचै चाहि कुचै सकुचाय।
दरपन मैं मुख लखि खरी दरप भरी मुसुकाय॥ ९॥
ल्याई लाल निहारिये यह सुकुमारि बिभाति।
उचके कुचके भार तें लचकिलचकिकटिजाति॥१०॥

ग्वाल

ग्वाल बन्दीजन सेवाराम के पुत्र थे, और मथुरा में रहते थे। इनके जन्म मरण का ठीक ठीक समय का अभी तक पता नहीं चला। सं० १८७९ में इन्होंने यमुना लहरी बनाई। यह पद्माकर कृत गंगा लहरी के जोड़ की है। इनके रचे हुये और भी निम्न लिखित ग्रन्थ सुने जाते हैं :—

नख शिख, गोपीपचीसी, साहित्य दूषण, साहित्य दर्पण, भक्ति भाव, शृंगार दोहा, शृंगार कवित्त, रस रङ्ग, अलंकार, हमीर हठ, कवि हृदय विनोद, रसिकानन्द, राधा-माधव मिलन और राधाष्टक।

प्रयाग के भारती भवन में मैंने इनके दो ग्रन्थ, यमुना लहरी और कवि हृदय विनोद देखे हैं।

इनकी कविता चमत्कार पूर्ण होती थी। कवि हृदय विनोद से मालूम होता है कि इन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था, जिसे देशाटन द्वारा इन्होंने प्राप्त किया होगा।

यहाँ इनकी कविता के कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं :—

गीधे गीध तारि कै सुतारि कै उतारि कै जू धारि कै हिये मैं निज बात जटि जायगी। तारि कै अवधि करी अवधि सुतारिबे की चिपति विदारिबे की फाँस कटि जायगी॥ ग्वाल कवि सहज न तारिबो हमारो गिनो कठिन परैगी पाप पाँति पटि जायगी। यातें जो न तारिहौ तुम्हारी सौंह रघु-नाथ अधम उधारिबे की साख घटि जायगी॥ १॥

राम घनश्याम के न नाम तें उचारे कभूँ काम वश ह्वै

कै बांम गरे बाँह डाली है। एक एक स्वाँस ये अमोल कढ़े जात हाय लोल चित यहै ढोल फेरत उताली है॥ ग्वाल कवि कहै तू विचारै बर्ष बढ़े मेरे एरे! घटे छिन छिन आयु की बहाली है। जैसे धार दोखत फुहारे की बढ़त आछे पाछे जल घटे हौज होत आवे खाली है॥ २॥

पूर्वी भाषा

मोरपखा सिर ऊपर सोहै अधर बसुरिया राजत बाय।
गाय बजाय नचावे अँखियन करिया कमरी साजत बाय॥
ग्वाल लिये सँगघाट बाट में छुरा छूइ मोर भाजत बाय।
हाय ननदिया का करिहैं मैं कहत बात जिय लाजत बाय॥३॥

गुजराती भाषा

तुम तौ कहो छो छैया मोटो ऊधमी छै म्हारी मटकी मठानी दुरकावा नो निदान छै। सो तो म्हने जानयूँ तमें सगली जु भाषों झूँठ दीधी म्हने सीख मस्ती मोटी पहचान छै॥ ग्वाल कवि साने एवा चरित रचो छौ तमे सगली थई छौ गेली अड़का मा आन छै। घेर माँ रमे छै हवणाँ तौ दीकरान माहैं तमतें सूँ दोस मोकलावा वाला जान छै॥४॥

पंजाबी भाषा

जेड़ी थ्वांड़े चित्त विच्च भाँउदी है आँउदी है ओहो तुसाँ करणाधिगाप्पे कानू कस्स दे। साडी खुशी ये हो आप आराँ दी खुशी दे बिच्च जेही चाहो तेही करो नेही कानू नस्स दे॥ ग्वाल कवि होऊ करमाँ दा लिख्या लेख जेडा साडी बल्लु नैना नू पियारे रख्यो हंस्स दे। छलुरल्ली गल्लाँ थ्वाँडी सोहणी नहूँ दी श्याम सिक्खी गल्लु साड्डे नाल क्यूँकर न दस्स दे॥५॥

षट् ऋतु वर्णन

सरसों के खेत की बिछायत बसंती बनी तामें खड़ी चाँदनी बसंती रति कंत की। सोने के पलंग पर बसन बसंती साज सोनजुही माले हाले हिय हुलसंत की॥ ग्वाल कवि प्यारो पुखराजन को प्याला पूर प्यावत प्रिया को करै बात बिलसंत की। राग मैं बसंत बाग बाग मैं बसंत फूल्यो लाग मै बसंत क्या बहार है बसंत की॥ ६॥

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम गरमी झुकी है जाम जाम अति तापिनी। भीजे खस बीजन झले हूँ ना सुखात स्वेद गात ना सुहात बात दावा सी डरापिनी॥ ग्वाल कवि कहै कोरे कुंभन तें कूपन तें लै लै जलधार बार बार मुख थापिनी। जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब पीवत हू पीवत मिटै न प्यास पापिनी॥ ७॥

जेठ को न त्रास जाके पास ये बिलास होंये खस के मवास पै गुलाब उछस्यो करै। बिही के मुरब्बे डब्बे चाँदी के वरक भरे पेठे पाग केवरे में बरफ परयो करै॥ ग्वाल कवि चन्दन चहल मैं कपूर चूर चंदन अतर तर बसन खस्यो करै। कंज मुखी कंज नैनी कंज के बिछौनन पै कंजन की पंखी कर कंज तें कस्यो करै॥ ८॥

तरल तिलंगन के तुंग तेह तेजदार कानन कदंब को कदंब सरसायो है। सूबेदार मोर घोर दादुर हवलदार बग जमादार औ तंबूर पिक भायो है॥ ग्वाल कवि बाढ़ै गरराट घन घट्टन की कंपनी को कंपू झला होय छवि छायो है। भूपत उमंगी कामदेव जोर जंगी जान मुजरा को पावस फिरंगी बनि आयो है॥ ६॥

मोरन के सोरन की नेकौ न मरोर रही घोरहूँ रही न घन घने या फरद की। अंबर अमल सर सरिता विमल भल पंक को न अंक औ न उड़नि गरद की॥ ग्वाल कवि चित मैं चकोरन के चैन भये पंथिन की दूर भई दूखन दरद की॥ जल पर थल पर महल अचल पर चाँदी सी चमकि रही चाँदनी सरद की॥ १०॥

भर भर भाँपैं बड़े दर दर ढाँपैं नापैं तऊ काँपैं था थर बाजत बतीसी जाइ। फेर पसमीनन के चौहरे गलीचन पै सेज मखमली सौरि सोऊ सरदी सी जाइ॥ ग्वाल कवि कहैं मृगमद के धुकाये धूम ओढ़ि ओढ़ि छार भार आगहू छपीसो जाइ। छाकै सुरा सीसीहू न सीसी पै मिटैगी कभू जौलौं उकसीसी छाती छाती सों न मीसी जाइ॥ ११॥

ईरषा की सैन लिये कलिजुग भूप आयो झूँठ के नगारे सो बजत दिनरात हैं। काम क्रोध लोभ मोह तेग तीर धनु नेजा अदया अखंड तोप चंड घहरात हैं॥ ग्वाल कवि गब्बर गसीले गोल गोला चलै टोला कूर बचनों के पूर लहरात हैं। हूजियो हुस्यार यार साँच के मवासे माँहिँ पाप की पताका आसमान फहरात है॥ १२॥

देखो कलिजू के राजनीति को तमासो यह बासो कियो आय हर एक की अकल पै। खानदान वारे पानदान लिये दौरत हैं तान गान वारे बैठे जोवत महल पै॥ ग्वाल कवि कहैं चारु चतुरन को चैन है न ऐस में रहत लैस कूर चढ़े बल पै। मलमल धारें जे वै धूर रहे मल मल मल खानवारे सोवैं सेज मखमल पै॥ १३॥

जाकी खूब खूबी खूब खूबन कै खूबी इहाँ ताकी खूब खूबी खूब खूबी नभ गाहना। जाकी बदजाती बदजाती इहाँ चारन

मैं ताकी बदजाती बदजाती हाँ उराहना ॥ ग्वाल कवि ये ही परसिद्ध सिद्ध ते हैं जग वही परसिद्ध ताकी इहाँ हाँ सराहना। जाकी इहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना है जाकी इहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना ॥ १४ ॥

चाहिये जरूर इनसानियत मानस कौ नौबत बजे पै फेर भेर बजनो कहा। जात औ अजात कहा हिन्दू औ मुसलमान जाते कियो नेह फेर ताते भजनो कहा ॥ ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै बुराई लई लाजहू गमाई कहो फेर लजनो कहा। यातो रँग काहू के न रँगिये सुजान प्यारे रँगे तो रँगेई रहै फेर तजबो कहा ॥ १५ ॥

जिसका जितेक साल भर में खरच तिसे चाहिये तौ दूना पै सवायो तो कमा रहै। हूर या परी सी नूर नाजनी सहूर वारी हाजिर हमेश होय तौ दिल थमा रहै ॥ ग्वाल कवि साहब कमाल इल्म सोहबत हो याद में गुसैयाँ के हमेस विरमा रहे। खाने को हमा रहै न काहू की तमा रहै जो गाँठ में जमा रहै तो खातिर जमा रहै ॥ १६ ॥

गंगा के न गौरि के गिरीस के न गोविंद के गीत के न जोत के न जाये राहगीर के। काहू के न संगी रतिरंगी भैन भानजी के जी के अति खोटे सोंटे खैहैं जमवीर के ॥ ग्वाल कवि कहैं देखो नारी को खसम जानै धर्म को पसम जानैं पातक शरीर के। निमक हराम बदकाम करैं ताजे ताजे बाजे बाजे बेसहूर गुरू के न पीर के ॥ १७ ॥

किये हैं करार सो बिसार दये दगादार नंद के कुमार संग को सँजोगिनी बनै। कौन मुख लैके तोहि ऊधव पठायौ इहाँ कैसे कही वाने हाय लंक लोगिनी बनै ॥ ग्वाल कवि यातें एक बात तूँ हमारी सुन चुनि कै कही है यह तोय जोगिनी

बनै । कूबरी को कूब काटि लाय दै सिताबी हमैं टोपी करि ताकी तब गोपी जोगिनी बनैं ॥ १८ ॥

सुंदर सरस सूहे सोसनी गुलाबी पीरे नाफर नरंगी आबी तूली सजि लायो है । मूँगिया सबज काही कासनी सुनहेरी सेत संदली सरबती औ नील दरसायो है॥ अगरई किसमिसी जोजई कपूरी स्याह तीजन कूँ वाम हेत कामवर छायो है । चतुर प्रवीन सखी अचरज भयो आज सावन मैं इन्द्र रँगरेज बनि आयो है ॥ १६ ॥

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि खाव पिओ देव लेव यही रह जाना है । राजा राव उमराव केते बादशाह भये कहाँ तें कहाँ को गयो लाग्यो ना ठिकाना है ॥ ऐसी जिन्दगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है। आये परवाना पर चले ना बहाना इहाँ नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है ॥ २० ॥

दीनदयाल गिरि

बाबा दीनदयाल काशी के पश्चिम द्वार पर विनायकदेव के पास रहते थे । इन्होंने सं० १८८८ में अनुराग बाग नामक ग्रंथ की रचना की। इनके जन्म-मरण, माता पिता आदि का कुछ हाल हमें मालूम नहीं है। नागरी प्रचारिणी ग्रंथमाला में इनकी ग्रंथावली निकल रही है । इनके रचे तीन ग्रंथ हमारे देखने में आये हैं—अनुराग बाग, दृष्टान्त तरंगिणी और अन्योक्ति कल्पद्रुम । ये अच्छे कवि थे । इनकी

कविता भक्ति और उपदेश से पूर्ण है । सुना जाता है कि विश्वनाथ नवरत्न, चकोर पंचक, दृष्टान्त तरंगिणी, काशी पंचरत्न, वैराग्य दिनेश, दीपक पंचक और अन्तर्लापिका नामक ग्रंथ भी इन्हीं के रचे हैं । इनकी कविता के कुछ छंद उदाहरणार्थ नीचे लिखे जाते हैं :—

जा मन होय मलीन सो पर संपदा सहै न ।
होत दुखी चित चोर को चितै चंद रुचि रैन ॥ १ ॥
तूठे जाके फल नहीं रूठे बहु भय होय ।
सेव जु ऐसे नृपति को अति दुरमति ते लोय ॥ २ ॥
बहु छुद्रन के मिलन तें हानि बली की नाहिँ ।
जूथ जम्बुकन तें नहीं केहरि कहुँ नसि जाहिँ ॥ ३ ॥
पराधीनता दुख महा सुख जग मैं स्वाधीन ।
सुखी रमत सुक बन विषे कनक पींजरे दीन ॥ ४ ॥
तहाँ नहीं कछु भय जहाँ अपनी जाति न पास ।
काठ बिना न कुठार कहुँ तरु को करत बिनास ॥ ५ ॥
नहीं रूप कछु रूप है विद्या रूप निधान ।
अधिक पूजियत रूप ते बिना रूप विद्वान ॥ ६ ॥
सरल सरल तें होय हित नहीं सरल अरु बंक ।
ज्यों सर सूधहि कुटिल धनु डारै दूर निसंक ॥ ७ ॥
केहरि को अभिषेक कब कीन्हों विप्र समाज ।
निज भुज बल के तेज तें विपिन भयो मृगराज ॥ ८ ॥
इक बाहर इक भीतरैं इक मृदु दुहु दिसि पूर ।
सोहत नर जग त्रिविधि ज्यों बेर बदाम अँगूर ॥ ६ ॥
बचन तजैं नहिँ सत पुरुष तजै प्रान बरु देस ।
प्रान पुत्र दुहुँ परिहस्यो बचन हेत अवधेस ॥ १० ॥

कुंडलियाँ

जिन तरु को परिमल परसि लियो सुजस सब ठाम।
तिन भंजन करि आपनो कियो प्रभंजन नाम ॥
कियो प्रभंजन नाम बड़ो कृतघन बरजोरी।
जब जब लगी दवागि दियो तब झोंकि झकोरी ॥
बरनै दीनदयाल सेउ अब खल थल मरु को।
ले सुख सीतल छाँह तासु तोरयो जिन तरु को ॥१॥

केतो सोम कला करो करो सुधा को दान।
नहीं चन्द्रमनि जो द्रवै यह तेलिया पखान ॥
यह तेलिया पखान बड़ी कठिनाई जाकी।
टूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी ॥
बरनै दीनदयाल चंद तुमही चित चेतो।
कूर न कोमल होहिं कला जो कीजे केतो ॥ २ ॥

बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माँहिं।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहै नाहिं ॥
अंकुर जमिहै नाहिं बरष शत जो जल दैहै।
गरजै तरजै कहा वृथा तेरो श्रम जैहै ॥
बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना बलाहक ह्याँ तू बरखै ॥ ३ ॥

भौंरा अंत बसंत के है गुलाब इहि राग।
फिरि मिलाप अति कठिन है या बन लगे दवागि ॥
या बन लगे दवागि नहीं यह फूल लहैगो।
ठौरहि ठौर भ्रमात बड़ो दुख तात सहैगो ॥
बरनै दीनदयाल किते दिन फिरिहै दौरा।
पछतैहै कर दये गये ऋतु पीछे भौंरा ॥ ४ ॥

रंभा झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गये अरु ह्वै हैं यहि खेत॥
अरु ह्वै है यहि खेत मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै दीठि तुम पै प्रति दीने।
बरनै दीनदयाल हमैं लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रंभा॥५॥

नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार की बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीली डार होहिगी ग्रीषम आये।
लुवै चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताये॥
बरनै दीनदयाल फूल जौलों तो पाहीं।
रहे घेरि चहुँ फेरि फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥६॥

टूटे नख रद केहरी वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइ कै यह दुख दियो बढ़ाय॥
यह दुख दियो बढ़ाय चहूँ दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि स्वतंत्र करैं सब राजैं॥
बरनै दीनदयाल हरिन बिहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज आज नख रद के टूटे॥७॥

पैहौ कीरति जगत में पीछे धरो न पाँव।
छत्री कुल के तिलक हे महा समर या ठाँव॥
महा समर या ठाँव चलै सर कुन्त कृपानैं।
रहे वीर गण गाजि पीर उर मैं नहिं आनैं॥
बरनै दीनदयाल हरखि जौ तेग चलैहो।
ह्वै ही जीते जसी मरे सुरलोकहि पैहो॥८॥

भारी भार भरो बनिक तरिबो सिंधु अपार।
तरी जरजरी फँसि परी खेवनहार गँवार॥

खेवनहार गँवार ताहि पर पौन झँकोरै।
रुकी भँवर में आय उपाय चलै न करोरै॥
बरनै दीनदयाल सुमिर अब तू गिरधारी।
आरत जन के काज कला जिन निज सँभारी॥९॥

आछी भाँति सुधारि कै खेत किसान बिजोय।
नत पीछे पछतायगो समै गयो जब खोय॥
समै गयो जब खोय नहीं फिरि खेती ह्वै है।
लै है हाकिम पोत कहा तब ताको दैहै॥
बरनै दीनदयाल चाल तजि तू अब पाछी।
सोउ न सालि सँभालि बिहंगन तें विधि आछी॥१०॥

सोई देस बिचारि कै चलिये पथी सुचेत।
जाके जस आनन्द की कविवर उपमा देत॥
कविवर उपमा देत रङ्क भूपति सम जामे।
आवा गवन न होय रहै मुद मङ्गल तामे॥
बरनै दीनदयाल जहाँ दुख सोक न होई।
ए हो पथी प्रोवन देस को जैयो सोई॥ ११॥

कोई सङ्गी नहि उतै है इतही को सङ्ग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते सब सों सहित उमङ्ग॥
सबसों सहित उमङ्ग बैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव सँयोग फेरि यह मिलिहै नाहीं॥
बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल पथी जैहैं सब कोई॥ १२॥

ग्राहैं प्रबल अगाध जल या में तीछन धार।
पथी पार जो तू चहै खेवनहार पुकार॥
खेवनहार पुकार वार नहिँ कोऊ साथी।
और न चलै उपाव नाव बिन पहो पाथी॥

बरनै दीन दयाल नहीं अब बूड़ै थाहैं।
रहे महामुख बाय ग्रसन को भारी ग्राहैं ॥ १३ ॥
राही सोवत इत किते चोर लगें चहुँ पास।
तो निज धनके लेन को गिनैं नीद की स्वास॥
गिनैं नींद की स्वास बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत माल ये साँझ सबेरे॥
बरनै दीनदयाल न चीन्हत है तू ताही।
जाग जाग रे जाग इतै कित सोवत राही ॥ १४ ॥
हारे भूली गैल में गे अति पाय पिराय।
सुनो पथी अब तो रह्यो थोरो सो दिन आय॥
थोरो सो दिन आय रहे हैं संग न साथी।
या बन हैं चहुँ ओर घोर मतवारे हाथी॥
बरनै दीनदयाल ग्राम सामीप तिहारे।
सूधे पथ को जाहु भूलि भरमो कित हारे ॥ १५ ॥
चारो दिसि सूझै नहीं यह नद धार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु खेवनहार गँवार॥
खेवनहार गँवार ताहि पर है मतवारो।
लिये भौंर में जाय जहाँ जलजंतु अखारो॥
बरनै दीनदयाल पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुबीर नाम धरि धीर उचारो ॥ १६ ॥

विश्वनाथ सिंह

रीवाँ नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह महाराजा जयसिंह के पुत्र और महाराजा रघुराजसिंह के पिता थे। इनका जन्म सं० १८४६ में हुआ, ये सं० १८९१ में गद्दी पर बैठे और सं०

१९११ तक राज करते रहे। ये अच्छे कवि थे और सुकवियों का अच्छा सतकार भी करते थे। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है—

अष्टयाम का आन्हिक, आनन्द रघुनन्दन नाटक, उत्तम काव्य प्रकाश, गीता रघुनन्दन शतिका, रामायण, गीता रघुनन्दन प्रमाणिक, सर्वसंग्रह, कबीरा के बीजक की टीका, विनय पत्रिका की टीका, रामचन्द्र की सवारी, भजन, पदार्थ, धनुर्विद्या, परानीय तत्व प्रकाश, आनन्द रामायण, परम धर्म निर्णय, शांति शतक, वेदान्त पंचक शतिका, गीतावली पूर्वार्द्ध, ध्रुवाष्टक, उत्तम नीति चन्द्रिका, अवाध नीति, पाखंड खंडिनी, आदि मंगल, बसन्त चौंतीसो, चौरासी रमैनी, ककहरा, शब्द, विश्व भोजन प्रसाद, परमतत्व, संगीत रघुनन्दन, गीता रघुनन्दन, तत्वमस्य सिद्धान्त भाषा, ध्यान मंजरी, विश्वनाथ प्रकाश। संस्कृत में——राधावल्लभी भाष्य, सर्व सिद्धान्त, आनन्द रघुनन्दन (दूसरा), दीक्षा निर्णय, भुक्ति ।मुक्ति सदानन्द संदोह, रामचन्द्रान्हिक सतिलक, राम परत्व, धनुर्विद्या, संगीत रघुनन्दन, (दूसरा)।

नमूने के रूप में इनका ध्रुवाष्टक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

जो बिन कामहि चाकर राखत ऐन अनेक वृथा बनवावै।
आमद ते अधिको करै ख़र्च रिनै करि ब्यौहरै ब्याज बढ़ावै॥
बूझत लेखा नहीं कछुऐ नहिं नीति की रीति प्रजानि चलावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै यहि भूपति के घर दारिद आवै॥१॥
निश्चय धर्म विचार भयो दबि भाइन भृत्यनि नाहिं चलावै।
मंत्रिय आदि सुलच्छन हीन औ आलसी होय सलाह बतावै॥
मानि सँकोच करै व्यवहार वृथाही इनाम की रीति बढ़ावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै यह भूपति ना कबहूँ कल पावै॥२॥

नारिन की जु सलाह करै अरु भाइन मंत्री स्वतंत्र बनावै।
बैर के चाकर राखे रहै और अधर्म की राह सदा मन लावै॥
मंत्री कह्यो हित मानै नहीं अरु साह को सासन नाम न आवै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै कछु काल में भूप सुराज गँवावै॥३॥

झूठी सुनै तहक़ीक़ करै नहि ओछेन संगति में मन लावै।
रीझ पचाय डरै रन को बिसना जु अठारहौ खूब बढ़ावै॥
ठट्ठा में प्रीति कुपात्र में दान कबीन हुँ जान गुमान जनावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै अस भूपति ना कबहूँ जस पावै॥४॥

चाकर दै धन बाँचे जोई अठयों तिहिं भागहि धर्म लगावै।
साह लिये धरै सातयौं भाग छठे सुता ब्याह हितै रखवावै॥
पाँचए बित्त बढ़ै धरि चोथ्यहि तीन ते ख़र्च करै छ बढ़ावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै तेहि भूपति भौन न दारिद आवै॥५॥

भाइन भृत्यन विष्णु सो रैयत भानु सो सत्रुन काल सो भावै।
सत्रु बली से बचै करि बुद्धि औ अस्त्रसोँ धर्महि नीति चलावै॥
जीतन को करै केते उपाय औ दीरघ दृष्टि सबै फल पावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै नृप सो कबहूँ नहिँ राज गँवावै॥६॥

होय नहीं कबहूँ बस काहु समै सब में निज भाव जनावै।
राखै रहैं हुकुमैं सब पै कहुँ मित्र बनाय न तेज गँवावै॥
साम औ दाम औ दंड औ भेद की रीति करै जु सबै मन भावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै कला-षोड़सौ भूपति राज बढ़ावै॥७॥

जो हरिआह्निक में मन लाय करै नृप आह्निकहू स्मृति भावै।
मानै अहै प्रभु को सब है प्रभु रूप सबै निज किंकर भावै॥
देह ते आपुहि भिन्न गनै करि सासन भक्ति प्रजान चलावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै दोउ लोक मैं भूपति सो सुख पावै॥८॥

राय ईश्वरी प्रताप नारायण राय

राय ईश्वरी प्रताप नारायण रायजी का जन्म सं० १८५६ में गोरखपुर जिले के पड़रौना राजवंश में हुआ। हिन्दी, संस्कृत और फारसी में इनकी अच्छी गति थी। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के शिष्य थे। राधाकृष्ण के बड़े प्रेमी उपासक थे। पड़रौना में इनके बनवाये हुये बहुत सुन्दर मंदिर, बाग और तालाब हैं। ये बड़े उदार, दानी, भगवद्भक्त और सुविचारवान थे। २२ वर्ष की अवस्था से ही कविता-रचना का इनको चसका लग गया था। राजा होकर, राज काज के झंझटों में फँसे रह कर भी इन्होंने बड़े मनोयोग से सुन्दर कविता की है, यह इनकी प्रकृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है। इनका सं० १९२५ में देहान्त हुआ।

इन्होंने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में कविता की है। कहीं कहीं पंजाबी की भी झलक आ गई है। इनके रचे हुये कई ग्रंथ कहे जाते हैं। अभी केवल एक ग्रंथ "रहस्य-काव्य-शृंगार" वर्तमान पड़रौना नरेश राजा ब्रजनारायण रायजी ने प्रकाशित किया है। आशा है, शेष ग्रंथ भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँगे।

इनकी कविता सरस और मनोहर है। ये गान विद्या में भी बड़े प्रवीण थे। इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

मोह को जाल पसार चहूँ दिसि संतत खेलत काल अहेरो।
भाग तू मोह मया तजि मूरख काहू को तू न कोऊ कहुँ तेरो॥
नस्वर या तन को समबंध प्रताप छुटै छिन साम सवेरो।
छोड़ि सबै भ्रम जाल निरंतर जीवन में बस हे मन मेरो॥१॥

कोई कहै आन कोई आपहि भगवान बनै कोई कहै दूरि कोई नेरेही लखाव रे। कोई कहै रूप औ अरूपवान कोई कहै कोई कहै निर्गुन कोई सगुन बताव रे॥ तामें मति भरमै औ भूलि के न बाद ठान ताहिं क्या बिरानी पड़ी अपनी सुरझाव रे। अदभुत प्रताप मूरि जीवन है रसिकन की सदा रसिक भक्तन के सरन रहु बावरे॥ २॥

राग सोरठ मलार

तो बिन को यह नेह निबाहै।
ऐसी हित प्रतिपालन हारो तू ही एक सदा है।
हँसे हँसत बोले बोलत हँसि मिले मिलन को उमाहै॥
जोइ जोइ चाह प्रताप करत चित सोइ सोइ राज तू चाहैगा॥३॥

राग धमार

बेसर थिरकि रही अधरन पै मोती थिरकत जात।
लखि प्रताप पिचकारी लाल जी के रहि गई हाथ कि हाथ॥४॥

पजनेस

पजनेस का जन्म पन्ना में हुआ। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-संवत् १८७२ लिखा है। इनका रचा हुआ कोई ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इनके कुछ छंदों का एक संग्रह "पजनेस प्रकाश" नाम से प्रकाशित किया था। उसके देखने से पजनेस एक प्रतिभाशाली कवि जान पड़ते हैं। ये शृंगारी कवि थे। इनकी कविता में कहीं कहीं अश्लील वर्णन भी आ

गया है। इनकी कविता से जान पड़ता है कि ये संस्कृत और फ़ारसी के भी ज्ञाता थे।

इनका रचा एक हस्तलिखित काव्य-ग्रंथ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन के पास है। उसके प्रकाशित होने पर इनकी प्रतिभा का अधिक प्रकाश प्रकट होगा।

यहाँ हम इनकी कविता के कुछ उदाहरण उपस्थित करते हैं:—

छहरै छबीली छटा छूटि छितिमण्डल पै
उमग उजेरो महा ओज उजबक सी।
कवि पजनेस कंज मंजुल मुखी के गात
उपमाधिकात कल कुन्दन तबक सी॥
फैली दीप दीप दीप दीपति दिपति जाकी
दीपमालिका की रही दीपति दबक सी।
परत न ताब लखि मुख महताब
जब निकसो सिताब आफताब के भभकसी॥१॥

नवला सरूप रूप रावरे रुचिर रूप
रचना बिरंचि कीनी सकुच न लागी है।
भन पजनेस लोल लोयन को लौकों गोल
गुलफ गोराई लाज सकुचन लागी है॥
सुन्दर सुजान सुखदान प्रीति प्रीतम की
एकौ ना परेख अब सकुचन लागी है।
औचक उचन लागी कंचुकी रुचन लागी
सकुचन लागी आली सकुचन लागी है॥ २॥

कवि पजनेस केलि मधुप निकेत नव
दर मुख दिव्य घरी घटिका लटीकी है।
चिबु पर बेष चक्र चक्र रविरथ चक्र
गोमती के चक्र चक्रताकृत घटीकी है॥
नीवी तट त्रिबली बली पै दुति कोसतुएड
कुंडली कलित लोमलतिका बुटीकी है।
उपटीकी टीकी प्रभाटीकी बधूटी की
नाभिटीकी धुर्जटी की भ्रौकुटी की सम्पुटीकी है॥३॥

संपुट सरोज कैधों सोभा के सरोवर में
लसत सिंगार के निसान अधिकारी के।
कवि पजनेस लोल चित्त बित्त चोरिबे को
चोर इकठौर नारि ग्रीव वरकारी के॥
मन्दिर मनोज के ललित कुम्भ कंचन के
कलित फलित कैधों श्रीफल बिहारी के।
उरज उठौना चक्रवाकन के छौना
कैधों मदन खिलौना ये सलौना प्रान प्यारी के॥४॥

मानसी पूजा भई पजनेस मलेछन हीन करी ठकुराई।
रोके उदोत सबै सुर गोत बसेरन पै सिकराली बसाई॥
जानि परै न कला कछु आज की काहे सखी अजया इक ल्याई।
पोखे मराल कहो किहि कारन ऐरी भुजंगिनी क्यों पोसवाई॥५॥
पजनेस तसद्दुक़ता बिसमिल ज़ुल्फ़ फ़ुरक़त न कबूल कसे।
महबूब चुनाँ मदमस्त सनम् अज़दस्त अलावल ज़ुल्फ़ बसे॥
मज़मूये न काफ़ सफ़ाक़ रुए सम क़यामत चश्म से खूँ बरसे॥
मिज़गाँ सुरमा तहरीर दुताँ नुक़्ते बिन वे किन ते किन से॥६॥

रणधीर सिंह

जौनपुर नगर से २४ मील पश्चिम सिंगरामऊ एक गाँव है। वह एक रियासत का मुख्य स्थान है। रियासत न तो बहुत बड़ी ही है और न बहुत साधारण ही है। आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले वहाँ ठाकुर संग्रामसिंह राज करते थे। उनके पिता का नाम ठाकुर शिवबक्सराय सिंह था, जो ठाकुर संग्रामसिंह की बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गये थे। ठाकुर संग्रामसिंह का जन्म सं० १८३५ वि० में सिङ्गरामऊ में हुआ। सं० १८६० में उन्होंने काशी में शरीर त्याग किया। वे बड़े वीर थे। उन्होंने बृटिश सरकार के एक बहुत बड़े बाग़ी को स्वयं अपने बाहुबल से पकड़कर सरकार के हवाले किया था। उसके उपलक्ष्य में सरकार उन्हें बारह सौ रुपया वार्षिक दिया करती थी। ठाकुर संग्रामसिंह बड़े विद्या व्यसनी थे। वे एक अच्छे कवि थे। और गुणियों का यथोचित आदर करते थे। वेदान्त शास्त्र के वे अच्छे ज्ञाता थे। छंद लक्षण, नायका भेद, अलंकार तथा विविध विषयों की उत्तम रचनाओं से विभूषित उनका काव्यार्णव नामका काव्य-ग्रन्थ बहुत उत्तम बना है। वह की १६२१ में लेथों में छपा हुआ है।

राय रणधीरसिंह ठाकुर संग्रामसिंह के पौत्र थे। इनके पिता का नाम ठाकुर गजराजसिंह था। ठाकुर गजराज सिंह जी भी कवियों का अच्छा सत्कार करते थे, परन्तु वे स्वयं भी कविता करते थे या नहीं, यह मुझे नहीं मालूम।

राय रणधीरसिंह का जन्म सं० १८७८ वि० में हुआ।

पिता के स्वर्गवासी होने पर सं० १९१४ में उनको राज्याधिकार मिला। सन् १८५७ के विद्रोह में इन्होंने बृटिश सरकार की बड़ी सहायता की थी, उसके बदले में उनको रायबहादुर की उपाधि मिली थी।

राय रणधीर सिंह साहसी, उदार और बड़े प्रजा हितैषी थे। प्रजा को उन्होंने कभी नहीं सताया। उनकी सभा पंडितों और दूर दूर के कवियों से भरी रहती थी। कविता का उनको व्यसन था। उन्होंने पाँच ग्रन्थों की रचना की है :— १—नामार्णव, २—काव्य रत्नाकर ३—सालिहोत्र, ४—भूषण कौमुदी, ५—राग माला। उनके रचे हुये गीत उनकी रियासत में अब तक बड़े प्रेम से गाये जाते हैं। सं० १९५२ वि० में अयोध्याजी में उन्होंने शरीर त्याग किया। उनके विषय में शिवसिंह ने अपने सरोज में लिखा है—"ये राजा काव्य कोविदों का बड़ा सम्मान करते हैं। इनके बनाये हुये भूषण कौमुदी, काव्य रत्नाकर ये दोनों ग्रन्थ देखने योग्य हैं।" इससे प्रकट होता है कि उनकी कीर्ति कम से कम शिवसिंह सेंगर के कान तक तो अवश्य ही पहुँच चुकी थी। आज कल सिङ्गरामऊ की गद्दी पर ठाकुर हरपालसिंहजी विराजमान हैं। आशा है, ये भी विद्वानों का सम्मान करेंगे।

राय रणधीर सिंह के कुटुम्बी ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह के द्वारा मुझे राय रणधीर सिंह के हस्तलिखित और लेथो में छपे हुये काव्य-ग्रंथ देखने को मिले। इसके लिये मैं ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह का बहुत कृतज्ञ हूँ। राय रणधीर सिंह के कुटुम्बियों और गद्दीधरों को उनके ग्रन्थों को सुन्दरता पूर्वक और सस्ता छपवा कर उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बना देना चाहिये। हस्तलिखित पुस्तकों को छपवा देना ही

उचित है। क्योंकि यदि हस्तलिखित प्रति खो गई तो लेखक के कितने दिनों का परिश्रम, जिसे उसने अपना कलेजा घुला घुला कर किया है, सहज में नष्ट हो जायगा।

राय रणधीरसिंह की कविता का कुछ नमूना हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

नामार्णव पिंगल—यह सं० १८६४ वि० में बना। इसमें एक एक वस्तु के कई कई नाम नाना छंदों में लिखे गये हैं। साथ ही साथ छंदों के लक्षण और उदाहरण भी हैं। पिंगल ग्रंथों में जितने विषय होने चाहिये, उतने तो हैं हीं; कुछ अन्य बातें भी जो पद्य रचयिताओं के लिये ज्ञातव्य हैं, इस पुस्तक में वर्णित हैं। एक उदाहरण देखिये—

अग्निनाम-कुंडलिया छंद

सिंह विलोकित रीति दै दोहा पर रोलाहि।
आदि अंत जुरि जमक युत, कुंडलिया कहि ताहि॥
अनल बन्हि पावक दहन ज्वलन शिखी वृषभानु।
शुक्र धनंजय बातसख ऊषर अग्नि कृशानु॥
ऊषर अग्नि कृषानु आनु बुध चित्रभानु इमि।
धूमध्वज जलजोनि विभावसु बीतिगोत्र तिमि॥
जातवेद जुत आनि निसाचर तूल तुल्य दल।
काली जू भ्रुअ भंग आजु जारत क्रोधानल॥

काव्य रत्नाकर—सं० १६६७ वि० में बना। यह नायिका भेद और अलंकार का ग्रंथ है। रचना अच्छी है। ग्राम्यवधू का वर्णन देखिये—

गेह काज करति छिनक दौरि हेरै द्वार छिनक उठाय घट जाती जल लैन को। चकबक ताकती इतै उतै बिलोकि काहू मुरि मुसुकाय ललचाय जोरि नैन को॥ मैन मद माती अढ़ि-

लाती छाती ऊँची करि बोलति छिपाती चली जाती देती सैन को। लेजुरी गिराती फेरि फेरि फिरि आती लेन पथ में फिराती त्यों बढ़ाती जाती चैन को॥

सालहोत्र—यह सं० १६१२ वि० में लिखा गया। इसमें घोड़ों की पहिचान, उनके गुण दोष, रोग और औषधियों का वर्णन है। उत्तम अश्व का लक्षण इस प्रकार कहा गया है:-

तालू रसना अधर अरुन बिराजत हैं उज्जल अरुन स्याम इक रंग अंग हैं। लोचन बिसाल लंबी ग्रीव मुख मंजुल है कच घुघुरारे बड़े स्रुति सुठि तंग हैं॥ सूच्छम तुचा है, चौड़े उर, पातरे चरन, पूँछ लघु, गति लोल, लागी वासु संग है। बिरले न दंत, सिर ऊँचे, बंक देखियत लच्छन ये जामें सोई उत्तम तुरंग है॥

घोड़े के रोग की दवा

जौ घोड़े को देखिये फूल्यो उदर सिवाय।
पटकि पटकि लोटै धरनि ताको जतन बताय॥

बैठै उठै घोड़ तनि आवै।
हर्रैं राई लोन खिआवै॥
यहि तें जौ कुरकुरी न छूटै।
तौ दूसर औषधि लै कूटै॥
हँसि मूल को तुचा मँगावै।
पातर करि कै ताहि पिलावै॥

राग माला—यह सं० १६४६ वि० का छपा है। इसमें राय रणधीर सिंह के रचे हुये भजन और गीत, विविध राग रागिनियों में हैं। नमूने के तौर पर एक भजन हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

(ध्रुपद राग, पर्ज ताल, चौताल)

आली री अनंग अंग जनु धारे बनमाली ठाढ़ो है निकुंज मध्य प्यारी री। गल सोहै मोती माल, केसर को तिलक भाल मोर पंख सीस मानो चन्द्र की पत्यारी री॥ पीत बसन लसित अंग सरसित सुखमा सुढंग जलधर ज्यों लीन्यों विद्युत अलोल संग वंसी रवित मंजु अधर सुरस धारि रनधीर लेतो है अनंत तान न्यारी री॥

भूषण कौमुदी—यह ग्रंथ सं० १९१७ वि० में बना। इस ग्रंथमें महाराज जसवंत सिंह के भाषा-भूषण नामक ग्रंथ पर टीका लिखी गई है। टीका अच्छी है। इस ग्रंथ के प्रारंभ का तीसरा छंद इस प्रकार है :—

मंजुल सुरंगवर शोभित अचिंत चारु फल मकरंद कर मोदित करन हैं। प्रमित विराग ज्ञान केसर सरस देस विरद असेस जसु पांसु प्रसरन हैं। सेवित नृदेव मुनि मधुप समाज ही के रनधीर ख्यात द्रुत दच्छिन भरत हैं। ईस हृदि मानस प्रकासित सहाई लसैं अमल सरोजवर स्यामा के चरन हैं॥

शिवसिंह सेंगर

शिवसिंह सेंगर जिला उन्नाव में काँथा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता ज़मीदार थे और उनका नाम रणजीतसिंह था। इनका जन्म स० १८७८ में हुआ। ये पुलीस के इन्सपेक्टर थे। काव्य में अधिक रुचि होने के कारण इन्होंने हिन्दी, संस्कृत और फ़ारसी की बहुत सी पुस्तकें इकट्ठी की थीं।

सं० १९३४ में इन्होंने "शिवसिंह सरोज" नामक एक बड़े ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। इस में लगभग एक हज़ार हिन्दी के पुराने कवियों की संक्षिप्त जीवनी और उनकी कविताओं के स्वल्प संग्रह हैं। कविता-कौमुदी लिखते समय हमें इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिली। इसके सिवाय शिवसिंह ने ब्रह्मोजर खंड और शिव पुराण का गद्यानुवाद भी किया था। ये कविता भी करते थे। नमूने के रूप में इनके दो कवित्त यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

पियो जब सुधा तब पीबे को कहा है और लियो शिव-नाम तब लेइबो कहा रह्यो। जान्यो जिन रूप तब जानै को कहा है और त्याग्यो मन आश तब त्यागिबो कहा रह्यो। भनै शिवसिंह तुम मन में बिचारि देखो पायो ज्ञान धन तब पाइबो कहा रह्यो। भयो शिव भक्त तब ह्वैवे को कहा है और आयो मन हाथ तब आइबो कहा रह्यो॥

कहकही काकली कलित कल कंठन की कंजकली कालिँदी कलोल कहलन में। सेंगर सुकवि ठढ लागती ठिठुरवारी ठाढ सब ठटे लगि लेते टहलन में। फहरै फुहारै फबि रही सेज फूलनि सों फेन सी फटिक चौतरा के पहलन में। चाँदनी चमेली चम्पा चारु फूल बाग बीच बसिये बटोही मालती के महलन में॥

रघुराजसिंह

रघुराजसिंह रीवाँ के महाराज थे। इनका जन्म सं० १८८० में हुआ। सं० १९११ में अपने पिता महाराज विश्वनाथसिंह के स्वर्गवासी होने पर ये गद्दी पर बैठे। इनकी मृत्यु सं० १९३६ में हुई। इनके १२ विवाह हुये थे। कविता महाराज रघुराजसिंह की पैतृक सम्पत्ति थी। इनके पिता और पितामह भी अच्छे कवि और सत्कवियों के आश्रयदाता थे। रघुराजसिंह हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं के पंडित और कवि थे। राम और भक्ति में भी इनकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती है। शिकार खेलने का इन्हें बड़ा व्यसन था। शिकार में इन्होंने ६१ शेर, एक हाथी, १६ चीते और हजारों हरिण तथा अन्य पशुओं का बध किया था। मृत्यु-काल से ५ वर्ष पूर्व ही से इन्होंने राज्य-प्रबंध से सम्बंध छोड़ दियाथा। उस समय बृटिश सरकार राज्य की देख रेख करती थी। सं० १९३३ में इनको संतान-सुख प्राप्त हुआ।

इनके आश्रय में बहुत से कवि रहा करते थे। उनमें से कुछ के नाम ये हैं:—रसिकनारायण, रसिकबिहारी, श्री गोविन्द, बालगोविन्द और रामचन्द्र शास्त्री। जितने ग्रन्थ महाराज रघुराजसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं, उनमें से कई उपरोक्त आश्रित कवियों के रचे हुये कहे जाते हैं।

महाराज रघुराज सिंह के रचे हुये निम्नलिखित ग्रन्थ हैं:—

सुन्दर शतक, विनय पत्रिका, रुक्मिणी परिणय, आनन्दाम्बुनिधि, भक्ति विलास, रहस्य पंचाध्यायी, भक्तमाल, रामस्वयंवर, यदुराज विलास, विनय माला, राम रसिका-

वली, गद्यशतक, चित्रकूट माहात्म्य, मृगया शतक, पदावली, रघुराज विलास, विनय प्रकाश, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, राम अष्टयाम, भागवत भाषा, रघुपति शतक, गंगा शतक, धर्म विलास, शंभु शतक, राजरंजन, हनुमत चरित्र, भ्रमर गीत, परम प्रबोध और जगन्नाथ शतक। रघुराजसिंह की कविता कहीं कहीं बड़ी मनोहर हुई है। ये राम भक्त थे। राम को दास भाव से भजते थे। अपनी कविता में कहीं कहीं तुलसीदास की छाया भी इन्होंने ली है।

यहाँ रुक्मिणी परिणय और रघुराज विलास से इनकी कुछ कविता उद्धृत की जाती है:—

केशव जन्म लै आज्ञा दई तब लै शिशुको बसुदेव सिधारे।
गोकुल में यशुदाके निकेत में राखि सुतै दुहिता लै पधारे॥
बाल ही में विकरार सुरारिन पूतना धेनुक आदि सँहारे।
शक्रके कोपते राख्यो ब्रजै गिरिधारी सु सात दिनै गिरिधारे॥१॥
जानि दुखी यदुवंशिनको सँग दानपती मथुरा कह आये॥
कंसहि कूटिकै मातु पिताको छोड़ायकै बंधन मोद बढ़ाये॥
आहुकको यदुराज दियो निज बंधुनके दुख द्वंद मिटाये।
मागधको मद मथनकै अब द्वारका द्वारकानाथ बसाये॥ २॥
दीनन पालिबो शत्रुन शालिबो घालिबो भक्तनके दुख को है।
दौठि दयाकी प्रजापै पसारिबो धर्म सुधारिबो चित्त बसे है॥
पाप नशाइबो नीति चलाइबो कीरति बेलि बढ़ाइबो सोहै॥
वृद्धन मानिबो यज्ञन ठानिबो यों जिनके गुणको सब जोहै॥३॥
बुद्धि लखे हिय लाजै बृहस्पति रूप लखे हिय लाजत मार है॥
धीरज दासरथी सो अरीनपै कोपिबो शभुसो शीलअगार है॥
बिक्रम जासु त्रिविक्रमके सम क्षोनीक्षमा सुखसिंधुको सार है।
तेज कृशानु प्रतापते भानु यशौते लजै सितभान अपार है॥४॥

कोमल बोलै कठोरो कहै किये येकहू सेवा सतै करि मानत।
वाके सबै अपकार बिसारि निजै चितमें उपकारहिं आनत॥
जोई कहै करै सोई सदा द्विजको निजदेवता सौं जिय ठानत॥
दीनन दान मुनीशन मान अरीन कृपानको देइबो जानत॥ ५॥
कंचन दानमें मेरु डरै गजदान में गोवति गौरी गजानन।
दान तुरंगको देखि दिवाकर दाहिन बामहू जात दिशानन॥
दान महीके महीके महीपति त्रासित जीके विलोकत कानन।
हेरि कुशा हरिके करमें डरतो त्रयलोक करै चतुरानन॥ ६॥
माधुरी माधवकी वह मूरति देखतहीं दृग देखे बनेरी॥
तीनिहू लोक की जो रुचिराई सुहाई अहै तिनहींके घनेरी॥
सोभा शचीपति औ रति के पति की कछु आई न मेरे मनैरी।
हेरि मैं हार्यो हिये उपमा छविहू छविपाई विराजित नैरी॥७॥
व्रजमें जेहिके मुरली ध्वनिको सुनिकै यह कौतुक होत भयो।
परिवार बिसारि हिये हरिधारि सुगोपिका छोडि अवास दयो॥
कर नूपुर कंकन पाँयनमें कटि किंकिणीको करि हारु लयो।
नँदनंदनके ढिगको यों गई सरितागण सागरको ज्यों गयो॥८॥
मुख देखतही मनमोहनको अतिसोहन जोहन लागी जबै।
नहि नैन हिले नहि बैन चलै नहिं धाय मिलै नहिं शीश नवै॥
व्रजबालन हाल लख्यो असलाल उताल कियो उरमाल तबै।
रसरास विलासमें हास हुलाससों पूरणकै दिय आशसबै॥९॥
मथुराके मनोहर मारगमें मुरली धरे मंडित ग्वालनसों।
लखि कूबरी मोहितदै अँगराग चह्यो मिलिबो हठि लालनसों॥
अतिरूप अनूप भयो तेहिको भई पूजित देवन बालनसों।
रति रंभा रमा सुख दुर्लभ जो छनहीमें दियोतेहि ख्यालनसों१०
कल किशलय कोमल कमल पदतल सम नहिं पाँय।
थक सोचत पियरात नित यक सकुचत झरि जाँय॥ १॥

विलसति यदुपति नखनितति अनुपम द्युति दरशाति ।
उडुपति युत उडु अवलि लखि सकुचि सकुचि दुरिजाति ॥२॥
सविता दुहिता श्यामता सुरसरिता नख ज्योति ।
सुतल अरुणता भारती चरण त्रिवेणी होति ॥ ३ ॥
गुलुफ गुलुफ खोलनि हृदय हो तौ उपमा तूल ।
ज्यौ इंदीवर तट असित द्वै गुलाब के फूल ॥ ४ ॥
लाली यँडी लालकी अति अनुपम दरशाहिं ।
कामबागकी नारँगी सम कहि कवि सकुचाहिं ॥५॥
चारु चरणकी आँगुरी मो पै वरणि न जाइ ।
कमलकोशकी पाँखुरी पेखत जिनहिं लजाइ ॥ ६ ॥
अहि अनुपम कहिजाति नहि युगल जंघकी ज्योति ॥
जिनहिं जोहि कलकलभ की शुंड कुंडलित होति ॥ ७ ॥
युगल जानु यदुराज की जोहि सुकवि रसभीन ॥
कहत मार शृंगारके संपुट द्वै रचि दीन ॥ ८ ॥
उरू सलोने श्यामके निरखत टरत न नैन ॥
जैतखंभ शृंगारके मानहुँ विरच्यो मैन ॥ ९ ॥
यदुपति कटिकी चारुता को करि सकै बखान ॥
जासु सुछवि लखि सकुचि हरि रहत दरीन दुरान ॥ १० ॥
पद्मनाभके नाभिकी सुखमा सुठि सरसाय ॥
निरखि भानुजा धारको भ्रमि भ्रमि भवँर भुलाय ॥११॥
ललौ कान्ह रोमावली भली बनी छवि छाय ॥
मनहुँ काम शृंगारकी दीन्हीं लीक खँचाइ ॥ १२ ॥
वर दामोदरको उदर जेहि नहि समता पाइ ॥
नवल अमल बल दल सुदल डोलत रहत लजाइ ॥ १३ ॥
उर अनुपम उनको लसै सुखमा को अति ठाट ॥
मनहुँ सुछबि हिय भरि भये काम शृंगार कपाट ॥ १४ ॥

कामकरभ कर उरग वर रस शृँगार द्रुमडार ॥
भुजनि जोहि यदुवीरके देव पराभव पार ॥ १५ ॥
श्रीयदुपतिके भुज युगल छाजि रहे छवि भौन ॥
निरखत जिनहिं भुजंगवर लजि पताल किय गौन ॥१६॥
देवकिनंदन कंठको रच्यो न विधि उपमान ॥
जे जड़ दरको पटतरहि तिनसम जड़ न जहान ॥१७॥
ग्रीवा गिरिधर लालकी अनुपम रही विराजि ॥
निरखि लाज उर दरकि दर बस्यो उदधि महँ भाजि ॥१८॥
मनमोहनके नैनवर वरणि कौन विधि जाहिं ॥
कंज खंज मृग मैन शर मीनहुँ जेहि सम नाहिं ॥१९ ॥
यदुपति नैन समान हित विधि ह्वै विरचै मैन ॥
मीन कंज खंजन मृगहु समता तऊ लहै न ॥ २० ॥
भालपटलि नगवंतकी भनति भारती नीठि ॥
वशीकरन जपकरनकी मनमनोज सिधि पीठि ॥२१॥
बाललालके भालमें सुखमा बसी विशाल ॥
सुछबि माल शशि अरधहू निरखत होत बिहाल ॥ २२ ॥
यदुपति भौंहनकी सुछबि मदन धनुषकी सोभ ॥
जीति लसतहै तिनहिं लखि दृग न टरत रतलोभ ॥ २३ ॥
भौंह वरुण यदुराजकी रही अपूरुब सोहि ॥
करहि लजोहैं कामधनु शरमन लेवै पोहि ॥ २४ ॥
हरिनासाकी सुभगता अटकि रही दृग माँह ॥
कामकीरके ठोरकी सुखमा छुवति न छाँह ॥२५ ॥
गोल कपोल अतोल हैं छाये सुछबि अमान ॥
मदन आरसी रसपसर सम शर करत अजान ॥ २६॥
श्रवण सलोने श्यामके छहरति छटा नवीनि ॥
मदन महोदधि सीपकी सुखमा लीन्हीं छीनि ॥ २७ ॥

राजत पुरट किरीट शिर प्रगटत प्रभा अखंडि ॥
उयो मनहुँ गिरि नील पर अनुपम रबि छबि मंडि ॥२८॥

गीत

भज मनो देवकी जठर महोदधि पूर्ण मृगांकमुदारम् ।
यदुकुल कुमुद बिनोद बिकाशक बिभु बसुदेव कुमारम् ।
नलिन नयन नलिनोरुहाननं नवनीरद तनु नीलम् ।
समय बिजय कर चारु चतुर्भुज शोभित सुन्दर शीलम् ।
मणिमय मुकुट मनोहर मस्तक पीत बसन बनमालम् ।
कुण्डल मण्डित गण्ड मण्डलं चन्दन चर्चितभालम् ।
रुक्मिणी बिराजित बाम भाग मनु राग यागजवलम्भ्यम् ।
सिंहासनासीन कमनीय सभा सुबिभावित सभ्यम् ।
सुर सुरेन्द्र बैरंच्य बिरंचि सुरर्षि महर्षि समाजम् ।
दीन दया बितरण सदानि वरपावित जनरघुराजम् ॥१॥
सखि पश्य कोशल कान्त सुखद कुमारमति सुकुमारम् ।
मैथिल निवास बिलास बिलसित मदनमनोऽपहारकम् ।
मणि मंडपे सीतायुतं सुषमाभरं सीतावरम् ।
सुबिवाहकर्म्म बिधान मतिकुर्वाणमद्भुत तारकम् ।
मणिमुकुट पीताम्बर सुमध्यमुखारबिंदमनिन्दितम् ।
मेदुरसुघन मस्तकदिवामणिमिवतडिद्गणवन्दितम् ।
किञ्चित्कटाक्ष विकाश वीक्षित जानकी सुषमामुखम् ।
गुरुजन निकट लज्जावशं गलमधोभावितशशिमुखम् ।
जनकात्मजार्प्पितदृष्टि कंकण कलितकर धृतचन्दनम् ।
रघुराज राजसमाज शोभित सानुजं रघुनन्दनम् ॥२॥

सखिलखन चलो नृपकुवँर भलो
मिथिला पति सदन सिया बनरो ॥

शिर मौर बसन तन में पियरो
हठ हेरि हरत हमरो हियरो ॥
उर सोहत मोतिन को गजरो
रत नारी अंखियन में कजरो ॥
चितये चित चोरत सखि समरो
चितये बिन जिय न जियै हमरो ॥
अलकैं अलि अजब लसैं चेहरो
झपि झूलि रह्यो कटिलौं सिहरो ॥
युवती जन को जालिम जहरो
मन बैठत लखत मैन पहरो ॥
पुनि ऐहैं नाहिं जनक शहरो
ले रि लोचन लाहु न करु गहरो ॥
यक है वहि लखत बड़ो अनरो
पुनि रुकत न रोकेहु मन उनरो ॥
चित चहत अरी लगि जाउं गरो
रघुराज त्यागि जग को झगरो ॥ ३ ॥

मोहितो भरोसो भूरि अपनी कमाई को ।
कबहूं काहू को नहीं कियो है भलाई को ॥
कियो काम लोभ कोह मोह सों मिताई को ।
रोज रोज पाल्यो निज नारि नाति भाई को ॥
कबहूँ न पूज्यो साधु लैके आगुआई को ।
पूरी प्रीति पापिन सों नारिहूँ पराई को ॥
बाढ्यो है घमंड मोह माया ठाकुराई को ।
बेस बजवायो द्वार पाप ही बधाई. को ॥
रोज रुजगार कियो जीवही सताई को ।
सपन्यो न सोच्यो नाथ भक्ति सुखदाई को ॥

धर्म कर्म कीन्ह्यो केते लोक की बड़ाई को।
कबहूँ न पायो पार विषै भोगताई को॥
बाको न रह्यो है रघुराज पतिताई को।
मोहिं ना उधारे पतितपावन नाम गाई को॥४॥

मूरख मानत यही बड़ाई।
राजा भयो बिभौ धन आँधर नहिं सन्तन शिरनाई।
भोजन मैथुन ऐश करत नित दिय बय वृथा बिताई।
ह्वै पण्डित पढ़ि न्याय व्याकरण भरे घमंड महाई।
सन्त चरण परसत सकुचत शठ जोरत धन बहुताई॥
मन्त्री भयो महामदमातो चलत भुजानि फुलाई।
सन्तन ओर तकत कबहूँ नहिं कालभीति बिसराई॥
धनिक भयो धन धरयोंगाड़ि महिजानत रही सदाई।
कबहुँ न हरि हर जनके हेतहिं कौड़िहु कान लगाई॥
भयो राज सामन्त जगत जो हठि परलोक भुलाई।
करत सन्त अपकार जानि अस मीच नगीच न आई॥
कलि कुचालि कहँलों मुख बरणों देखतही बनि आई।
गुरू होन सब कोउ जग चाहत शिष्य होत सकुचाई॥
सोई बड़ो गुरू सबको सोइ ताकी सत्य बड़ाई।
जो रघुराज सदा संतन की करत चरण सेवकाई॥५॥

द्विजदेव

अयोध्या नरेश महाराजा मानसिंह का उपनाम द्विजदेव था। द्विजदेव अवध के तालुकेदारों के एसोसियेशन के सभापति थे। इनका देहान्त लगभग ५० वर्ष की अवस्था में, सं० १९३० में हुआ।

ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। कवियों और विद्वानों का ये बड़ा आदर करते थे। ये स्वयं एक अच्छे प्रतिभा शाली कवि थे। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया। इनके उत्तराधिकारी महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रताप नारायण सिंह के० सी० आई० ई०, उपनाम ददुआ साहब ने "रसकुसुमाकर" नामक अलंकार और रस सम्बन्धी हिन्दी-कविता का एक बड़ा संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसमें द्विजदेव के बहुत से छंद मिलते हैं। उसमें से और कुछ अन्य कविता-संग्रहों में से इनके थोड़े से छंद चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते हैं :—

जावक के भार पग परत धरा पै मंद गंध भार कचन परी हैं छूटि अलकैं। द्विजदेव तैसियै विचित्र बरुनी के भार आधे आधे दृगन परी हैं अध पलकैं। ऐसी छवि देखि अंग ंग की अपार बार बार लोल लोचन सु कौन के न ललकैं। पानिप के भारन सँभारति न गात लङ्क लचि लचि जात कच भारन के हलकैं॥ १॥

भूले भूले भौंर बन भाँवरे भरेंगे चहूँ फूलि फूलि किंशुक जके से रहि जाय हैं। द्विजदेव की सौं वह कूजनि बिसारि कूर कोकिल कलंकी ठौर ठौर पछताय हैं॥ आवत बसन्त के न ऐहैं जो पै स्याम तो,पै बावरी! बलाय सों हमारेऊ उपाय हैं। पीहैं पहिले ही तें हलाहल मँगाय या कलानिधि की एकौ कला चलन न पाय हैं॥ २॥

बाँके संक हीने राते कंज छवि छीने माते झुकि झुकि झूमि झूमि काहु को कछू गनै न। द्विजदेव की सौं, ऐसी बनक बनाइ बहु भाँतिन बगारे चित चाह न चहू धा चैन॥ पेखि परे पात जो पै गातन उछाह भरे बार बार तातें तुम्हैं

बूझती कछूक बैन। एहो ब्रजराज मेरे प्रेम धन लूटिबे को बीरा खाइ आए किते आपके अनोखे नैन ॥ ३ ॥

कारो नभ कारी निसि कारियै डरारी घटा झूकन बहत पौन आनँद को कन्द री। द्विजदेव साँवरी सलोनी सजी स्याम जू पै कीन्हो अभिसार लखि पावस अनन्द री। नागरी गुनागरी सु कैसे डरै रैनि डर जाके संग सोहैं ये सहायक अमन्द री। बाहन मनोरथ उमाहैं संगवारी सखी मैन मद सुभट मसाल मुख चंद री ॥४ ॥

काहू काहू भाँति राति लागी ती पलक तहाँ सपने में आनि केलि रीति उन ठानी री। आप दुरे जाय मेरे नैननि मुदाय कछु हौंहूँ बजमारी ढूँढ़िबे को अकुलानी री। एरी मेरी आली या निराली करता की गति "द्विजदेव" नेकऊ न परति पिछानी री। जौलों उठि आपनो पथिक पिय ढूँढ़ौं तौलौं हाय, इन आँखिन ते नीदई हेरानी री ॥ ५ ॥

घहरि घहरि घन सघन चहुँघा घेरि छहरि छहरि विष बूँद बरसावै ना। द्विजदेव की सों अब चूक मत दावँ अरे पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना। फेरि ऐसो औसर न ऐहै तेरे हाथ एरे मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना। हैं तो बिन प्रान प्रान चहत तज्योई अब कत नभ चन्द तू अकास चढ़ि धावै ना ॥६ ॥

बोलि हारे कोकिल बुलाय हारे केकी गन सिखैं हारीसखी सब जुगत नई नई। द्विजदेव की सों लाज बैरिन कुसंग इन अंगिनिहीं आपने अनीती इतनी ठई।हाय इन कुंजन ते पलटि पधारे स्याम देखन न पाई वह सूरति सुधामई। आवन समैं में दुख दाइनि भई री लाज चलन समैं में चल पलन दगा दई ॥ ७ ॥

चितचाह अबूझ कहैं कितने छवि छीनी गयंदन की टटकी।
कवि केते कहैं निज बुद्धि उदै यह लीनी मरालन की मटकी।
द्विजदेव जू ऐसे कुतर्कन में सबकी मति योंहीं फिरै भटकी।
वह मंद चले किन भोरी भटू पग लाखनकी अँखियाँ अँटकी८॥
सोधे समीरन को सरदार मलिन्दनको मनसा फल दायक।
किंशुक जालन को कलपद्रुम मानिनी बालनहूँ को मनायक॥
कन्त अनन्त अनन्त कलीन को दीनन के मन को सुखदायक।
साँचे मनोभव राज को साज सु आवत आज इतै ऋतुनायक९॥

रामदयाल नेवटिया

सेठ रामदयाल नेवटिया का जन्म कार्तिक शुक्ल १३ सं० १८८२ में, मंडावा (शेखावाटी) में हुआ। आपके पिता का नाम सेठ मनसा राम था। जन्म के चालीस दिन पीछे आप फतहपुर, जो मंडावा से सात कोस पर है, लाये गये। फतहपुर ही आप के परिवार की निवास भूमि है।

बालकपन से ही विद्या की ओर आपकी अधिक रुचि थी। थोड़ी ही अवस्था में आप व्योपारिक कामों में दक्ष हो गये। संवत् १८९६ में आपके पिता का देहान्त हो गया। सं० १९०७ में आप अजमेर के सेठ प्रतापमलजी मेहता के व्योपार के प्रधान संचालक होकर पूना गये। पूना में व्योपारिक काम करते हुये भी आपने बड़े परिश्रम से हिन्दी, संस्कृत, मराठी, गुजराती और उर्दू में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। साधारण अँगरेजी भी आप समझ लेते थे।

सं० १६१४ में आप अजमेर वापस गये और वहाँ से कुछ दिन बाद फतहपुर चले आये। तब से वहीं रहने लगे।

आप बड़े विद्या-व्यसनी थे। पुस्तकों से आप का बड़ा प्रेम था। गीताका प्रतिदिन पाठ करते थे। आपके पुस्तकालय में हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकों का बहुत अच्छा संग्रह है।

आप बड़े मिलनसार, सुशील,विनयी, सदाचारी, उदार, न्यायप्रिय और शांत पुरुष थे। अभिमान तो आपको छू भी नहीं गया था। मारवाड़ी जाति के आप रत्न थे। आपके समान विद्वान् मारवाड़ी जाति में अभी तक कोई नहीं हुआ। आप समाज सुधार के बड़े पक्षपाती थे। गुणियों का आदर आप बड़े प्रेम से करते थे।

मुझे आपके समीप रहने का कई वर्षों तक अवसर मिला था। जब कोई शास्त्रीय चर्चा छिड़ जाती थी तब आपके अगाध पांडित्य का चमत्कार देखकर मन में बड़ा आनन्द उमड़ आता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आप मित्रों में से थे, राजा शिवप्रसाद से भी आपका पत्र व्यवहार था।

बालकपन में आपकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी। आपके सद्व्यवहार, कर्त्तव्य परायणता, सत्याचरण और धर्मनिष्ठा पर लक्ष्मी भी मोहित हो गई और अपने जीवन काल में ही आप अपने वृहत् परिवार को करोड़ों की सम्पत्ति से सुखी देखकर स्वर्गवासी हुये।

आपका स्वास्थ्य बहुत सुन्दर था। सं० १६७० में आपने गङ्गोत्री और जमनोत्री की यात्रा की थी। सं० १६७४ के अंत में आप मथुरा आये थे। वहीं मेरा आप से अंतिम साक्षात्कार हुआ। आप चार बजे प्रातःकाल उठते, शौच और स्नान से निवृत्त होकर पूजा पर बैठ जाते थे। पूजा-पाठ

आपने अंतिम समय तक नहीं छोड़ा। आप महीन से महीन अक्षर भी वृद्धावस्था में बिना चश्मे की सहायता के पढ़ लेते थे। अभी थोड़े ही दिन हुये, इसी आश्विन मास (सं० १९७५) में आपने इस असार संसार को परित्याग किया।

आप हिन्दी के अच्छे कवि थे। आपके रचे हुये तीन ग्रंथ हैं। तीनो छप चुके हैं। उनके नाम ये हैं:—१-प्रेमांकुर, २-बलभद्रविजय, ३-लक्ष्मणमंगल। कविता में आप अपना उपनाम कृष्णदास रखते थे। नीचे हम आप की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं:—

१

बीत रही सब आयु तदपि बीती नहिँ आशा।
अजहुँ चहूँ सुख भोग रोग भय बड़ा तमाशा॥
शिथिल हो गई देह वात पित कफ ने घेरा।
श्वेत केश संदेश समन का लाया नेरा॥
शक्ति हीन इन्द्री भई भक्ति लेश नहिँ तनक मन।
तृष्णा कों तज रे! अधम भजत क्यों न राधारमन॥

२

मैं कीनों बहु दोष एक भरोसे आपके।
तुमही करियौ रोष तो पापी की कवनि गति॥

३

दूजो आदर ना करै वाको कछु न दोस।
मैं तेरो तू ना सुनै यह भारी अफसोस॥

४

सिंधु होय जल बिन्दु इंदु सम होय दिवाकर।
अनल कमल को फूल तूल सम होय धराधर॥

माहुर मधुर समान भूप भ्राता जिमि जानै।
शत्रु होय निज दास लोक आज्ञा सब मानै॥
पाप होय हरिजाप सम को दुराव नहिं भू परै।
आनन्द कंद ब्रजचन्द जब करुणानिधि किरपा करै॥

५

माधव तुम बिन सब जग झूठो।
रवि, ससि, अनिल, अनल, जल, थल में तुमरो ही तेज अनूठो॥
नन्दकिशोर और नहिँ जाँचूँ राजी रहो चाहे रूठो।
मैं हूँ अनन्य आपको सेवक कृष्णदास पै तूठो॥

६

जग में हरि बिन कोइ न सँगाती।
वाको मत बिसरो दिन राती॥
पल पल आयु घटै नर तेरी ज्यों दीपक बिच बाती।
चेत चेत नर चेत चतुर हो गइ न लौट फिर आती॥
सब अपने स्वारथ के संगी सुत बनिता अरु नाती।
कृष्णदास की त्रास मिटावें जनम मरन से साथी॥

लक्ष्मणसिंह

राजा लक्ष्मणसिंह यदुबंशी क्षत्रिय थे। जन्म-भूमि आगरा, जन्म संवत् १८८३, मृत्यु संवत् १९५३।

राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, बँगला और अँग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। सन् १८५७ वाले सिपाही विद्रोह में इन्होंने अंग्रेज़ों को बड़ी मदद पहुँचाई

थी, इससे सन् १८७० के प्रथम दिल्ली दरबार में इनको गव-र्नमेंट ने राजा की पदवी दी। ये २० वर्ष तक ८०० रु० मासिक पर पहले दरजे के डिप्टी कलक्टर रहे। कांग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। उन्हीं की कृपा से इनकी विशेष उन्नति हुई।

यद्यपि डिप्टी कलक्टरी के कामों से इन्हें अवकाश बहुत कम मिलता था, तो भी हिन्दी की ओर इनका ऐसा प्रेम था कि जो समय बचता उसे ये उसी की सेवा में लगाते थे। गवर्नमेंट की बहुत सी सरकारी किताबों का हिन्दी में उल्था करने के सिवाय इन्होंने शकुंतला, मेघदूत और रघुवंश का भाषानुवाद भी किया है। और ये ही पुस्तकें हिन्दी जगत में इनको अजर अमर बनाये रहेंगी। इन पुस्तकों के अनुवाद में इन्होंने अपने पांडित्य का जो चमत्कार दिखाया है वह किसी साहित्य-प्रेमी से छिपा नहीं है। भारत-वर्ष तथा योरोप के विद्वानों ने भी इनको हिन्दी का कवि माना है। इनके अनुवाद में यह विशेषता है कि पद्य की कौन कहे, गद्य में भी उर्दू फारसी का एक शब्द नहीं आने पाया है। फिर भी एक एक पद सरस, सुपाठ्य और सर-लता से भरा हुआ है।

शकुंतला के अनुवाद में से इनकी कविता की कुछ छटा हम दिखलाते हैं—

१

कैसे भ्रमर चुम्बन करत।

नागकेसरि को सु अंकन रहसि रहसिहि भरत॥
सिरस फूलन कान धरि बन युवति मन को हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत॥

२

रूखन तर मुनि अन्न पस्यो है शुककोटरतें यह जु गिस्यो है।
कहुँ धरी चिक्कन सिल दीसैं इंगुदिफल जिनपै मुनि पीसैं॥
रहे हरिन हिलि ये मनुषन तें नैन न चौंकत बोल सुनन तें।
सोहति रेख नदी तट बाटा बनी टपकिजल बल्कलपाटा॥
पवन झकोरति है जल कूला बिटप कियेजिन उज्ज्वलमूला।
नव पल्लव दीखत धुँधराये होम धुआँ जिन ऊपर छाये॥
उपवन अग्र भूमि के माहीं कटि के दाभ रहे जहँ नाहीं।
चरतफिरत निधरक मृगछौना जिनके मन शंका नेको ना॥

३

अधर रुचिर पल्लव नये भुज कोमल जिमि डार।
अंगन में यौवन सुभग लसत कुसुम उनहार॥

४

तो मन की जानति नहीं अहो मीत बेपीर।
पै मो मन को करत नित मनमथ अधिक अधीर॥

५

भानु मन्द कर देत केवल गध कमोदिनिहिं।
पै शशि मंडल स्वेत होत प्रात के दरस तें॥

६

कहुँ दाभनतें मुख जाको छिद्यो जब तू दुहिता लखिपावत ही।
अपने करतें तिन घावन पै तुहीं तेल हिँगोट लगावत हीं॥
जिहि पालनके हित धान समा नित मूठहिँ मूठ खवावत ही।
मृगछौना सो क्यों पग तेरे तजैजिहि पूतलौं लाड़ लड़ावत ही॥

७

प्रजा काजे राजा नित सुकृति पै उद्यत रहैं।
बढ़े वेद ज्ञानी हित सहित पूजें सरस्वती॥

उमा स्वामी शंभू जगतपति नीललोहित प्रभू।
छुटावें मोह कों विपति अति आवागमन सों॥

गिरिधरदास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचंद्र का उपनाम गिरिधरदास था। कविता में वे इसी नाम का प्रयोग करते थे। कहीं कहीं गिरिधारी और गिरिधारन का प्रयोग भी मिलता है। ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। इन्होंने चालीस ग्रंथों की रचना की थी। उनमें जरासंधवध की विशेष प्रशंसा सुनी जाती है। यह महाकाव्य कहा जाता है। इनका जन्म सं० १८९० में और मरण सं० १९१७ में हुआ। कुल २६ वर्ष ४ महीने की आयु में ४० ग्रंथों की रचना बड़ी प्रतिभा का काम है। इनके ग्रंथ प्रायः अप्रकाशित हैं। दो एक ग्रंथों को बाबू हरिश्चन्द्र ने छपवाया था। और कई ग्रंथों का अब कहीं पता भी नहीं चलता। इनके रचित ३८ ग्रंथों के नाम ये हैं :—

१—वाल्मीकि रामायण—पद्यानुवाद, २—गर्ग संहिता, ३—भाषा एकादशी की चौबीसों कथा, ४—एकादशी की कथा, ५—छन्दार्णव, ६—मत्स्य कथामृत, ७—कच्छप कथामृत, ८—नृसिंह कथामृत, ९—बावन कथामृत, १०—परशुराम कथामृत, ११—रामकथामृत, १२—बलराम कथामृत, १३—बुद्ध कथामृत १४—कल्कि कथामृत, १५—भाषा व्याकरण, १६—नीति, १७—जरासंधवध महाकाव्य, १८—नहुष नाटक, १९—भारती भूषण, २०—अद्भुत रामायण, २१—लक्ष्मी

नखशिख, २२—रस रत्नाकर, २३—वार्ता संस्कृत, २४—ककारादि सहस्र नाम, २५—गया यात्रा, २६—गयाष्टक, २७—द्वादश दल कमल, २८—स्तुति पञ्चाशिका, २९—संकर्षणाष्टक, ३०—दनुजारि स्तोत्र, ३१—वाराह स्तोत्र, ३२—शिव स्तोत्र, ३३—श्री गोपाल स्तोत्र ३४—भगवत् स्तोत्र, ३५—श्री रामस्तोत्र, ३६—श्री राधा स्तोत्र, ३७—रामाष्टक, ३८—कलिकालाष्टक।

ये अपनी रचना में श्लेष और जमक की अच्छी बहार दिखलाते थे। परन्तु नीति और शांति रसकी कविता इन्होंने बहुत सरल भाषा में लिखी है। हमने इनका कोई ग्रन्थ नहीं देखा। संग्रह-ग्रंथों में कहीं कहीं इनके रचे छन्द उद्धृत हैं। उन्हीं में से चुनकर कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं :—

१

सब केसव केसव के हित के गज सोहते शोभा अपार हैं।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सैलहिं सीस प्रहार है।
गिरिधारन धारन सों पद के जल धारन लै बसुधारन फार हैं।
अरि बारन बारन बारन पै सुर बारन बारन बारन बार हैं॥

२

गुरुन को शिष्यन सुपात्र भूमिदेवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों। सुत को सन्यासिन को वर जिजमानन को सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों। सत्रुन को मित्रन को पित्रन को जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों। गिरिधरदास दासै स्वामी को अघी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों॥

३

बातनि क्यों समुझावति हौ मोहिं मैं तुमरो गुन जानति राधे।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंज में रीति के कारन साधे।

घूंघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै साधे।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहै जल जाल के बांधे।

४

धिक नरेश बिनु देस देस धिक जहँ न धरम रुचि।
रुचि धिक सत्य बिहीन सत्य धिकबिनुविचारसुचि॥
धिक विचार बिनु समय समय धिक बिना भजन के।
भजनहु धिक बिनु लगन लगन धिक लालच मन के॥
मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति।
धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक नहिंगिरिधरपरप्रेमअति॥

५

जाग गया तब सोना क्या रे।

जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे॥
ठाकुर से कर नेह अपाना इंद्रिन के सुख होना क्या रे।
जब वैराग्य ज्ञान उर आया तब चाँदी औ सोना क्या रे॥
दारा सुवन सदन में पड़ के भार सबोंका ढोना क्या रे।
हीरा हाथ अमोलक पाया काँच भाव में खोना क्या रे॥
दाता जो मुख माँगा देवे तब कौड़ी भर दोना क्या रे।
गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे॥

दोहे

धनहिँ राखिये विपति हित तिय राखिय धन त्यागि॥
तजिये गिरधरदास दोउ आतम के हित लागि॥ १॥
लोभ न कबहूँ कीजिये या मैं बिपति अपार॥
लोभी को बिस्वास नहिँ करे कोऊ संसार॥ २॥
लोभ सरिस अवगुन नहीं तप नहिँ सत्य समान॥
तीरथ नहिँ मन शुद्धि सम विद्या सम धन आन॥ ३॥

सकल वस्तु सँग्रह करै आवै कोउ दिन काम ॥
बखत परे पर ना मिलै माटी खरचे दाम ॥ ४ ॥
कारज करिय बिचारि कै कर्म लिखी सो होय ॥
पाछे उपजै ताप नहिँ निन्दा करै न कोय ॥ ५ ॥
पुन्य करिय सो नहिँ कहिय पाप करिय परकास ॥
कहिबे सों दोउ घटत हैं बरनत गिरिधरदास ॥ ६ ॥
पावक बैरी रोग रिन सेसहु रखिये नाहिँ ॥
ए थोरे हूँ बढ़हिँ पुनि महा यतन सों जाहिँ ॥ ७ ॥
अलस प्रमादी रागरमि नीति न देखत जौन ॥
उर सद असद विवेक नहिँ अधम अवनि पति तौन ॥ ८ ॥
मिल्यो रहत निज प्रासिहित दगा समय पर देत ॥
बन्धु अधम तेहिँ कहत हैं जाको मुख पर हेत ॥ ६ ॥
रूपवती लज्जावती सीलवती मृदु बैन ॥
तिय कुलीन उत्तम सोई गरिमाधर गुन ऐन ॥ १० ॥
अतिचंचल नित कलह रुचि पति सों नाहिँ मिलाप ॥
सो अधमा तिय जानिये पाइय पूरन पाप ॥ ११ ॥
जनक वचन निदरत निडर बसत कुसंगति माँहिं ॥
मूरख सो सुत अधम है तेहि जनमें सुखनाहिं ॥ १२ ॥
सुख दुख अरु विग्रह विपति यामें तजै न संग ॥
गिरिधर दास बखानिये मित्र सोइ बर ढङ्ग ॥ १३ ॥
सुख मैं सङ्ग मिलि सुख करै दुख मैं पाछो होय ॥
निज स्वारथ की मित्रता मित्र अधम है सोय ॥ १४ ॥
आप करै उपकार अति प्रति उपकार न चाह ॥
हियरो कोमल सन्त सम सुहृद सोइ नरनाह ॥ १५ ॥
मन सैाँ जग को भल चहै हिय छल रहै न नेक ॥
सो सज्जन संसार में जाको विमल विवेक ॥ १६ ॥

उद्यम कीजै जगत में मिलै भाग्य अनुसार ॥
मोती मिलै कि संख कर सागर गोता मार ॥ १७ ॥
बिनु उद्यम नहिं पाइये कर्म लिख्यो हू जौन ॥
बिनु जल पान न जाय है प्यास गङ्ग तट भौन ॥ १८ ॥
उद्यम में निद्रा नहीं नहिं सुख दारिद माहिं ॥
लोभी उर सन्तोष नहिं धीर अबुध में नाहिं ॥ १९ ॥
सुख दरिद्र सों दूर है जस दुरजन सों दूर ॥
पथ्य चलन सों दूर रुज दूर सीतलहिं सूर ॥ २० ॥
अति सरसत परसत उरज उर लगि करत बिहार।
चिन्ह सहित तन को करत क्योंसखि हरि नहिं हार ॥२१॥
गौनो करि गौनो चहत पिअ बिदेस बस काजु।
सासु पासु जोहत खरी आँखि आँसु उर लाजु ॥ २२ ॥
पति देवत कहि नारि कहँ और आसरो नाहिं।
सर्ग सिढ़ी जानहु यही वेद पुरान कहाहिं ॥ २३ ॥

लछिराम

लछिराम का जन्म पौष शुक्ल १०, सं० १८९८ को स्थान अमोढ़ा, जिला बस्ती, में, हुआ। इनके गाँव से लगा हुआ एक "चरथी" गाँव है। अमोढ़ा नरेश ने पुत्र-जन्म के उत्सव में इनकी कविता से प्रसन्न होकर वह गाँव इन्हें सदा के लिये दे दिया, और रहने के लिये एक अच्छा मकान भी बनवा दिया। उसी में ये सपरिवार आनन्द पूर्वक रहते थे।

१० वर्ष की अवस्था में लासाचक, जिला सुलतानपुर निवासी ईश कवि के पास इन्होंने साहित्य पढ़ना आरम्भ किया। पाँच वर्ष वहाँ पढ़कर सं० १९१४ में अवध नरेश

महाराजा मानसिंह के पास चले गये और उन्हीं से साहित्य का मर्म समझने लगे। इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। इससे थोड़े ही समय में इन्होंने साहित्य में अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली।

महाराज मानसिंह इन्हें बहुत चाहते थे। उन्हीं ने इन्हें "कविराज" की पदवी दी थी। उन्हीं के कारण अवध के सब राजा रईस इनका बड़ा सम्मान करते थे। कविता द्वारा इन्हें हाथी, घोड़ा, धन, वस्त्र, गाँव आदि वस्तुए समय समय पर उपलब्ध होती रहती थीं। इन्होंने राजाओं की प्रशंसा में अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनके रचे हुये ग्रन्थों के नाम ये हैं:—प्रताप रत्नाकर, प्रेम रत्नाकर, लक्ष्मीश्वर रत्नाकर, रावणेश्वर कल्पतरु, महेश्वर बिलास, मुनीश्वर कल्पतरु, महेन्द्र भूषण, रघुवीर बिलास, कमलानन्द कल्पतरु, मानसिंह जंगाष्टक, रामचन्द्र भूषण, सरजू लहरी, हनुमत शतक, राम रत्नाकर, नायिका भेद। इनके प्रायः सब ग्रन्थ भारत जीवन प्रेस, बनारस, में छपे हैं।

कविता तो इनकी ऊँचे दरजे की नहीं है। परन्तु सुनते हैं, कविता पढ़ने की इनमें विचित्र शक्ति थी। श्रोताओं के मन में ये शीघ्रही प्रभाव जमा लेते थे।

सं० १६६१, भाद्रपद कृष्ण ११, को इन्होंने अयोध्याजी में शरीर छोड़ा।

इनके रचे कुछ छंद हम नीचे प्रकाशित करते हैं:—

भानुवंश भूषण महीप रामचन्द्र वीर रावरो सुजस फैल्यो आगर उमङ्ग में। कबि लछिराम अभिराम दूना शेषहू सों चौगुनो चमकदार हिमगिरि गङ्ग में॥ जाको भट घेरे तासों अधिक परे हैं और पचगुनो हीरा हार चमक प्रसङ्ग में। चन्द

मिलि नौगुनो नछत्रन सौं सौगुनो ह्वै सहसगुनो भो छीर सागर तरङ्ग मैं ॥ १ ॥

रावन बान महाबली और अदेव औ देवनहूँ दृग जोस्यो।
तीनहूँ लोकन के भट भूप उठाय थके सबको बल छोस्यो॥
घोर कठोर चितै सहजै लछिराम अमी जस दीपन घोस्यो।
रामकुमार सरोज से हाथन सों गहिशंभु सरासन तोस्यो ॥२॥

भरम गंवावै झरबेरी संग नीचन ते कंटकित बेल केत-कीन पै गिरत है। परिहरि मालती सु माधवी सभासदनि अधम अरूसन के अंग अभिरत है॥ लछिराम सोभा सरवर में विलास हेरि मूरख मलिन्द मन पल ना थिरत है। राम-चन्द्र चारु चरनाम्बुज बिसारि देश बन बन बेलिन बबूर में फिरत है ॥ ३ ॥

सजल रहत आप औरन को देत ताप बदलत रूप और बसन बरेजे मैं। तापर मयूरन के झुंड मतवाले साले मदन मरोरैं महा झरनि मरेजे मैं॥ कवि लछिराम रंग साँवरा सनेही पाय अरज न माने हिय हरष हरेजे मैं। गरजि गरजि बिरहीन के विदारें उर दरद न आवै धरे दामिनी करेजे मैं ॥ ४ ॥

बदल्यो बसन सो जगत बदलोई करै आरस में होत ऐसो यामे कहा छल है। छाप है हरा की कै छपाए हौ हरा को छाती भीतर झगा के छाई छवि झलाझल है ।। लछिराम हौहूँ धाय रचिहौं बनक ऐसो आँखिन खवाये पान जात क्यों अमल है। परम सुजान मनरंजन हमारे कहा अंजन अधर में लगाये कौन फल है ॥ ५ ॥

गोविन्द गिल्लाभाई

गोविन्द गिल्लाभाई का जन्म सिहोर, रियासत भावनगर में, श्रावण सुदी ११, सं० १६०५ में हुआ था। इनके पिता का नाम गिल्ला भाई था। ये गुजराती हैं। बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी करने के पश्चात् अब दर्शन पाते हैं। गुजराती साहित्य के ये अच्छे मर्मज्ञ और सुकवि हैं। मातृभाषा गुजराती होने पर भी इन्होंने हिन्दी में अच्छे अच्छे काव्य ग्रन्थों की रचना की। इनके रचे हुये ग्रन्थों के नाम ये हैंः–नीति विनोद, शृंगार सरोजिनी, षट् ऋतु, पावसपयोनिधि, समस्या पूर्ति प्रदीप, वक्रोक्ति विनोद, श्लेष चंद्रिका, गोविन्द ज्ञान बावनी, प्रारब्ध पचासा, प्रवीन सागर, बारह लहरी और राधा मुख षोड़शी। राधा मुख षोड़शी से हम इनके कुछ छंद यहाँ उद्धृत करते हैंः–

कोऊ तो कहत छवि सर में सरोज भयो सुखमा सुभग ताकी नीकी निरधार है। कोऊ तो कहत गोल आरसी अमोल ताकी आभा अभिराम अति सोहे सुखकार है। कोऊ तौ कहत चन्द अवनी में उदै भयो ऐसे मुख उपमा को कहत अपार है। गोविन्द सुकवि पर मेरे मन जानि पर्‌यो कनक-लता में फूल लाग्यो आबदार है॥ १॥

सुधा को छिनाइ धरे अपने अधर बीच ताकी मधुराई लखि मिश्री भई मंद है। षोड़श कला को काटि रदन ललित कला बत्तिस बनाई बैठी मंजु मसनंद हैं॥ पोषन की शक्ति पुनि विमल वचन परी लीनी सब सम्पति यों राधे रचि फंद है। गोविन्द सुकवि तवे कालिमा कलंक धरि विचरत ब्योम फरियाद हित चंद है॥ २॥

कौमुदी-कुञ्ज

भोजन ज्यों घृत बिन पंथ जैसे साथी बिन हाथी बिन दल जैसे दास बिन बान है। राव रङ्क रानी बिन कूप जैसे पानी बिन कवि जैसे बानी बिन गर बिन तान है। रसरास रीति बिन मित्र ज्यों प्रतीति बिन व्याह काज गीत बिन माने बिन दान हैं। रंग जैसे केसर बिन मुख जैसे बेसर बिन प्यारी बिन रैन ज्यों सुपारी बिन पान है ॥ १ ॥

विद्या बिन द्विज औ बगीचा बिन आमन को पानी बिन सावन सुहावन न जानी है। राजा बिन राज काज राजनीति सोचे बिन पुन्य की बसीठी कहो कैसे धौं बखानी है। कहैं जयदेव बिन हित को हितू है जैसे साधु बिन संगति कलंक की निशानी है। पानी बिन सर जैसे दान बिन कर जैसे शील बिन नर जैसे मोती बिन पानी है ॥ २ ॥

गुन बिन कमान जैसे गुरु बिन ज्ञान जैसे मान बिन दान जैसे जल बिन सर है। कण्ठ बिन गीत जैसे हेत बिन प्रीत जैसे वेश्या बिन रीत जैसे फल बिन तर है॥ तार बिन यंत्र जैसे स्याने बिन मंत्र जैसे नर बिन नारि जैसे पुत्र बिन घर है। बानी बिन कवि जैसे मन में विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिन पर है ॥ ३ ॥

चन्द्र बिन रजनी सरोज बिन सरवर बेग बिन तुरंग मतंग बिना मद को। बिना सुत सदन नितंबिनी सु पति बिन बिन धन धरम नृपति बिन पद को॥ बिन हरि भजन जगत सोहै जन कौन नोन बिन भोजन विटप बिना छद

को। प्राणनाथ सरस सभा न सोहै कवि बिन विद्या बिन बात न नगर बिन नद को ॥ ४ ॥

केते भये यादव सगर सुत केते भये जातहू न जाने ज्यों तरैया परभात की। बलि बेनु अंबरीष मानधाता प्रह्लाद कहाँ लौं गनाओं कथा रावन ययात की ॥ तेऊ न बचन पाये काल कौतुकी के हाथ भाँति भाँति सेना रची घने दुख घात की। चार चार दिना को चबाउ चाहै करै कोऊ अंत लुटि जैहैं जैसे पूतरी बरात की ॥ ५ ॥

गो द्विज को पालैं सन्त मारग में चालैं निज शत्रु दल घालैं रण में तें मन मोरैं ना। सुखद सजीले बीरता में गर-बीले कुल एकहन ढीले हीनताई के निहोरैं ना ॥ जाको सँग धारैं ताको पार निरवारैं दान दाया को संचारैं धर्म धारै तौन छोरैं ना। युद्धन की पत्री सुनि मोद लहैं अत्री अति ऐसे सूर छत्री समता में और जोरैं ना ॥ ६ ॥

ऐंठे ऐंठे बोलैं अधिकर निज खोलैं कहे काम को न डोलैं समझाय जब हारिये। द्विज कौन होते कुल चीकने न मोते इहि भाँति भाषि सोते में मसाल एक बारिये ॥ तुरत जगाय ताके मुख में लगाय दीजे जनन भगाय छन एक लौं निहारिये। जानो महा खोटा चट पकरि कै झोंटा ताको ऐसे खूद सोंटा जोहि जूतन सुधारिये ॥ ७ ॥

न्याव नित साँचे बलदेव रंगराचे मामिला को खूब जाँचे हाल बाँचे ते विशेखा मैं। रुचत न रारी उपकारी श्रुति भारी भाव वंश धन धारी कृतिकारी रीति रेखा मैं ॥ जागो यश वेश त्यों बड़ाई देश देश काहू पच्छ को न पेश औ न लेश लोभ लेखा मैं। सम रङ्क भूप झगरे को करैं कूप तेई ईश्वर के रूप हैं अनूप पंच देखा मैं ॥ ८ ॥

भाँड़न को भेंटे तिमि मेटे मरजाद दुष्ट लोभ के लपेटे बेटे काके बने काजी हैं। न्याव मुख देखा कियो रोखन की रेखा कियो लुञ्जन में लेखा कियो कैसे मूढ़ माजी हैं॥ लोक में न माल परलोक त्यों न पाल कछु पूछते न हाल ठये चाल जालसाजी हैं। दे तो ताहि राजी करैं केतो कहो नाजी करैं चेतो दगाबाजी करैं ए तो पंच पाजी हैं॥ ६॥

सुंदर सुभग तन सुखद मुदित मन आनँद के घन धन छन हित साज हैं। दाया दानधारी बलदेव उपकारी जग भारी भीर टारी सुचि सील के समाज हैं॥ देशकाल जानैं तिमि ओषधि विधानैं सब ही को सनमानैं ठानैं गुण सिरताज हैं। विशद विचारैं त्यो अचारैं श्रो संचारैं चारु सेई सिद्ध भेई लघु तेई वैद्यराज हैं॥ १०॥

नारी नहिं जानत अनारी कहे गारी देत तारी दै हँसत हैं हजारन को मारा मैं। झोली बीच गोली तौन गोली सी लगत यह तोली कई बार गई प्राणन को पारा मैं॥ करनी यही है घर घरनी रिझैबे जोग बसु बैतरनी मिले हिये मैं बिचारा मैं। बैठे हैं बधिक से बिसारे बकरूप बनि ऐसे बैद्यराज को बहावै बारिधारा मैं॥ ११॥

आजु जो कहैं तो आठ मास में न लागे ठीक कालिह जो कहैं तो मास सोरह चलावहीं। पाँच दिन कहे पाँच बरस बिताय देहिँ पाँच वर्ष कहैं तो पचास पहुँचावहीं॥ भाषत प्रधान जोवै ताहू पै न त्यागै द्वार आपन लजात फेर वाहू को लजावहीं। ऐसे सत्यभाषी सरदार हैं देवैया जहाँ काहे को पवैया तहाँ जीवत लौं पावहीं॥ १२॥

भाँड़न को भोज कलावंतन को कर्ण जैसे विश्वन को बेनु से उरोज रस लीबे को। बेड़िन के बिक्रम औ रामजनी

जयचंद चुगुल को चतुरभुज भारी मौज कीबे को ॥ कहै अव-सेरी मसखरन को मग जैसे चलै विपरीत धिरकार ऐसे जीबे को। सूम के रहत दुइ बातन की तंगी एक ईश्वर निमित्त औ कवीश्वर को दीबे को ॥ १३ ॥

जगत के कारन करन चारों वेदन के कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै। पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के समुद में जाय सोये सेज सेस करि कै ॥ मदन जरायो औ सँहाऱ्यो दृष्टि ही सों सृष्टि बसे हैं पहार वेऊ भाजि हर-बरि कै। विधि हरि हर बढ़ इनतें न कोऊ तेऊ खाट पै न सोवैं खटमलन सौं डरि कै ॥ १४ ॥

जानै राग रागिनी कवित्त रस दोहा छंद जप तप तेग त्याग एक सो गतन का। महबूब उरझि न देखि सके मित्रन की चित्त हर भाँति मैं रिझैया नुकतन का ॥ जासे जो कबूलै सो न भूलै, भूलैं माफ़ करै साफ़ दिल आकिल लिखैया हरफन का। नेकी से न न्यारा रहै बदी से किनारा गहै ऐसा मिलै प्यारा तो गुजारा चलै मन का ॥ १५ ॥

कूर भये कुँवर मजूर भये मालदार सूर भये गुपत असूर भये जबरे। दाता भये कृपन अदाता कहैं दाता हम धनी भये निधन निधन भये गबरे ॥ साँचन की बात ना पत्यात कोऊ जग माँझ राज दरबारन बुलैये लोग लबरे। भनत प्रबीन अब छीन भई हिम्मत सो कलियुग अदलि बदलि डारे सिगरे ॥ १६ ॥

बारी और खँगार नाऊ धीमर कुम्हार काछी खटिक दसौंधी ये हुजूर को सुहात हैं। कोल गोंड़ गूजर अहीर तेली नीच सबै पास के रहे ते कहा ऊँचे भये जात हैं॥ बुद्धि-सेन राजनि के निकट हमेस बसैं कूकर बिलार कहा गुण

अधिकात हैं। दूरहि गयंद बाँधे दूर गुनवान ठाढ़े गज औ गुनो के कहा मोल घटि जात हैं ॥ १७ ॥

मद के भिखारी मीन माँस के अहारी रहै सदा अनाचारा चारी लिखते लिखावते। नारी कुल धाम की न प्यारी परनारी आग विद्या पढ़ि पढ़ि हू कुविद्या मति धावते ॥ आँखिन को काजर कलम से चुराय लेत ऐसे काम करै नेकु शंकहु न आवते। जो पै सिंहबाहिनी निबाहिनी न होतो चंद कायथ कलंकी काके द्वारे गति पावते ॥ १८ ॥

सखी उरबसी सी गरे पहिरे उरबसी सी पिया उरबसा सी छवि देखे दुख सरकि जात। कंचुकी कसीसी बहु उपमा लसीसी रूप सुन्दर धसीसी परयंक पर थिरकि जात ॥ कहै हरचरन रही चमक बतीसी प्यारी जामें लगी मीसी हिये सौतिन दरकि जात। भुज में कसीसी सिंधु गङ्ग ज्यों धँसी सी जाके सीसी करिबे में सुधा सीसी सी ढरकि जात ॥ १९ ॥

कुंद की कली छी दंत पाँति कौमुदी सी दीसी बिच बिच मीसी रेख अमीसी गरकि जात। बीरी त्यों रची सी बिरची सी लखैं तिरछी सी रीसी आँखियाँ वै सफरीसी फरकि जात। रस की नदी सी "दयानिधि" की नदी सी थाह चकित अरी सी रति डरी सी सरकि जात। फन्द में फँसी सी भरि भुज में कसीसी जाकी सीसी करिबे में सुधा सीसी सी ढरकि जात ॥ २० ॥

सुनो हो विटप हम पुहुप निहारे अहैं राखिहौं हमैं तो शोभा रावरी बढ़ावेंगे। तजिहौ हरषि कै तो बिलग न मानैं कछु जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो यश गावेंगे। सुरन चढ़ैंगे नर सिरनि चढ़ेंगे नित सुकवि "अनीस" हाथ हाथन बिकावेंगे।

देशमें रहैंगे, परदेश में रहैंगे काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावेंगे ॥ २१ ॥

सुमन मैं बास जैसे सु-मन मैं आवै कैसे ना कह्यो चहत सो तो हौं कह्यो चहत है। सुरसरि सूरतनया में सुरसति जैसे बेद के बचन बाँचे साँचे निबहत है। परवा को इन्दु की कला ज्यों रहै अंबर मैं पर वाको अच्छ परतच्छ ना लहत है। बुद्धि अनुमान के प्रमान पर ब्रह्म जैसे ऐसे कटि छीन कवि "मीरन" कहत हैं ॥ २२ ॥

लट की लरक पर भौंह की फरक पर नैन की ढरक पर भरि भरि ढारिये। "हरिकेस" अमल कपोल विहँसन पर छाती उससन पर निसक पसारिये ॥ गहरौही गति पर गह-रौही नाभि पर हौं न हटकति प्यारे नैंसुक निहारिये। एक प्रानप्यारी जू की कटि लचकीली पर ढीली ढीली नजर सँभारे लाल डारिये ॥ २३ ॥

आये सुख पावती न आये सुख पावती हैं हिय की न बात कछु "सेवक" जतावतीं। कहूँ रहौ कान्ह जू सुहागिन कहावती हैं चाहती हैं यही और बात न बनावतीं ॥ जाके सुख पाये सुख पावो तुम प्यारे लाल वाहू सुख दीजिये न या मैं भरमावती ॥ जामैं सुख पावो तुम सोई हम करैं याते हमतौ तिहारे सुख पाये सुख पावती ॥ २४ ॥

खात हैं हरामदाम करत हराम काम घर घर तिनहीं के अपजस छावेंगे। दोजख में जैहैं तब काटि काटि कीड़े खैहैं खोपरी को गूद काग टोटनि उड़ावेंगे ॥ कहैं करनेस अबैं घूसनि तें बाजि तजै रोजा औ निमाज अंत जम कढ़ि लावेंगे। कबिन के मामले में करैं जौन खामी तौन नमकहरामी मरे कफन न पावेंगे ॥ २५ ॥

उमड़ि घुमड़ि घन आवत अटान ओट, छन घन जोति छटा छटकि छटकि जात। सोर करैं चातक चकोर पिक चहूँ ओर मोर ग्रीव मोरि मोरि मटकि मटकि जात ॥ सावन लौं आवन सुनो हैं घनश्याम जू को आँगन लौं आय पाय पटकि पटकि जात। हिये विरहानल की तपनि अपार उर हार गज मोतिन के चटकि चटकि जात ॥ २६ ॥

ऊँचो कर करै ताहि ऊँचो करतार करै ऊनो मन आनै दूनी होति हरकति है। ज्यों ज्यों धन धरै सैंचै त्यों त्यों विधि खरो खैंचै लाख भाँति भरै कोटि भाँति सरकति है ॥ दौलति दुनी में थिर काहू के न रही "क्षेम" पाछे नेकनामी बदनामी खरकति है। राजा होइ राइ होइ साह उमराइ होइ जैसी होति नेति तैसी होति बरकति है ॥ २७ ॥

तारे भये कारे तेरे नैना रतनारे भये मोती भये सीरे तू न सीरी अजहूँ भई। "छीत" कहै पीतमैं चकैया मिली तू न मिली गैया तरु छूटी तेरी टेक ना छुटी दई ॥ अरुनई नई तेरी अरु-नई नई भई चहचही बोली आली तू न बोली ऐ बई। मंद छवि भये चंद फूले अरविन्द वृन्द गई री विभावरी न रिस रावरी गई ॥ २८ ॥

हाथी के दाँत के खिलौना बनैं भाँति भाँति बाघन की खाल तपी शिव मन भाई है। मृगन की खालन को ओढ़त हैं योगी यती छेरी की खाल थोरा पानी भरि लाई है ॥ साबर की खालन को बाँधत सिपाही लोग गैंड़ा की खाल राजा रायन सुहाई है। कहै कवि "दयाराम" राम के भजन बिन मानुस की खाल कछु काम नहिँ आई है ॥ २९ ॥

जस को सवाद जो पै सुनो कवि आनन सों रस को सवाद जो पै और को पिआइये। जीभ को सवाद बुरो बोलिये

न काहू कहूं देह को सवाद जो निरोग देह पाइये ॥ घर को सवाद घरनी को मन लिये रहै धन को सवाद सीस नीचे को नवाइये । कहै "द्विजराम" नर जानि कै अजान होत खैबे को सवाद जो पै और को खवाइये ॥ ३० ॥

कौशल कुमार सुकुमार अति मारहू ते आली घिरि आई जिन्हैं शोभा त्रिभुवन की । फूल फुलवाई में चुनत दोउ भाई प्रेम सखी लखि आई गहे लतिका द्रुमन की । चरन लुनाई दृग देखे बनि आई जिन जीती कोमलाई औ ललाई पदुमन की । चलत सुभाई मेरो हियरा डराई हाय गड़ि मति जाय पाय पाँखुरी सुमन की ॥ ३१ ॥

आजु आली माथे ते सुबेंदी गिरै,बार बार मुख पर मोतिन की लरी लरकति है । धरत ही पग कील चूरे को निकासि जाति जब तब गाँठ जूरे हू की भरकति है । जानि ना परत " प्रहलाद " परदेश प्रिय उभसि उरोजन सों आँगी दरकति है । तनी तरकति कर चूरा चरकति अंग सारी सरकति आँखि बाईं फरकति है ॥ ३२ ॥

म्यान सों कलमदान करतें निकारि तामें स्याही जल त्रिष में बुझाई डार डार है चारु युक्ति जौहर जगावत सनेह संग अकिल अनेक तामें सिकिल सुढार है॥ "जुगुल किशोर" चलै कागद धरा पै धाय धारैं ना दया को नेकु लागे वार पार है । पाइ कै गँवार गाइ साफ करैं साइति में मुनसी कसाई की कलम तरवार है ॥ ३३ ॥

बड़े बिभिचारी कुल कानि तजि डारी निज आतम बिसारी अघ ओघ के निकेत हैं । जटा सीस धारें मीठे बचन उचारें न्यारे न्यारे पंथ पारें सुभ पंथ पीठ देत हैं ॥ गावत कहानी वेद को न मानो ऐसे उमर बिहानी होत आये

बार सेत हैं। कलि ठकुराई में बिराग की बड़ाई करें माई माई करिकै लुगाई करि लेत हैं॥ ३४॥

जोरपरे जोर जात भरःपरे भूमि जात झूमि जात योबन अनंग रंगरस है। कहैं हेमनाथ सुख सम्पति बिपति जात जात दुःखदारिद्र समूह रसबस है॥ गढ़ गिरिजात गरुआई औ गरब जात जात सुख साहिबी समूह सरबस है। बाग कटि जात कुवाँ ताल पटिजात नद्दीनद घटि जात पै न जात जग जस है॥ ३५॥

पौर के किवार देत घरे सबै गारि देत साधुन को दोष देत प्रीति ना चहत हैं। माँगने को ज्वाब देत बात कहे रोय देत लेत देत भाँज देत ऐसे निबहत हैं। बागे हू के बंद देत बारन की गाँठ देत परदन की काँछ देत काम में रहत हैं। एतेपै सबेई कहैं लाला कछू देत नाहीं लाला जू तो आठोयाम देतई रहत हैं॥ ३६॥

अगन बचाये शुभ चारा गन नाये अरु उक्ति उपजाय के बिसारे नाम हरि का। लोभ के अज्ञान में सयान सब भूलि गये कीबे परे ऐसई अधम ऐसे अरि का। कहैं कबि लोग हम दान की कहाँ लौं कहौं माँगे से न दियो जाय जासों टूक खरिका। सूमके कबित्त करि मन में गलानि होत परै पछिताय-बो छिनारि कैसो लरिका॥ ३७॥

दाता घर होती तौ क़दर तेरी जानी जाती आई है भले घर बधाई बजवावरी। खाने तहखानन में आनि के बसेरा लेहु होहु ना उदास चित चौगुनो बढ़ावरी॥ खैहौं ना खवैहों मरि जैहौं तौ सिखाय जैहौं यहि पूत नातिन को आपनो सुभा-वरी। दमरी न दैहौं कबौं जाने में भिखारिन को सूम कहै सम्पति सों बैठी गीत गावरी॥ ३८॥

राजन की नीति गई मीत की प्रतीति गई नारिन की प्रीति गई जार जिय भायो है। शिष्यन को भाव गयो पंचन को न्याव गयो साँच को प्रभाव गयो झूँठ ही सुहायो है॥ मेघन की वृष्टि गई भूमि सो तौ नष्ट भई सृष्टि पै सकल बिपरीति दरसायो है। कीजिये सहाय हे कृपा कर गोबिन्द लाल कठिन कराल कलिकाल अब आयो है॥ ३६॥

पन्ना के पंडोर गढ़ झन्ना के झवैया झरि झारूदार झाँसी के भवैया भानपुर के। कहैं कबि कुन्दन कमायूँ के कुम्हार भाँड़ दाउद के दरजी दमामी दानपुर के॥ तेली तिलंगान के तँबोली तेजगढ़ वाले भावज के भाँगड़ सोनार सानपुर के। ऐते मिलि मारैं जूतो चुगुल चबाई शीश कालपी के कूँजड़े कसाई कानपुर के॥ ४०॥

ह्वै कै महाराज हय हाथी पै चढ़ै तो कहा जोपै बाहुबल निज प्रजनि रखायो ना। पढ़ि पढ़ि पण्डित प्रवीण हू भये तो कहा बिनय बिबेक युत जो पै ज्ञान गायो ना॥ "अम्बुज" कहत धनधनिक भयो तो कहा दान करि जोपै निज हाथ जस छायोना। गरजि गरजि घनघोरनि कियो तो कहा चातक के चोंच में जु रंच नीर नायो ना॥ ४१॥

जामें दू अधेलो चार पावली दुअन्नी आठ तामें पुनि आना रखी सोरह समात हैं। बत्तिस अधन्नी जामे चौंसठ पईसा होत एक सो अठाइस अधेला गुनमात हैं॥ युग शत छप्पन छदाम तामे देखियत दमरी सु पाँच शत बारह लखात हैं। कठिन समैया कलिकाल को कुटिल दैया सलग रुपैया भैया कापै दियो जात है॥ ४२॥

दानी कोउ नाहिंन गुलाबदानी पीकदानी गोंददानो घनी शोभा इनही में लहे हैं। मानत गुणी को गुण ही में प्रकटत

देखो याते गुणी जन मन सावधानो गहे हैं। हयदान हेमदान राजदान भूमिदान सुकबि सुनाये औ पुराणन में कहे हैं। अबतो कलमदान जुजदान जामदान खानदान पानदान कहिबे को रहे हैं॥ ४३॥

चन्द्रमा पै दावा जिमि करत चकोर गण घनन पै दावा कै मयूर हरषात हैं। भानु पर दावा कर बिकसत कंज पुञ्ज स्वाति बुन्द दावा कर चातक चचात हैं। सुकबि निहाल जैसे करी के कपोलन पै अलिन अवलि करि नित मड़रात हैं। ऐसे महाराजन पै दावा कबिराजन को धूतन के द्वारे कहूँ मूतन न जात हैं॥ ४४॥

शाह भये सूमड़ा सु बादशाह हीन हद्द खग्गे खगरेटन दुशाला बेंच खाई है। भोले भये भूपति कनौड़े धनोवन्त सब मूरख महन्थ अन्ध देत ना दिखाई हैं। कायथ कपूत भये कूर रजपूत धूत बनिया बरूथ पेखि पुञ्ज पछिताई है। काके ढिग जाई काहि कबित सुनाई भाई अब कविताई रही फजिहतिताई है॥ ४५॥

सासु के बिलोके सिंहिनी सी जमुहाई लेइ ससुर के देखे बाघिनो सी मुँह बावती। ननँद के देखे नागिनी सी फुफकारे बैठि देवर के देखे डाँकिनी सी डरपावती॥ भनत प्रधान मोछैं जारती परोसिन की खसम के देखे खाँव खाँव करि धावती। करकसा कसाइन कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती॥ ४६॥

गृहिनि बियोग गृह त्यागिन विभूति दीन्हीं योगिन प्रमोद पुनवंतन छलो गयो। ग्रहनि ग्रहेश कियो शनि को सुचित्त लघु व्यालनि स्वतंत्र सेस भारतें दलो गयो॥ "फेरन" फिरावत गुनीन गृह नीच द्वार गुनन बिहीन घर बैठेही भलो

भयो। कौन कौन बातें तेरी कहैं एक आनन तें नाम चतुरानन पै चूकतै चलो गयो ॥ ४७ ॥

बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि हुंकरत बाघ बिरझानो रस रेला में। "भूधर" भनत ताकी बास पाइ सोर करि कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में ॥ फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों जंग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला में। आपस में पारषद कहत पुकारि कछु रारि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में ॥ ४८ ॥

कंज वन मानि "मून" हंस गन आइ फिरे गंध बन भृंग भीर भंग करि डारे तैं। पाके फल जानि सुक पुंज पछिताने आइ पाइ कै बसंत बात बृथा पात डारे तैं। दूरि तें बिलोकि अरुनाई अति फूलन को अमिष अकार गीध बायस बिडारे तैं। एरे तरु सेमर के सिफत तिहारी कहा आस दिये पच्छिन निरास करि डारे तैं ॥ ४९ ॥

समै को न जानै सीख काहू की न मानै रारि कठिन को ठानै सो अजानै भई जाति है। पीछे पछितैहै घात ऐसी नहिँ पैहै टेक तेरी रहि जैहै कहा टेढ़ी भई जाति है॥ "संगम" मनावै तोहिँ हित की सिखावै सीख जा बिन न भावै भौन ताहीं सों रिसाति है। मोसों अठिलाति बिन काम को हठाति प्यारी तू तो इतराति उतराति बीती जाति है ॥ ५० ॥

काके गये बसन पलटि आये बसन सु मेरो कछु बसन रसन उर लागे हो। भौंहैं तिरछी हैं कवि सुन्दर सुजान सोहैं कछु अलसौहैं गो हैं जाके रस पागे हो ॥ परसौं मैं पाँयहुते परसों पैं पाय गहि परसौंये पाय निसि जाके अनुरागे हो। कौन बनिता के हो जू कौन बनिता के हो सु कौन बनिता की बनिताके संग जागे हो ॥ ५१ ॥

चोंथते चकोर चहुँ ओर जानि चंदमुखी जौ न होती डरनि दसन दुति दम्पा की। लीलि जाते बरही बिलोकि बेनी बनिता की जौ न होतो गूथनि कुसुम सर कम्पा की। "पूखी" कवि कहै ढिग भौंहैं ना धनुष होती कीर कैसे छोड़ते अधर बिम्ब झम्पा की। दाख कैसो झौंरा झलकति जोति जोबन की चाटि जाते भौंरा जो न होती रंग चम्पा की ॥ ५२ ॥

सोये लोग घर के बगर के केवार खोलि जानि मन माहिँ निज गई जुग जामिनी। चुप चाप चोरा चोरी चौंकत चकित चली पीतम के पास चित चाह भरी भामिनी। पहुँची संकेत के निकेत "संभु" सोभा देत ऐसी बन वीथिन बिराजि रही कामिनी। चामीकर चोर जान्यो चंपलता भौंर जान्यो चन्द्रमा चकोर जान्यो मोर जान्यो दामिनी ॥ ५३ ॥

तन पर भार तीन तन पर भार तीन तन पर भारतीन तन पर भार हैं। पूजैं देवदार तीन पूजैं देवदार तीन पूजैं देवदार तीन पूजैं देवदार हैं। नीलकंठ दारुन दलेल खाँ तिहारी धाक नाकतीं न द्वार ते वै नाकतीं पहार हैं। आँधरे न कर गहैं बहिरे न सँग रहैं बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं ॥ ५४ ॥

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं। देवपूजा ठानी मैं निवाज हू भुलानी तजे कलमा कुरान साड़े गुनन गहूँगी मैं॥ स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्है दिये तेरे नेह दाग मैं निदाग तो दहूँगी मैं। नन्द के कुमार कुरबान ताँड़ी सूरत पै ताँड़ नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं ॥५५॥

कोऊ कहै है कलंक कोऊ कहै सिंधु पंक कोऊ कहै छाया

है तमेगुन के भासकी। कोऊ कहै मृगमद कोऊ कहै राहु रद कोऊ कहै नीलगिरि आभा आसपास की। भंजन जू मेरे जान चंद्रमा को छीलि विधि राधे को बनायो मुख सोभा के बिलास की। तादिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के वार पार दीखत है नीलिमा अकास की ॥ ५६ ॥

मलयज गारा करैं अंगन सिँगारा करैं गहि कर डारा करैं माल मुकतान की। आरती उतारा करैं पंखा चौर ढारा करैं छाँहैं बिसतारा करैं विसद बितान की॥ मुख सों निहारा करैं दुख को बिसारा करैं मनसा इसारा करैं सारा अँखियान की। मानिक प्रदीपन सों थारा साजि ताराजू की आरती उतारा करैं दारा देवतान की ॥ ५७ ॥

कैधों द्रग सागर के आसपास स्यामताई ताही के ये अंकुर उलहि दुति बाढ़े हैं। कैधों प्रेमक्यारी जुग ताके ये चहूँघा रची नीलमनि सरनि कौ बारि दुख डाढ़े हैं॥ मूरित सुकवि तरुनी की बरुनी न होवै मेरे मन आवै ये बिचार चित गाढ़े हैं। जेई जे निहारे मन तिनके पकरिबे को देखो इन नैनन हजार हाथ काढ़े हैं ॥ ५८ ॥

एरे गुनी गुन पाइ चातुरी निपुन पाइ कीजिए न मैलो मन काहू जो कछू करी। बीरन बिराने द्वार गए को सुभाव यही मान अपमान काहू रे करी कि जू करी ॥ कूर औ कविन्द चले जात हैं सभा के बीच तोसों तो हटकि देवीदास पलटू करी। दरवाजे गज ठाढ़े कूकरी सभा के मध्य कूकरी सो कूकरी औ तू करी सो तू करी ॥ ५६ ॥

भोरहिं भुखात ह्वै हैं कन्द मूल खात हैं हैं दुति कुम्हलात ह्वै हैं मुख जलजात को। प्यादे पग जात ह्वै हैं मग मुरझात ह्वै हैं थकि जै हैं घाम लागे स्याम कृस गात को। पंडित

प्रवीन कहै धर्म के धुरीन ऐसे मन में न माल्यो पीन राख्यो प्रन तात को। मात कहैं, कोमल कुमार सुकुमार मेरे छौना कहूँ सोवत बिछौना करि पात को ॥ ६० ॥

चन्द्रिका चकोर देखे निसि दिन करै लेखे चंद बिन दिन छिन लागत अंध्यारी है। "आलम" सुकवि कहै अलि फूल हेत गहै काँटे सी कटीली वेलि ऐसी प्रीति प्यारी है। कारो कान्ह कहत गँवार ऐसी लागत है मेरे वाकी स्यामताई अति ही उज्यारी है। मन की अँटक तहाँ रूप को विचार कैसो रीझिबे को पैंड़ो और बूझ कछु न्यारी है ॥ ६१ ॥

आजु हैं। गई ती संभु न्योते नन्दगाँव तहाँ साँसति परी है रूपवती बनितान की। घेरि लियौ तियनि तमासो करि मोहिं लखैं गहि गहि गुलुफ लुनाई तरवान की ॥ एकै कल बोलि बोलि औरन देखावै रीझि रीझि कोमलाई औ ललाई मेरे पानकी। घूँघट उघारि एकै मुख देखि देखि रहैं एकै लगी नापन बड़ाई अँखियान की ॥ ६२ ॥

नट को न धाम न नपुंसक को काम नाहिं ऋणी को अराम वाम वेश्या ना सहेलरी। ज्वारी को न सोच मासहारी को न दया होत कामी को न नातो गोत छाया ना म्हेलरी ॥ देवीदास वसुधा में बनिक न सुना साधु कूकर को धीरज न माया है सहेलरी। चोर को न यार बटमार को न प्रीति होत लाबर न मीत होत सैात न सहेलरी ॥ ६३ ॥

जैसी तेरी कटि है तू तैसी मान करि प्यारी जैसी गति तैसी मति हिअ तें बिसारिये। जैसी तेरी भौंह तैसे पंथ पै न दीजे पाँव जैसे नैन तैसियै बड़ाई उर धारिये। जैसे तेरे ओंठ तैसे नैन कीजिये न जैसे कुच तैसे बैन नाहिँ मुखतें उचारिये।

एरी पिक बैनी सुन, प्यारे मन मोहन सों जैसी तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिये ॥ ६४ ॥

सवैया

१

फूलन दे अब टेसू कदम्बन अम्बन मौरन छावन दे री।
री मधुमत्त मधूपन पुंजन कुंजन सोर मचावन दे री।
क्यों सहि है सुकुमारि "किशोर" अरी कलकोकिल गावन दे री।
आवत ही बनि है घर कंतहि बीर बसंतहि आवन दे री।

२

कानन लौं अंखियाँ ये तुम्हारी हथेरी हमारी कहाँलगिफैलिहैं।
मूँदे तऊ तुम देखति हौ यह कोरे तिहारी कहाँ धौं सकेलिहैं।
कान्हर हू को सुभाव यहै उनको हम हाथन ही पर मेलि हैं।
राधे जू मानो भलो कि बुरो अंखमूंदनोसाथतिहारे न खेलिहैं।

३

अंबुज कंज से सोहत हैं अरु कंचन कुंभ थपे से घये हैं।
बारे खरे गदकारे महा बटपारे लसे अरु मैन छये हैं।
ऊँचे उजागर नागर हैं अरु पीय के चित्त के मित्त भये हैं।
हैं तो नये कुच ये सजनी पर जौलौं नए नहिं तौ लों नये हैं।

४

खाय कै पान विदोरत ओंठ हैं बैठि सभा में बने अलबेला।
धोती किनारी की सारी सी ओढ़त पेट बढ़ायकियो जसथैला।
"वंशगोपाल" बखानत है सुनो भूप कहाय बने फिर छैला।
सान करैं बड़ी साहिबी की पर दान में देत न एक अधेला।

५

होत ही प्रात जो घात करै नित पार परोसिन सों कलगाढ़ी।
हाथ नचावति मूड़ खुजावति पौंरि खड़ी रिस कोटिक बाढ़ी।

ऐसी बनी नखतैं सिखलौं "ब्रजचंद" ज्योंक्रोधसमुद्रतेंकाढ़ी।
ईंट लिये बतराति भतार सों भामिनि भौन मेंभूत सी ठाढ़ी।

६

लोहे की जेहरि लोहे की तेहरि लोहे की पाँव पयेंजनि गाढ़ी।
नाक में कौड़ी औ कानमेंकौड़ीत्यौंकौड़िनकीगजरागतिबाढ़ी।
रूप मैं वाको कहाँ लौं कहैां मनो नील के माठमें बोरिकैकाढ़ी।
ईंट लिये बतलाति भतार सों भामिनि भौन में भूत सी ठाढ़ी।

७

"भूप"कहै सुनियो सिगरेमिलि भिच्छुक बीच परौ जिन कोई।
कोइ परो ता निकाई करौ न निकोई करो तौ रहैा चुप सोई।
जानत हौ बलि ब्राह्मण की गति भूलि कुपंथ भलो नहिं होई।
लेइ कोऊ अरु देइ कोऊ पर शुक्र ने आँखि अकारथ खोई।

८

राधिका माधव एक ही सेज पै धाइलै सोई सुभाय सलोने।
पारे "महाकवि" कान्ह के मध्य में राधे कहै यह बात न होने।
साँवरे सों मिलि ह्वै हैं न साँवरी बावरी बात सिखाई हैं कौने।
सोने को रंग कसौटी लगै पै कसौटी को रंग लगै नहि सोने।

६

बात चली चलिबे की जहाँ फिर बात सुहानी न गात सुहानो।
भूषण साज सकै कहि को "महराज"गयो छुटि लाजकोबानो।
दे कर मीड़ति है बनिता सुनि प्रीतम को परभात पयानो।
आपने जीवन को लखि अंत सु आयु की रेख मिटावति मानो।

१०

कोऊ न आयो उहाँ ते सखीरी जहाँ "मुरलीधर"प्राणपियारे।
याही अंदेसे में बैठी हुती उहि देस के धावन पौरि पुकारे।

पाती दई धरि छाती लई दरकी अंगिया उर आनँद भारे।
पूछन को पिय की कुसलात मनो हिय द्वार किंवार उघारे।

११

मङ्गल होत कहै "शिवराज" कहौ केहि के दुख होत बिसेखो।
कौन सभा महँ बैठि न सोहत को नहिं जानत चित्त परेखो।
कौन निसा ससि को न उदोत भो का लखिकै बिरहीदुख पेखो।
बाँझक पूत बिना आँखियान कुहू निसि में ससि पूरण देखो।

१२

जोग अजोग बिचारे बिना सिर सौंपत भार महा अति तापै।
गाड़र ऊँट किसान करै यह बात कहा कहि जात है कापै।
"सिंह" जू काग सुहावन होइ तौ काहे को कोऊमरालहिथापै।
काम परे पछिताहिँगे वे जे गयंद को भार धरैं गदहा पै।

१३

सासु रिसाति भकै ननदी सखितू सिखवै सिखसीखकेबैना।
दै ब्रजवास चबाव महा चहुं ओर चलै उपहास की सैना।
देखत सुन्दरी साँवरी मूरति लोक अलोक की लीक लखै ना।
कैसी करौं हटके न रहैं चलि जात तऊ लखि लालची नैना।

१४

जाके लगै गृह काज तजै अरु मात पिता हित तान न राखै।
"सागर" लीनह्वै चाकर चाहकै धीरजहीन अधीन ह्वै भाखै।
व्याकुल मीन ज्यों नेह नवीन में मानो दई बरछीन की साखैं।
तीर लगै तरवारि लगै पै लगै जनि काहू से काहू की आँखैं।

१५

जाके लगै सोइ जानै व्यथा पर पीर में कोइ उपहास करै ना।
"सागर" जो चुभि जात है चित्त तौ कोटि उपाय करैपै टरै ना।

नेकसी कंकरी जाके परै वह पीर के मारे सुधीर धरै ना।
कैसे परै कल ऐरी भटू जब आँखि में आँखि परै निकरै ना।

१६

पेट पिराय तौ पीठहिँ टोवत पीठ पिराय तौ पायं निहारैं।
दै घुरिया पहले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग बिचारैं।
बीस रुपैया करें कर फ़ीस न देत जवाब न त्यागत द्वारैं।
भाखैं "प्रधान" ये वैद्य कसाई ह्वै दैव न मारैं तो आपही मारैं।

१७

सूल सुजाक छई लकवा ज्वर पीनस पील को घाव घनेरे।
और जलंदर हू परमेह कहै कवि "राम" कहाँ लगि हेरे।
जाके बिलोकत ही ततकाल चहूँ दिसि तें दुख आवत घेरे।
जापै दया करि हाथ गहैं तिहि माथ गहैं जमराज सवेरे।

१८

साल छः सात की दाल दराय कै साहु कह्यो यह लेहु नई है।
फूँक दई लकड़ी बहुतेरिक साँझ ते आधिक रात लई है।
खाय लियो अकुताय कै काचही चाकरी चूल्हे निहारि गई है।
खोय दियो मुजरा दरबार को दाल दधीच की हाड़ भई है।

१६

ग्रोड़ गिर्यो घर बाहरही महा राज कछू उठवावन पाऊँ।
ऐंड़ो परो बिच पैंडोई माँझ चलै पग एक ना कैसे चलाऊँ।
होय कहाँरन को जुपै आयसु डोली चढ़ाय यहाँ तक लाऊँ।
जीन धरौं कि धरौं तुलसी मुख देउँ लगाम कि राम कहाऊँ।

२०

अर्थ है मूल भली तुक डार सु अच्छर पत्र को देखिकै जीजै।
छंद है फूल नवोरस हैं फल दान के बारिसों सींचिबो कीजै।

दान कहै यों प्रवीनन सों कवि को कविता रस राखिकै पीजै।
कीरति के बिरवा कवि हैं इनको कबहूँ कुम्हिलान न दीजै।

२१

ज्ञान घटै ठग चोर को संगति मान घटै पर गेह के जाये।
पाप घटै कछु पुन्य किये अरु रोग घटै कछु औषध खाये।
प्रीति घटै कछु माँगन तें अरु नीर घटै रितु ग्रीषम आये।
नारि प्रसंग तें जोर घटै जम त्रास घटै हरि के गुन गाये।

२२

ईंटको बन्दन, नीम को चन्दन, नीचको नन्दन, बामकोघूँसा।
मातेकीगान, डफालीकीतान, औगूँगाकोगान, कपूतकोरूसा।
रंककीरीझ, जुआरीकीखीझ, अजानकीप्रीति, जुवारकोचूसा।
राजाकोदूसरो, छेरीकोतीसरो, रेंडकोमूसरो, खासरखूसा।

२३

साँप सुशील, दयायुत नाहर, काकपवित्र औ साँचो जुआरी।
पावक सीतल, पाहन कोमल, रैन अमावस को उजियारी।
कायर धीर, सती गनिका, मतवारो कहा मतवारो अनारी।
"मोतियराम" बिचारिकहैं नहिं देखीसुनी नरनाह की यारी।

२४

ब्याकुल काम सतावत मोंहिं पिया बिन नीक न लागत कोई।
प्रीतम से सपने भई भेंट भलीबिधि सों लपटाय कै सोई।
नैन उघारि पसारि कै देखौं तो चौंकि परी कतहूँ नहिं कोई।
एरी सखी दुख कासों कहों मुसकाय हँसी हँसि कै फिरि रोई।

२५

पौढ़ी हती पलँगा पर मैं निसि ज्ञान-रु ध्यानपिया मन लाये।
लागि गई पलकैं पल सों पल लागत ही पल में पिय आये॥

ज्योंहींउठी उनके मिलिबे कहँ जागि परी पिय पास न पाये।
"मोरन" और तो सोयकै सोवत मैं सखि प्रीतम जागि गँवाये।

२६

भात में लोन पहीति में पाथर डारि करैं सब छूति ही छूकर।
माँगेहूँ सों परसें न कछू खल मैले महा मल को मनो सूकर।
व्यंजन या विधि के हैं रचे मुख सौंह किये मन आवत थूकर।
ये कबहूँ नहिँ दूबर होत रसोई के विप्र कसाई के कूकर।

२७

दाम की दाल छदाम के चाउर घी अँगुरीन लै दूरि दिखायो।
दोनों सो नोन धरयो कछु आनि सबै तरकारी को नाम गनायो।
विप्र बुलाय पुरोहित को अपनी बिपती सब भाँति सुनायो।
साहसी आज सराध कियो सोभलो विधिसोंपुरखा फुसलायो।

२८

बंधु विरोध करें सिगरो झगरो नित होत सुधारस चाटत।
मित्र करै करनी रिपुकी धरनी धर देखि न न्याउ निपाटत।
"राम" कहैं विषहोतसुधाघरनारिसतीपतिसों चित फाटत।
भा विधिना प्रतिकूल जबै तक ऊँट चढ़े पर कूकर काटत।

२६

साल भरे पर पथ्य लियो षट मास उपास कियो फिर ऐंठ्यो।
"माधो" कहै नित मैल छुड़ावत दाँतन दीन्हे तुराय धौं कैठ्यो।
कोऊ कहूँ क जो देइ खवाइ तो कै कर डारत सोच में पैठ्यो।
मूड़ घुटाय औ मूछ मुड़ाय त्यों फस्त खुलाय तुलाचढ़ि बैठ्यो।

३०

चींटि न चाटत मूसे न सूँघत बास ते माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में तबते रहै हैजा परोसिन घेरे।

माटिहू में कछु स्वाद मिलै इन्है खाय सो ढूँढ़त हर्रे बहेरे।
चौंकि पस्यो पितु लोक में बाप सो पूत के देखि सराधके पेरे।

३१

आपु को बाहन बैल बली बनिताहू को बाहन सिहहि पेखिकै।
मूसे को बाहन है सुत एक सु दूजो मयूर के पच्छ बिसेखिकै।
भूषन हैं कवि "चैन" फनिंद के बैर परे सब ते सब लेखि कै।
तीनहुँ लोक के ईश गिरीश सु योगो भये घरकी गति देखिकै।

३२

सूरज के रथ लागे रह्यो याके आगे भयो कई बार कन्हैया।
लोमशके लरिकाई के खेल को भूलि गयो जग को उपजैया।
ऐसो तुरंग मँगाय के भूपति दान को काढ़ो दरिद्र को छैया।
झुंडन काक लगे फिरैं संग मनो यह काक भुशुंडि को भैया।

३३

गंग नहीं मुकता भरी माँग है चन्द्र नहीं यह उद्यत भाल है।
नील नहीँ मखतूल को पुंज है शेष नही शिर बेनी बिशाल है।
भूति नहीं मलयागिरि है बिजया है नहीं बिरहा से बेहाल है।
एरे मनोज सँभारि के मारियो ईश नहीं यह कोमल बालहै।

३४

पीनसवारो प्रवीन मिलै तौ कहाँ लौं सुगन्धी सुगन्ध सुँघावै।
कायर कोपि चढ़ै रन में तौ कहाँ लगि चारण चाव बढ़ावै।
जैसे गुणीकोमिलैनिगुणी तौ"पुखी"कहै क्यों करताहिरिझावै।
जैसे नपुंसक नाह मिलै तौ कहाँ लगि नारि शृङ्गार बनावै।

३५

जौ सहजै सब काम करैं सहमैं त्यहि हेरि हिये कहला कर।
ना तौ जबान की नोकैं बसैं निरखे परैं औगुनके अति आकर।

लागैं नहीं संग जागैं न नौकरीभागैं कहूँ नृपको लखि साँकर।
चोर चमार से चूल्हे परैं यहि भाँति चमार से चूतिया चाकर।

३६

सीस कहै परि पाय रहौं भुज यों कहै अङ्क तै जान न दीजै।
जीह कहै बतियाई कियो करौं स्रौन कहै उनही की सुनीजै।
नैन कहै छवि सिन्धु सुधारस को निसिबासर पान करीजै।
पायहु प्रीतम चित्त न चैन यों भावतो एक कहा कहा कीजै।

३७

अम्बर बीच पयोधर देखि कै कौन को धीरज सो न गयो है।
भंजन जू नदिया यहि रूप की नाव नहीं रवि हू अथयो है।
पंथिक राति बसो यहि देस भलो तुमको उपदेस दयो है।
या मग बीच लगै वह नीच जु पावक में जरि प्रेत भयो है।

३८

तुम नाम लिखावती ही हम पै हम नाम कहा कहो लीजियेजू।
अब नाव चले सिगरे जल में थल में न चले कहा कीजिये जू।
कवि किंचित औसर जो अकती सकती नहीं हां पर कीजियेजू।
हम तो अपनो बर पूजती हैं सपने नहिं पीपर पूजिये जू।

छप्पय

१

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुयश न लीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर काज न कीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर पीर न जानी।
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी।

मुच्छ नाहिँ वे पुच्छ सम कवि भरमी उर आनिये।
नहिँ वचन लाज नहिँ दान गति तिहि मुख मुच्छ न जानिये॥

२

तिमिरलग लई मोल चली बाबर के हलके।
रही हुमाऊँ साथ गई अकबर के बलके।
जहाँगीर जस लियो पीठ को भार मिटायो।
साहजहाँ करि न्याव ताहि को माँड़ चटायो।
बल रहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करिनी सोई लै दीन्हीं कविराज कर।

३

मरै बैल गरियार मरै वह कट्टर टट्टू।
मरै हठीली नारि मरै वह पुरुष निखट्टू।
सेवक मरै सु तौन जौन कछु समै न सुज्झै।
स्वामी मरै जु कौन जौन सेवा नहिं बुज्झै।
यजमान सूम मरि जाय तौ काहि सुमिरि दुख रोइये।
कवि गङ्ग कहै मरि जाय सो जाहि सुने सुख सोइये।

४

शशि कलक रावन विरोध हनुमन्त सो बनचर।
कामधेनु ते पशू जाय चितामनि पत्थर।
अति रूपा तिय बाँझ गुनी को निरधन कहिये।
अति समुद्र सो खार कमल बिच कंटक लहिये।
जाये जु व्यास खेवट्टिनी दुर्वासा आसन डिग्यो।
कवि गीध कहै सुनु रे गुनी कोउ न कृष्ण निर्मल गढ्यो।

५

हंसहिँ गज चढ़ि चल्यो करी पर सिंह बिरज्जै।
सिंहहिं सागर धर्यो सिंधु पर गिरि द्वै सज्जै॥

गिरिवर पर इक कमल कमल पर कोयल बोलै।
कोयल पर इक कीर कीर मृगहू डोलै।
ता ऊपर शिशु नाग के निसु दिन फनिय धरे रहैं।
कवि गड्डु कहै गुनि जनन सों हंस भार केतो सहैं॥

दोहे

प्रीतम नहीं बजार में वहै बजार उजार।
प्रीतम मिले उजार में वहै उजार बजार॥ १॥
कहा करौं बैकुंठ लै कलपवृक्ष की छाँह।
"अहमद" ढाँक सुहावने जहँ पीतम गलबाँह॥ २॥
गमन समै पटुका गह्यो छाड़न कह्यो सुजान।
प्रान पियारे प्रथम ही पटुका तजौं कि प्रान॥ ३॥
सरस कविन के हृदय को बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो समझवार को मौन॥ ४॥
पिता नीर परसै नहीं दूर रहै रवि यार।
ता अम्बुज में मूढ़ अलि उरझि परै अविचार॥ ५॥
"व्यास" बड़ाई जगत की कूकर की पहिँचान।
प्यार करे मुख चाटई बैर करे तन हानि॥ ६॥
"व्यास" कनक औ कामिनी ये हैं करुई बेलि।
बैरी मारै दाँव दै ये मारैं हँसि खेलि॥ ७॥
तन ताजी असवार मन नयन पियादे साथ।
यौवन चलो शिकार को बिरह बाज लै हाथ॥ ८॥
तन कंचन को महल है तामें राजा प्रान।
नयन झरोखा पलक चिक देखैं सकल जहान॥ ९॥
डीठि डोरि सों मन कलस काम कुआँ में डारि।
ये नयना तुव नागरी भरत प्रेम रस वारि॥ १०॥

रज्जब जाकी चाल सों दिल न दुखाया जाय।
यहाँ खलक खिजमति करै उतहैं खुशी खुदाय ॥ ११ ॥
वह वृंदावन सुख सदन कुंज कदम की छाँहिं।
कनकमयी यह द्वारिका ताकी रजसम नाहिँ ॥ १२ ॥
जस जाग्यो सब जगत में भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दऊँ ततकाले सुधि होय ॥ १३ ॥
तबके नरपति वे रहे रीझें तो कछु देयँ।
अबके नरपति ये भये रीझें औ लिख लेय ॥ १४ ॥
जो मेढ़ा पीछे हटै केहरिया छपकंत।
जो दुजन हँसि के मिलै तबै बचैयो कंत ॥ १५ ॥
दगाबाज की प्रीति यों बोलत ही मुसकात।
जैसे मेंहदी पात में लाली लखी न जात ॥ १६ ॥
खेती बारी बीनती औ घोड़े को तंग।
अपने हाथ सँवारिये लाख होय कोउ संग ॥ १७ ॥
तन तलवारों तिलछियो तिल तिल ऊपर सीव।
आलाँ घावाँ ऊठसी मत कर साज नकीव ॥ १८ ॥
ना हँसकरके कर गहे ना रिस करके केस।
जैसे कंता घर रहे वैसे रहे विदेस ॥ १९ ॥
निकट रहे आदर घटै दूरि रहे दुख होय।
सम्मन या संसार में प्रीति करौ जनि कोय ॥ २० ॥
सम्मन चहु सुख देहको तौ छोड़ो ये चारि।
चोरी चुगुली जामिनी और पराई नारि ॥ २१ ॥
सम्मन मीठी बात सों होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिँ सीखो बोलिबो तेहि सीखो सब धूर ॥ २२ ॥
गोरे मुख पै तिल लसत मैं जान्यो यह हेत।
रूप खजाने को मनो हबसी चौकी देत ॥ २३ ॥

दन्तकथा वा हंत की और कही नहिँ जात।
फूलझरी सीं छुटत जब हँसिहँसि बोलत बात॥२४॥
लाल माँग पटिया नहीं मार जगत को मार।
असित फरी पै लै धरी रकत भरी तरवार॥२५॥

बरवै

अधम उधारन नमवा सुनि कर तोर।
अधम काम की बतियाँ गहि मन मोर॥१॥
मन बच कायक निशि दिन अधमी काज।
करत करत मन भरिगा हो महराज॥२॥
बिलगराम का बासी मीर जलील।
तुम्हरि सरन गहि गाहे ये निधिशील॥३॥
बालमु हेरि हियरवा उपजै लाज।
पाख मास मो जानि न परिहै गाज॥४॥
पिय से अस मन मिलयूँ जस पय पानि।
हँसिनि भई सवतिया लै बिलगानि॥५॥
पीतम तुम कच लोहिया हम गजबेलि।
सारस कै अस जोरिया फिरहुँ अकेलि॥६॥
पात पात करि ढूँढ़्यो सब बन बीनि।
किहि बन बस मो बालम परो न चीनि॥७॥
बालम सुरति बिसरिगै कहत सँदेस।
एकहुँ पथिक न बहुरा कस वह देस॥८॥
पात पात करि लूटिसि बिपिन समाज।
राजनीति यह कसिकसि कस ऋतुराज॥९॥
भावै चन्दन चन्दन सुरभि समीर।
भावै सेज सुहावनि बालम तीर॥१०॥

ऋतु कुसुमाकर आकर बिरह बिसेखि।
ललित लतान मितान बितानानि देखि॥ ११॥
जेठ मास सखि सीतल बरकै छाँह।
करई नींद सिहँनवाँ पिय कै बाँह॥ १२॥
पिय कर परस सरस अति चन्दन पंक।
भावक रजनि सुहावन दरस मयंक॥ १३॥
यदि च भवति बुध मिलनं कि त्रिदिवेन।
यदि च भवति शठमिलनं किं निरयेन॥ १४॥
अहिरिनि मन की गहिरिनि उतरु न देइ।
नैना करै मथनिया मन मथि लेइ॥ १५॥
तपन तपै ऋतु ग्रीषम तीषन घाम।
ताकि तरुनि तन सीतल सोवै काम॥१६॥
छाँह सघन तरु भावै बालम साथ।
की प्रिय परम सरोवर सीतल पाथ॥ १७॥

* समाप्त *

साहित्य-भवन-ग्रंथमाला

इस ग्रन्थमाला में काव्य, नाटक, इतिहास, उपन्यास, राजनीति आदि विविध विषयों के ग्रन्थ प्रकाशित होंगे। इसका पहला ग्रन्थ कविता-कौमुदी (प्रथम भाग) है। कविता-कौमुदी के दस बारह भाग निकालने का हमारा विचार है। संसार की प्रत्येक साहित्य-सम्पन्न भाषा के कवियों से हम हिन्दी-भाषा-भाषियों का परिचय कराना चाहते हैं। कविता-कौमुदी के प्रथम भाग में हिन्दी के प्रारम्भ काल से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पहले तक के कवियों की जीवनी और उनकी उत्तम कवितायें संगृहीत हैं। दूसरे भाग में हरिश्चन्द्र से लेकर वर्त्तमान काल के कवियों की जीवनी और चुनी हुई कवितायें रहेंगी। इस भाग में कवियों के चित्र भी दिये जायँगे। इसके पश्चात् संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, बंगला, मराठी, गुजराती, तेलगू, अँग्रेजी तथा जर्मन, फ्रेंच, ग्रीक आदि भाषाओं का, जो भाग पहले तय्यार होगा, वही प्रकाशित कर दिया जायगा। कौन पहले, कौन पीछे, इसका कोई क्रम न रहेगा। कविता-कौमुदी के प्रत्येक भाग का आकार प्रकार और मूल्य समान होगा। किन्तु ग्रन्थमाला के अन्य ग्रन्थों का मूल्य उनके आकार के अनुसार होगा।

विदेशी भाषाओं के सम्बन्ध में अभी एक बात विचारणीय है, कि उनकी कविता किन अक्षरों में प्रकाशित की जाय। विदेशी अक्षरों में या देवनागरी में? उन कविताओं

का अर्थ तो हिन्दीभाषा और देवनागरी अक्षरों में रहेगा ही, हम चाहते हैं कि मूल भी देवनागरी अक्षरों में ही रहे। इसमें एक लाभ तो यह है कि संसार देवनागरी अक्षरों की शक्ति से परिचित हो जायगा। दूसरा लाभ यह है कि जो लोग केवल हिन्दीभाषा जानते हैं वे भी अन्य भाषाओं की कविता कंठस्थ कर सकेंगे और आवश्यकता पड़ने पर पढ़ सकेंगे। किन्तु हमारे कुछ मित्रों का विचार इसके विपरीत है। वे कहते हैं कि विदेशी भाषा की कविता का मूल विदेशी अक्षरों में रहे और उनका अर्थ हिन्दी में दिया जाय। इस विषय में हम कविता-कौमुदी के पाठकों की भी सम्मति चाहते हैं। जो सज्जन इसे पढ़ें, वे यदि अपनी सम्मति लिख भेजेंगे तो हमको उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करने में अधिक सुगमता होगी।

कविता-कौमुदी

(दूसरा भाग-हिन्दी)

इस भाग में जिन कवियों की सचित्र जीवनी और चुनी हुई कविताएँ संगृहीत हैं; उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं :—

१—हरिश्चन्द्र
२—बदरी नारायण चौधरी
३—लाला सीताराम
४—अम्बिका दत्त व्यास
५—नाथूराम शंकर शर्मा
६—प्रतापनारायण मिश्र
७—विनायक राव
८—श्रीधर पाठक
९—रामकृष्ण वर्मा
१०—जगन्नाथ प्रसाद (भानु)

११—सुधाकर द्विवेदी
१२—शिव सम्पत्ति
१३—महावीर प्रसाद द्विवेदी
१४—बालमुकुन्द गुप्त
१५—राधाकृष्णदास
१६—अयोध्यासिंह उपाध्याय
१७—किशोरीलाल गोस्वामी
१८—जगन्नाथदास (रत्नाकर)
१९—लाला भगवानदीन
२०—देवीप्रसाद (पूर्ण)
२१—मिश्रबन्धु
२२—मन्नन द्विवेदी
२३—कामता प्रसाद गुरु
२४—मैथिली शरण गुप्त
२५—लोचन प्रसाद पांडेय
२६—माधव शुक्ल
२७—रामचरित उपाध्याय
२८—कर्णसिंह
२९—सरयू प्रसाद मिश्र
३०—हरिमङ्गल मिश्र
३१—गयाप्रसाद सनेही
३२—जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी
३३—रूपनारायण पांडेय
३४—सैयद अमीर अली
३५—लक्ष्मीधर वाजपेयी
३६—गिरिधर शर्मा
३७—सत्यनारायण
३८—बदरीनाथ भट्ट
३९—शिवाधार पांडेय
४०—माखनलाल चतुर्वेदी
४१—सैयद छेदाशाह
इत्यादि—

कविता-कौमुदी

(तीसरा भाग--संस्कृत)

इस भाग का सम्पादन शारदा-सम्पादक साहित्याचार्य पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री ने किया है। संस्कृत श्लोकों का सरल हिन्दी में अर्थ भी दे दिया गया है। इसमें निम्न लिखित कवियों की जीवनी और उनकी चुनी हुई कविताएँ संगृहीत हैं :—

१—अकाल जलद
२—अप्पय दीक्षित
३—अभिनव गुप्ताचार्य
४—अमरुक
५—अमित गति
६—अमोघवर्ष
७—अश्वघोष
८—आनन्द वर्धन
९—कल्हण
१०—कविपुत्र
११—कविराज
१२—कालिदास
१३—कुमारदास
१४—चन्द्रक
१५—चाणक्य
१६—जगन्नाथ पंडितराज
१७—जयदेव
१८—जोनराज
१९—त्रिविक्रम भट्ट
२०—दामोदर गुप्त
२१—दण्डी
२२—धनञ्जय
२३—पाजक
२४—पद्मगुप्त
२५—प्रकाशवर्ष
२६—पाणिनि
२७—बाण
२८—विकट नितम्बा
२९—विल्हण
३०—भट्ट भल्लट
३१—भवभूति
३२—भर्तृहरि
३३—भारवि
३४—भामट
३५—भास
३६—मङ्ख
३७—मयूर
३८—माघ
३९—मातङ्ग दिवाकर
४०—मातृगुप्त
४१—माधव
४२—मुरारी
४३—मेंठ
४४—मेरिका
४५—रत्नाकर
४६—रविगुप्त
४७—राजशेखर
४८—रामिल सौमिल
४९—लीलाशुक
५०—वल्लभ
५१—वररुचि
५२—वाल्मीकि

५३—विज्जका	५९—शीला भट्टारिका
५४—विशाखदेव	६०—शूद्रक
५५—व्यास	६१—श्रीहर्ष
५६—शंकुक	६२—सुबन्धु
५७—शंकराचार्य	६३—हर्षदेव
५८—शिवस्वामी	६४—क्षेमेन्द्र

अंत में संस्कृत के कुछ अन्य कवियों के चुने हुये श्लोकों का एक छोटा, किन्तु बड़ा मनोहर संग्रह भी जोड़ दिया गया है। यह भाग तैयार है। दूसरा भाग छप चुकने पर इसका छपना प्रारम्भ होगा।

साहित्य-भवन-ग्रंथमाला

की

नियमावली

१—आठ आने "प्रवेश फीस" देकर प्रत्येक सज्जन इस ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह आठ आना न तो कभी वापस दिया जाता है, और न किसी ग्रन्थ में मुजरा दिया जाता है।

२—स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला के कुल ग्रन्थ—पूर्व प्रकाशित और आगे प्रकाशित होने वाले—पौनी कीमत में दिये जाते हैं।

३—ग्राहक बनने के समय से पहले प्रकाशित हुये ग्रन्थों को लेना न लेना ग्राहक की इच्छा पर है। परन्तु आगे निकलने वाले ग्रन्थ उन्हें लेने पड़ते हैं।

४—किसी उचित कारण के बिना यदि किसी ग्रन्थ का वी० पी० वापस आता है, तो उसका डाक खर्च आदि ग्राहक के जिम्मे पड़ता है। वह आगे निकलने वाले ग्रन्थ के वी० पी० में जोड़ लिया जाता है। यदि वह दूसरा वी० पी० भी वापस आता है, तो ग्राहक का नाम ग्राहक-श्रेणी से अलग कर दिया जाता है।

५—प्रवेश फ़ीस के आठ आने पेशगी म० आ० से भेजने चाहिये। किसी ग्रन्थ के वी० पी० में "प्रवेश फीस" नहीं जोड़ी जाती।

६—स्थायी ग्राहक, ग्रन्थमाला के ग्रन्थों की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, पौनी कीमत में हीं मँगा सकते हैं।

७—दस रुपये से अधिक मूल्य की पुस्तकें मँगाने वालों का, प्रत्येक दस रुपये पर एक रुपये के हिसाब से, कुछ रुपये पेशगी भेजने चाहियें।

८—स्थायी ग्राहकों को आर्डर भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर लिखना चाहिये।

साहित्य-भवन, द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकें

१—हिन्दी पद्य-रचना—यह हिन्दी भाषा का पिंगल है। इसमें नौसिख पद्य रचयिताओं के काम की, प्रायः सब बातें आ गई हैं। इसे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने प्रथमा के परीक्षार्थियों के लिये चुना है। मूल्य चार आने।

२—सुभद्रा—यह एक सामाजिक उपन्यास है। विषय बड़ा मधुर है। भाषा बड़ी सरल है। इसको पढ़ने पर संसार का बड़ा अनुभव मिलेगा। मूल्य चार आने।

३—**मिलन**—यह एक प्रेम कहानी है। पद्य में है। कल्पना बड़ी कोमल है। वीर और शृंगार रस का मिश्रण है। स्वतंत्रता की बातें हैं। युवक स्त्री पुरुषों के जीवन का एक आदर्श है। इसे एक बार अवश्य पढ़िये। मूल्य चार आने।

४—**बाल-कथा कहानी**—यह बच्चों के काम की पुस्तक है। कहानियाँ पढ़कर बच्चे खुशी के मारे लोट पोट हो जाते हैं। बच्चों की आँखों पर जोर न पड़े, इसलिये इसका टाइप भी मोटा रक्खा गया है। मूल्य चार आने।

५—**आकाश की बातें**—इस में आकाश के तारों का और पृथ्वी का भी हाल है। आकाश के बग़ीचे की सैर करना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। मूल्य ढाई आने।

६—**नीति-शिक्षावली**—नीति की बातें संसार में सब मनुष्यों को जाननी चाहियें। इस पुस्तक में नीति के सौ श्लोकों का संग्रह किया गया है, और सरल भाषा में उनका अर्थ भी दे दिया गया है। ये श्लोक बच्चों को बचपन में ही कंठस्थ करा देने चाहिये। मूल्य डेढ़ आने।

७—**कविता-विनोद**—विद्यार्थियों के काम की पुस्तक है। मूल्य तीन आने।

साहित्य-भवन, से हिन्दी-संसार को लाभ।

हिन्दी की सब उत्तमोत्तम पुस्तकें, हिन्दी-प्रेमी सज्जनों को, एक ही स्थान से मिल सकें; भिन्न भिन्न प्रकाशकों के पास पत्र लिखकर पुस्तकें मँगाने में उन्हें अधिक समय और डाकव्यय न खर्च करना पड़े; भिन्न भिन्न पुस्तकों के पते याद

रखने का अथवा लिख रखने का उन्हें झंझट न करना पड़े ; इन्हीं सुभीतों को लक्ष्य में रखकर साहित्य-भवन खोला गया है। साहित्य-भवन से पुस्तकालयों को बड़ा लाभ पहुँच रहा है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा और मध्यमा परीक्षा की कुल पुस्तकें मिलने का एकमात्र पता यही है। इस भवन में निम्नलिखित प्रकाशकों की पुस्तकें मिलती हैं :-

इंडियन प्रेस, लाला रामनरायनलाल, लाला रामदयाल, हिन्दी प्रेस, गृहलक्ष्मी कार्यालय, विज्ञान कार्यालय, अभ्युदय प्रेस, ओंकार प्रेस, स्वामी सत्यदेव, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, हरिदास कम्पनी, हिन्दी-पुस्तक एजेंसी, भारत मित्र प्रेस, प्रताप प्रेस, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, गाँधी हिन्दी पुस्तक भंडार, राजपूताना-हिन्दी-साहित्य समिति, मैथिली शरण गुप्त, श्रीधर पाठक, कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन, दास और द्विवेदी, इत्यादि।

सूचीपत्र मुफ्त मँगाकर देखिये। हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकों के लिये केवल एक यही पता नोट कर लीजिये:—

साहित्य-भवन, प्रयाग।

पुस्तकें मँगाने वालों के लिये आवश्यक सूचनायें

१—जो सज्जन साहित्य-भवन से सदा पुस्तकें मँगाया करते हैं, वे यदि किसी पार्सल का नम्बर और तारीख लिख-कर अपने को साहित्य-भवन का ग्राहक प्रमाणित करेंगे, तो साहित्य-भवन द्वारा प्रकाशित सब ग्रन्थ उन्हें बिना डाक व्यय लिये हुये भेजे जा सकते हैं। अन्य स्थानों की

पुस्तकें, जो साहित्य-भवन, द्वारा मिलती हैं, उनके साथ यह रिआयत नहीं।

२—ग्राहकों को अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ लिखना चाहिये। "हम जाने हुये ग्राहक हैं" ऐसा समझ कर अपना नाम आदि लिखने में लापरवाही न करनी चाहिये। रेल द्वारा पुस्तकें मँगाने वालों को रेलवे स्टेशन का नाम साफ़ साफ़ लिखना चाहिये।

३—चार आने से कम का वी० पी० नहीं भेजा जायगा। इसके लिये डाक के टिकट भेजने चाहिये।

४—दस रुपये से अधिक मूल्य की पुस्तकें मँगाने वालों को कम से कम दो रुपये पेशगी भेजना चाहिये।

५—डाक अथवा रेलवे पार्सल में यदि पुस्तकें खोई जायँगी तो उनके उत्तर दाता हम न होंगे।

६—साहित्य-भवन का सूचीपत्र मुफ़्त भेजा जाता है। सूचीपत्र में जिन पुस्तकोंके नाम हैं उनके दाम घट बढ़ जाने से ग्राहकों से भी उतना ही लिया जायगा।

६—कोई पुस्तक लौटाई न जायगी। यदि हमारे कार्यालय की कोई भूल होगी तो उसके ज़िम्मेदार हम होंगे।

८—पुस्तकें उधार नहीं दी जातीं, उसके लिये कोई अनुरोध न करें।

९—जो महाशय आर्डर के मुताबिक़ माल मँगा कर वापस करेंगे, उनसे लौटाने का कुल खर्चा लिया जायगा।

१०—कभी कभी ग्राहक जितनी पुस्तकें मँगाते हैं, वे सभी तैयार नहीं रहतीं, इसलिये जितनी पुस्तकें तैयार रहती हैं, वे भेज दी जाती हैं। बाक़ी पुस्तकोंके लिये दुबारा आर्डर मिलने पर, यदि पुस्तकें तैयार रहीं, तो भेज दी जाती हैं। परन्तु प्रत्येक आर्डर में पुस्तकों का नाम खुलासा लिखना चाहिये।